श्रीमद् राजचन्द्र जन्म शताब्दी ग्रन्थमाला

प्रकाशन–पांचवां

श्रीमद् राजचन्द्र

जीवन-साधना

मुकुलभाई कलार्थी

अनुवादक

पं गुणभद्रजी जैन
कविरत्न

देह छता जेनी दशा, वर्ते देहातीत,
ते ज्ञानीना चरणमां, हो वन्दन अगणित।

—श्रीमद् राजचन्द्र

देह रहते हुअे भी जिनकी आन्तरिक दशा देहरहित है,
अुस ज्ञानी पुरुषके चरणोंमे अगणित वन्दन हो।

प्रकाशक
त्रिकमलाल महासुखराम शाह
प्रमुख–श्रीमद् राजचन्द्र जन्म शताब्दी मडल,
श्री राजचन्द्र पाठशाला, पचभाईकी पोळ,
अहमदाबाद–१

आत्मशान्ति जिस जीवनका ध्रुव काँटा है
वह जीवन चाहे तो अेकाकी और
निर्धन, निर्वस्त्र हो तो भी
परम समाधिका स्थान है।

लोकसज्ञा जिसके जीवनका ध्रुव काँटा है,
वह जीवन चाहे जैसी श्रीमन्तता, सत्ता या
कुटुम्ब परिवार आदि योगवाला हो तो भी
वह दुखका ही हेतु है।

श्रीमद् राजचन्द्र

मूल्य रु २-५०

स २०२३
प्रत ५,०००
प्रथम आवृत्ति

मुद्रक
मोहन परीख
सुरुचि छापशाला
वारडोली–२

श्रीमद् राजचन्द्र

वि स १९४७

'सत्'

महात्माओंने किसी भी नामसे
और किसी भी आकारसे
अेक 'सत्'को ही प्रकाशित किया है।
वही जानने योग्य है,
वही विश्वास योग्य है,
वही अनुभवरूप है, और
वही परमप्रेमपूर्वक सेवन करने योग्य है।
हम अुन 'परमसत्'की ही अनन्य प्रेमसे
भक्ति चाहते है।

अुस 'परमसत्'को
परमज्ञान कहो, चाहे तो परमप्रेम कहो,
और चाहे तो 'सत्-चित्-आनन्द स्वरूप' कहो,
चाहे तो आत्मा कहो, चाहे तो सर्वात्मा कहो,
चाहे तो अेक कहो, चाहे तो अनेक कहो,
चाहे तो अेकरूप कहो, चाहे तो सर्वरूप कहो,
परन्तु जो 'सत्' है वह 'सत्' ही है, और
वही सब प्रकारसे कथन योग्य है—
कहा जाता है। सर्व यह ही है, अन्य नही है।

अैसा वह परमतत्त्व, पुरुषोत्तम, हरि, सिद्ध, ईश्वर, निरजन, अलक्ष्य, परमब्रह्म, परमात्मा, परमेश्वर और भगवत् आदि अनन्त नामोंसे कहा गया है।

हम जिस समय परमतत्त्वको कहनेकी इच्छा करके
किसी भी वैसे शब्दका प्रयोग करते है तो
यही है, दूसरा नही।

—श्रीमद् राजचन्द्र

श्रीमद्के शब्दोमें—

जीवन दृष्टि

अेक पर राग और अेक पर द्वेष,
अैसी स्थिति अेक रोममे भी अुमे प्रिय नही है।
अधिक क्या कहे?
परके परमार्थ सिवायकी यह देह भी अच्छी नही लगती तो?

आत्मेच्छा अैसी रहती है कि
ससारमे प्रारब्धानुसार कैसा भी
शुभाशुभ अुदय आये,
परन्तु अुसमे प्रीति अप्रीति करनेका
हमे सकल्प भी नही करना चाहिअे।

जिसे अपना या पराया कुछ भी नही है,
अैसी दशाकी प्राप्ति अब समीपमे ही है।
(इसी देहसे है) और अुस कारणसे
परेच्छासे प्रवृत्ति करते है।

पूर्वकालमे जिस-जिस विद्या, बोध, ज्ञान
और क्रियाकी प्राप्ति हो चुकी है,
अुन सबका इसी देहमे विस्मरण करके
निर्विकल्प हुअे बिना छुटकारा नही है,
और अुस कारणसे ही अैसा आचरण करते है।

—श्रीमद् राजचन्द्र—

जीवन निर्धार

आत्मज्ञान प्राप्त हुआ, यह तो निःसशय है।
ग्रन्थीभेद हुआ यह तीनो कालमे सत्य बात है।
सभी ज्ञानियोने भी इस बातको स्वीकार किया है।

देहके रहते हुअे भी मनुष्य सम्पूर्ण वीतराग हो सकता है,
अैसा हमारा निश्चल अनुभव है,
क्योंकि हम भी निश्चय
अुन ही स्थितिको प्राप्त होनेवाले है।
इस प्रकार हमारा आत्मा अखडरूपसे कहता है।
और अैसा ही है, अवश्य अैसा ही है।

पूर्ण वीतरागकी चरणरज निरन्तर मस्तक पर हो,
अैसा रहा करता है।
अत्यन्त विकट वीतरागत्व अत्यन्त आश्चर्यकारक है,
फिर भी अुस स्थितिकी प्राप्ति होती है,
सदेह प्राप्ति होती है, यह निश्चय है।
प्राप्त करनेके लिअे पूर्ण योग्य है,
अैसा निश्चय है।

सदेह वैसा हुअे विना हमारी
अुदासीनता दूर हो अैसा नही मालूम देता,
और वैसा होना सभवित है, अवश्य अैसा ही है।

इस जगत्के प्रति हमारा परम अुदासीनभाव है,
यदि वह अेकदम सुवर्णमय बन जाय तो भी हमे तृणतुल्य है,
और परमात्माकी विभूतिरूपसे हमारा भक्तिधाम है।

श्रीमद् राजचन्द्र

श्रीमद्की समदृष्टि

जैसी दृष्टि इस आत्माके प्रति है,
वैसी दृष्टि जगत्के सर्व आत्माओंके प्रति है।

जैसा स्नेह इस आत्माके प्रति है,
वैसा स्नेह सर्व आत्माओंके प्रति रहता है।

इस आत्माकी जैसी हम सहजानन्द स्थिति चाहते हैं,
वैसी ही स्थिति सर्व आत्माओंके प्रति चाहते हैं।

जो जो इस आत्माके लिये चाहते है,
वह सभी आत्माओंके लिये चाहते हैं।

जैसा भाव इस देहके प्रति रहता है,
वैसा ही सर्व देहोंके प्रति रहता है।

जैसा सर्व देहोंके प्रति आचरणका भाव रहता है,
वैसा ही इस देहके प्रति आचरणका प्रकार रहता है।

इस देहमे अधिक वुद्धि (भाव)
और अन्य देहोंके प्रति विषम वुद्धि

प्राय कभी भी नही हो सकती।
मात्र आत्मस्वरूप कार्यमे प्रवृत्ति होनेके कारण,

जगत्के समस्त पदार्थोंके प्रति जैसी उदासीनता है
वैसी ही अपने माने गये स्त्रीआदि पदार्थोंके प्रति है।

सर्वात्ममे समदृष्टि दीजिये, इस वचनको हृदयमे लिखो।

श्रीमद् राजचन्द्र

ॐ

આત્મસિદ્ધિ.

જે સ્વરૂપ સમજ્યા વિના, પામ્યો દુઃખ અનંત,
સમજાવ્યું તે પદ નમું - શ્રી સદ્‌ગુરુ ભગવંત

વર્તમાન આ કાળમાં, મોક્ષમાર્ગ બહુ લોપ,
વિચારવા આત્માર્થીને, ભાખ્યો અત્ર અગોપ્ય ૨

કોઈ ક્રિયાજડ થઈ રહ્યા, શુષ્કજ્ઞાનમાં કોઈ,
માને મારગ મોક્ષનો, કરુણા ઉપજે જોઈ ૩

બાહ્ય ક્રિયામાં રાચતા, અંતર ભેદ ન કાંઈ,
જ્ઞાનમાર્ગ નિષેધતા, તેહ ક્રિયાજડ આંઈ ૪

બંધ મોક્ષ છે કલ્પના, ભાખે વાણી માંહિ,
વર્તે મોહાવેશમાં, શુષ્કજ્ઞાની તે આંહિ ૫

વૈરાગ્યાદિ સફળ તો, જો સહ આતમજ્ઞાન,
તેમજ આતમજ્ઞાનની, પ્રાપ્તિતણાં નિદાન ૬

ત્યાગ વિરાગ ન ચિત્તમાં, થાય ન તેને જ્ઞાન,
અટકે ત્યાગ વિરાગમાં, તો ભૂલે નિજભાન ૭

श्रीमद् राजचन्द्र जन्मशताब्दी मडल

समीपवर्ती सहजज्ञान, वैराग्यमूर्ति श्रीमद् राजचन्द्रकी जन्म-शताब्दी स २०२४ कार्तिक सुदी पूर्णिमाके दिन आ रही है। इसको लक्ष्यमे रखकर इस पवित्र पुरुषके अुपकारकी लेशमात्र पुनीत स्मृतिके लिअे इस 'श्रीमद् राजचन्द्र जन्मशताब्दी मडल'की स्थापना हुई है।

श्रीमद् राजचन्द्रका विश्व-अुपकारी परम करुणामय साहित्य, इनके जीवनके प्रसग इत्यादि भिन्न भिन्न भाषाओमे प्रकाशित कर, विशाल जनसमुदायको अुसका लाभ मिल सके इस प्रकारसे प्रचार करनेका अुद्देश है।

मडलको ट्रस्ट अेक्ट अनुसार रजिस्टर किया गया है।

नियमपूर्वक व्यवस्थाके लिअे अेक ग्यारह सभ्योकी व्यवस्थापक समिति और प्रकाशनके कार्यके लिअे पाँच सभ्योकी अेक प्रकाशन समिति वर्तमानमे काम कर रही है।

अुद्देश्यको ध्यानमे रखकर प्रारम्भित प्रकाशन कार्यका 'राजपद' यह प्रथम प्रकाशन है। 'कर विचार तो पाम' यह दूसरा प्रकाशन है। 'जीवन-साधना' तीसरा प्रकाशन है। 'राजपद' (नागरी लिपिमे) चौथा प्रकाशन है और यह 'जीवन साधना' (हिंदी) पाचवाँ प्रकाशन है। अन्य प्रकाशनोका कार्य चालू है।

/

विशेष आनन्द तो यह है कि श्रीमद्के प्रति भक्तिभाववाला विशाल जनसमुदाय और श्रीमद्की स्मृतिरूप स्थापित अनेक सस्थायें इस कार्यमे अच्छे अुल्लाससे प्रेमपूर्वक सहयोग दे रही है और यही इस मडलकी अुपयोगिता है।

श्रीमद्के प्रति भक्तिभाव रखनेवाले सभीसे इस कार्यमे सहयोग देनेकी नम्र प्रार्थना है।

ता १०-१२-६६

श्रीमद् राजचन्द्र पाठशाला,
पचभाईकी पोळ,
अहमदाबाद-१

श्रीमद् राजचन्द्र जन्मशताब्दी मडल
कार्यवाही समितिकी ओरसे
रिकमलाल महासुखराम शाह, प्रमुख

प्राक्कथन

लोकोत्तरकी जीवनचर्या

लोकोत्तराणा चेतासि को हि विज्ञातुमर्हति।

श्रीमद् राजचन्द्र जैसे पुरुषविशेषकी चरित-कथा लिखना दुष्कर है। हमारी इन्द्रियदर्शनावलम्बी वुद्धि ख्याल कर सके, समझ सके और अगीकार कर सके अैसी महत्ता—विशेषता इनके जीवनमे रही हुई है, जैसे कि इनकी असाधारण स्मृति, अल्पवयमे प्रज्ञाकी परिपक्वता, व्यवहार-नीतिका आग्रह, कार्यकुशलता, शास्त्र-निपुणता, गुजराती गद्यमे मौलिक प्रभुत्व, सदाचारनिष्ठा, सत्य-शोधकता, वैराग्य, आत्माके मनन, श्रवण और निदिध्यासन, अुसके लिअे निवृत्तिकी अुत्सुकता, निर्भयता इत्यादि। इन सभी गुणोको प्रगट करनेवाले प्रसग, घटनायें, समागमोका भी प्रामाणिक वर्णन करना सुगम नही, परन्तु शक्य तो है ही।

परन्तु श्रीमद्के इन सव आविर्भावोके सिवाय दूसरे कितने ही आविर्भावोको—जिन्हे अपेक्षासे वाह्य कहा जाता है, अैसे आविर्भावोकी मूलशक्ति जैसे है और जिनका वर्णन अुनके स्वयके शब्दोमे हुआ है—समझना दुष्कर, अत्यन्त दुष्कर है। अुनको माननेका प्रश्न तो अुनको समझनेके वाद ही आये अथवा जव वह वुद्धितर्कको शान्त करके अेक मात्र श्रद्धाका विषय वने। अुदाहरणके तौर पर

'पुनर्जन्म है, जरूर है। इसके लिअे "मैं" अनुभवसे हाँ कहनेमे अचल हूँ।' यह वाक्य पूर्वभवके किसी योगका स्मरण होते समयका सिद्ध हुआ लिखा है। जिसने पुनर्जन्मादिभाव किये है, अुस पदार्थको किसी प्रकारसे जानकर वह वाक्य लिखा गया[1] है।' श्रीमद्के इस अनुभवको किस प्रकारसे समझना? मनोविज्ञानके ढाचेमे यह कैसे बैठे? अथवा

[2]धन्य रे दिवस आ अहो, जागी रे शान्ति अपूर्व रे,
दस वर्ष रे धारा अुलसी, मटयो अुदय कर्मनो गर्व रे।
ओगणीसेने एकत्रीसे, आव्यो अपूर्व अनुसार रे,
ओगणीसेने बेंतालिसे, अद्भुत वैराग्य धार रे,
ओगणीसेने सुडतालिसे, समकित शुद्ध प्रकाश्यु रे,
श्रुत अनुभव वधती दशा, निज स्वरूप अवभास्यु रे।

आवी अपूर्व वृत्ति अहो, थशे अप्रमत्त योग रे,
केवल लगभग भूमिका, स्पर्शीने देह वियोग रे।

इसमे 'दश वर्षे रे धारा उलसी' अर्थात् दस वर्षमे धारा प्रगट हुई इसका क्या अर्थ और यह कौन-सी मनोवस्तुको सूचित करती है? 'अपूर्व अनुसार'—अपूर्व अनुसार आया अर्थात् क्या आया? हम लोग वैराग्यको तो समझते है, परन्तु अद्भुतका क्या अर्थ?—शुद्ध सम्यक्त्व प्रकाशित हुआ अर्थात् क्या हुआ? जड और चेतन ये दोनो भिन्न हैं ऐसी श्रद्धा या मान्यता सम्यक्त्व या समकित है, परन्तु प्रकाशित हुआ, इससे विचार सिवाय दूसरा क्या हुआ? 'निजस्वरूप अवभास्यु' इससे मनुष्यको 'अहं'का वेदन होता है, इसके सिवाय दूसरा क्या अवभासित हुआ? 'केवल लगभग भूमिका'के स्पर्शसे किसका स्पर्श करता है?

१ श्रीमद् राजचन्द्र स. २००७की आवृत्ति, पत्र ४२४
२ अेजन पत्र ९६०-१ (३२)

संवत् १९५३में २९ वर्षकी उमरमें यह बात श्रीमद्‌ने अपने लिअे लिखी है, अुसमें अुस अुस घटनाका वर्षके अनुसार कथन किया है। अैसे अनेक विषय, जिनका जीवनचरितमें घटनाओंके रूपमें कथन हो, अुसकी बुद्धिग्राह्य कथा कैसे लिखी जाय? इस विज्ञानके युगमें अभी तक अैसी बावतोंका अन्वेषण नहीं हुआ है। हम जो कुछ जानते हैं अुसे या तो श्रद्धाके रूपमें कहा जाता है या वहमके रूपमें कहा जाता है या कविकी कल्पनाके रूपमें अुसका आस्वाद लेते हैं। यही नहीं अमुक वर्षमें श्रीमद्‌ने जवाहिरातका व्यापार प्रारम्भ किया यह घटना जिस सरलतासे समझमें आवे अुसी प्रकारसे श्रीमद्‌को अमुक सालमें 'धारा प्रगटी' या 'अपूर्ववृत्ति आई' या 'पूर्वभवके योगका स्मरण हुआ' क्या इन घटनाओंको सरलतासे समझ सकते हैं?

श्रीमद्‌का हृदय अुनके व्यवहारजीवनसे और अुनके दार्शनिक सूक्ष्मतापूर्ण लेखोंसे जो समझमें आता है उस परसे कह सकते हैं कि वे अैसे व्यक्ति नहीं थे कि कल्पनामें आकर, या किसी प्रकारकी भ्रमणासे प्रेरित होकर अथवा अपनी महिमा बतानेकी वृत्तिसे, ऐसा माननेके लिअे या लिखनेके लिअे प्रेरित हुअे हों। नके गाढ परिचयमें आये हुअे गांधीजीका इस सम्बन्धमें बहुत स्पष्ट अभिप्राय है 'अुनके लेखोंकी अेक असाधारणता यह है कि स्वयं अुन्होंने जिसका अनुभव किया है, वही लिखा है। अुसमें कहीं भी कृत्रिमता नहीं है। दूसरे पर प्रभाव डालनेके लिअे अेक पंक्ति भी लिखी हो अैसा मैंने नहीं देखा।'[१]

अर्थात् इनके मनकी पद्धति बुद्धिप्रधान तार्किक की है, अपने मनका सूक्ष्मतासे निरीक्षण कर सकें इस प्रकारका यह चित्त है। जिस समय स्वयंको 'हरिरस'की तत्परता हुई है और ऐसी 'मस्ती' आई है अुस समय भी ये अपनी वृत्तियोंके निरीक्षक दिखाई देते हैं। अर्थात् अेक ओरसे लिखनेवाला स्वस्थ बुद्धिका अनाडंबरी सूक्ष्म

१ 'श्रीमद् राजचन्द्र अने गांधीजी' पृ ४६

निरीक्षक है और दूसरी ओरसे इनकी नोधें और लेख अैसी मनोदशा —मानसवस्तु—मानसघटनाको अुपस्थित करते है जो विज्ञानगम्य नही है, इन्द्रियज्ञानावलम्बनवाली बुद्धिको गम्य नही है।

इस कारणसे श्रीमद् जैसे पुरुषविशेषकी जीवनकथामेमे यदि अैसा समस्त भाग छोड दिया जाय, तो भी इसके छोड देने पर भी इसमे सदाचारनिष्ठ बहुत कुछ निरूपण किया जा सकता है।

और यही जीवनचरित लिखनेमे बडी अुलझन आती है। जो अनुभव चरितनायकके जीवनके आधारभूत बने दिखाई देते है, यदि अुनको छोड दें या गौण कर दे तो अुनका जीवन कैसे लिखा जा सकता है? अैसे गूढस्तरके अनुभवकी बात न हो वहाँ भी चरितनायककी यदि प्रेरणारूप श्रद्धा हो, अुसको ध्यानमे रखे बिना किस तरहसे यथायोग्य समझ सकते है? अुदाहरणार्थ महात्मा गाधीकी ईश्वर प्रति श्रद्धा—

'I am surer of His existence than of the fact that you and I are sitting in this room Then I can testify that I may live without air and water but not without Him'[1]

इनकी अैसी और दूसरी लोकोत्तर श्रद्धा और प्रेरणाके बिना गाधीजीके आचार-विचारोको समझनेका और अुनके पालन करनेका प्रयत्न कितनी विषम स्थिति — हास्यकी और दु खकी — अुत्पन्न करता है यह हम आज देखते हैं। यो यच्छ्रद्ध स अेव स (भ गी १७-३) जो जैसी श्रद्धा रखता है वह वैसा होता है।

परन्तु श्रीमद् या रामकृष्ण परमहम, रमण महर्षि या श्री अरविन्द जैसोके आन्तरविश्व faith-श्रद्धासे भी किसी अन्य प्रकारके दिखाई देते हैं। इनके आन्तरविश्वोमे इस श्रद्धाके पदार्थोके 'अनुभव', 'दर्शन' या 'समापत्ति' होते हैं, इस कारणसे अैसे

1 My Religion p 43

पुरुषोके जीवनचरित 'अनुभव घटनाओ'के कथनके विना निष्प्राण हो जाते है।

तो दूसरी ओर चमत्कारकी लोलुपता हो जानेका, वहमके कुहरेमे भटकनेका, बुद्धिग्राह्यको भी अतीन्द्रिय कोटिमे रख देनेका भय होता है।

जीवनचरितके लेखकके लिअे इन दोनो कोटिओमेसे वचनेका मार्ग, तटस्थभावसे अैतिह्य प्रमाणोकी बराबर छान-बीनकरके, जो लौकिक या लोकोत्तर भाव-अर्थ-घटनाये अुत्पन्न हो अुनका निरूपण करना है। लेखकके स्वयके अनुभवमे न हो, अथवा उसके ज्ञानको सभवित न लगता हो, यदि अैसे विषय भी अैतिह्य प्रमाणसे सिद्ध होते हो तो अुनका त्याग नही किया जा सकता अैसा आधुनिक अैतिह्य परीक्षकोका भी मत है।[1]

श्रीमद्‌जीका अैसे सशोधनपूर्वक अुत्पन्न हुआ जीवनचरित लिखाना अभी वाकी है। अैसा चरित लिखनेसे पूर्व क्या करना चाहिअे यह गाधीजीने सूचित किया है। 'यदि जीवनचरित लिखना हो, तो मैं अुनकी जन्मभूमि ववाणिया वन्दरगाहमे कितना ही समय व्यतीत करूं, अुनके रहनेके मकानको देखूं, अुनके खेलने और घूमनेके स्थानोको देखूं, अुनके बालमित्रोसे मिलूं, अुनकी पाठशालामे जाकर आअूं, अुनके मित्र, अनुयायी और सगेसम्वन्धियोसे मिलूं, अुनसे जानने योग्य बातोको जान लूं, अुसके बाद ही लिखना प्रारम्भ करूं।'[2]

आधुनिक युग अैसे सशोधनोको आवश्यक मानता है। इसके

1 F H Bradley–The Presuppositions of Critical History (pp 63 Collected Essays vol 1) અને G J Garraghan S J A Guide to Historical Method pp 298–303

२ 'श्रीमद् राजचन्द्र अने गाधीजी' पृ ४१

सिवाय श्रीमद्‌जीके स्वयके लेख, नोधपत्र, ग्रन्थ इत्यादि साहित्य भी विवेचक दृष्टिसे अवलोकन करना आवश्यक है।

श्री मुकुलभाईने 'श्रीमद् राजचन्द्रकी जीवन साधना'के लिखनेसे पहले ये सभी साधना की है या नहीं, अुसे मैं नही जानता। इनके लिअे समय साधन इत्यादि चाहिअे, इससे मैं इस दृष्टिसे इस ग्रन्थका अवलोकन नही कर रहा हूँ। परन्तु इस ग्रन्थके पढनेवालेको श्रीमद्‌जीके जीवनका थोडा बहुत ख्याल आ सके यह दृष्टि रखी है। इस प्रकारसे देखने पर इस ग्रन्थसे आम तौरसे मुझे सन्तोष हुआ है। श्री मुकुलभाईने श्रीमद्‌जीके लौकिक जीवनके प्रसग और घटनाओंको सादी, स्वच्छ और मधुर भाषामे लिखा है। इनके आन्तरिक जीवनके प्रसगोको भी इन्होने नही छोडा है, परन्तु स्वस्थतासे लिखा है। इसके पीछे रहे हुअे वस्तुसत्यका विवेचन करना यह किसी भी लेखककी मर्यादाके बाहरकी बात है, सिवाय कि स्वय उस लोकोत्तर मार्गका विहारी हो। इससे अैसे किसी शक्ति अुपरान्तके अुहापोहमे पडे विना श्रीमद्‌जीके लेखोंके आधारसे और अुनके समागममे आये हुअे व्यक्तियोके कथनके आधारसे श्री मुकुल-भाईने यथायोग्य निरूपण किया है। इनके निरूपणमे चरित्तनायकके प्रति इनका आदरभाव स्पष्ट दिखाई देता है। यदि यह न हो तो अैसा श्रम व्यर्थ है। जिनका स्वयको ज्ञान न हो अैसे प्रसग, घटना और अनुभवको दूर रखनेकी या छुपानेकी चपलता इन्होने नही की है। श्रीमद्‌जीके लेखोंमेसे अनुमानित और समागमियोके कथनसे समर्थित जीवनदर्शन श्री मुकुलभाईने कराया है।

अैसे लोकोत्तर पुरुषके जीवन समक्ष तो भवभूति द्वारा कथित नम्रता ही योग्य है लोकोत्तराणा चेतासि को हि विज्ञातुमर्हति।

ता २२-४-६५

११ भारती निवास सोसायटी — रसिकलाल छो परीख

अेलिसब्रिज, अहमदाबाद-६

हिन्दी सस्करणके बारेमे

सत्पुरुपोके चरित्रोका स्मरण करना,
सत्पुरुपोके लक्षणका चिन्तन करना,
अुसके मन, वचन, कायाकी हरअेक चेष्टाके
अद्भुत रहस्योका बारबार निदिध्यास करना।
—श्रीमद् राजचन्द्र

जिनके विशुद्ध सान्निध्यके सेवनसे अनादि कालके अनत दु खो और क्लेशोसे मुक्ति दिलानेवाला आत्मज्ञान प्रकट होता है, अैसे परमपुरुप श्रीमद् राजचन्द्रके जीवनप्रसग और परिचय देनेवाली मुकुलभाअी कलार्थी द्वारा लिखी गअी 'जीवन-साधना' नामक पुस्तक श्रीमद् राजचन्द्र जन्म शताब्दी मडलकी ओरसे प्रकाशित हुअी है।

हिन्दी-भाषी जनता श्रीमद् राजचन्द्रके जीवनका परिचय प्राप्त कर सके अिस अुद्देश्यसे गुजराती 'जीवन-साधना'का यह हिन्दी सस्करण प्रकाशित किया जाता है।

अगास स्टेशनके पास श्रीमद् राजचन्द्रके पुनित सस्मरणरूप अेक सुदर 'श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम' अुनके अनन्य भक्त श्रीमद् मुनिश्री लघुराज स्वामीकी प्रेरणासे अुपस्थित है। श्रीमद्के साहित्यके सम्यक् अनुभवी मुनिश्री लघुराज स्वामीके सान्निध्य और परिचयमे अिस आश्रममे बरसो तक रहकर श्रीमद्के साहित्यकी अुपासना करनेवाले प गुणभद्रजीने अिस 'जीवन-साधना'का हिन्दीकरण किया है। वे

जैन साहित्यके अच्छे अभ्यासी हैं और अुनकी मातृभाषा भी हिन्दी है। अिस स्वाभाविक सुमेलसे प्रकटित यह हिन्दी 'जीवन-भावना' श्रीमद् राजचन्द्रका यथार्थ परिचय कराकर आत्मकल्याणका कारणरूप बने असी आशा रखी है।

श्रीमद्‌जीने विशुद्ध आत्मानुभवको अपने साहित्यमें सचोट और आन्तरदर्शक शैलीमें गाया है। शैली और भाषा दोनों असे गभीर, प्रौढ, तलस्पर्शी और भाववाही हैं कि अुन्हें किसी दूसरी भाषामें अुतने ही भाववाही रूपमें अनुवादित करना कोअी सरल बात नहीं है। अिस अनुवादमें भाषा, व्याकरणादिकी शुद्धि रखनेका काफी प्रयत्न किया गया है, और साथ ही श्रीमद्‌के शब्द और शैलीको भी यथाशक्य ज्यों का त्यों बनाये रखनेकी भी दृष्टि रखी है ताकि श्रीमद्‌का आंतरभाव समझनेमें सरलता रहे। आशा है, यह पद्धति वाचकवर्गको रुचिकर और हितकर होगी।

अिस हिन्दी संस्करणको शुद्ध करनेमें बडौदा निवासी भाअी कंचनलाल परीखकी जो मदद मिली है वह अुल्लेखनीय है।

अिस त्रस्त जगतके जीवोंको श्रीमद् राजचन्द्रके निम्न लिखित परमकरुणामय अुद्‌गार परमसुखके पथप्रदर्शक हों यही अभिलाषा—

'संसार-तापसे त्रसित और कर्मबंधनसे मुक्त होनेकी अिच्छावाले परमार्थ-प्रेमी जिज्ञासु जीवोंकी त्रिविध तापाग्निको शान्त करनेके लिअे हम अमृतसागर हैं, मुमुक्षु जीवोंका कल्याण करनेके लिअे हम कल्पवृक्ष ही हैं।'

ता ९-१-१९६७
दाडिया बजार
बडौदा-१

श्रीमद् राजचन्द्र जन्म शताब्दी मंडल
प्रकाशन समितिकी ओरसे
सोभागचन्द चुनी॰ ॰ शाह,
प्रमुख

अन्त उद्‌गार

परम पूज्य श्रीमद् राजचन्द्रजीका जीवनचरित लिखनेका पवित्र सुअवसर 'श्रीमद् राजचन्द्र जन्म शताब्दी मडल'ने मुझे प्रदान किया है, इसे मैं अपने जीवनका अेक धन्य अवसर ही मानता हूँ। इसके लिअे मैं श्रीमद् राजचन्द्र जन्म शताब्दी मडलका आभार मानता हूँ।

श्रीमद् राजचन्द्रके जीवनचरितको यथार्थ रूपसे लिखनेके लिअे तो सुयोग्य अधिकारकी आवश्यकता है। सुपात्र अधिकारी ही श्रीमद् राजचन्द्रके आभ्यन्तर जीवनमे प्रवेश करके इसका सुन्दर और श्रेयार्थीको सहायक हो अैसा निरूपण कर सकता है।

इस अधिकार–सुपात्रता सम्बन्धी श्रीमद् राजचन्द्रजीकी व्याख्या भी लक्ष्यमे लेने योग्य है

'कषायनी उपशान्तता, मात्र मोक्ष अभिलाष,
भवे खेद, प्राणीदया, त्या आत्मार्थनिवास।

दशा न अेवी ज्या सुधी, जीव लहे नही जोग,
मोक्षमार्ग पामे नही, मटे न अन्तर रोग।

आवे ज्या अेवी दशा, सद्‌गुरुबोध सुहाय,
ते बोधे सुविचारणा, त्या प्रगटे सुखदाय।

ज्या प्रगटे सुविचारणा, त्या प्रगटे निजज्ञान,
जे ज्ञाने क्षय मोह थई, पामे पद निर्वाण।*

कषाय जहाँ शान्त हो गये हैं, जिसे केवल अेक मोक्ष-पदकी ही अभिलाषा है, समार पर जिसे वैराग्य है, और प्राणीमात्र पर जिसे दया आती है, अैसा जीव आत्मार्थी है।

जब तक जीव अैसी योग-दशाको नही पाता, तब तक अुसे मोक्ष-मार्गकी प्राप्ति नही होती और आत्म-भ्रान्तिरूप अन्तरग रोग भी दूर नही होता।

जहाँ अैसी दशा प्राप्त होती है, वहाँ सद्गुरुका बोध सुशोभित होता है—सफल होता है और अुस बोधके सफल होनेसे सुखदायक सुविचारणा प्रगट होती है।

जहाँ सुविचार-दशा प्रगट हो वही आत्मज्ञान अुत्पन्न होता है और अुससे मोहका क्षय होकर जीव निर्वाणको प्राप्त करता है।

इस दृष्टिसे जब मैं अपना विचार करता हूँ तो मुझे नम्रता-पूर्वक स्वीकार करना पडता है कि मुझमे अैसी सुपात्रता लेश मात्र भी नही है।

परन्तु अैसे पवित्र महात्माका जीवनचरित लिखनेके कारण मुझे अुनके जीवन तथा दर्शनका अभ्यास करनेका समय मिले तथा इस प्रकारसे श्रेय-पन्थमे गमन करनेका अल्प भी पाथेय मिले, अैसी विशुद्ध-बुद्धि रखकर 'अल्पविषया मति' होते हुअे भी इस पवित्र कार्यको मैंने अपने हाथमे लिया है। श्रेयार्थीको श्रीमद् राजचन्द्रजीकी इस जीवन-साधनाको पढकर उनकी उपदेश-समृद्धिका अनुशीलन करनेकी प्रेरणा प्राप्त हो तो मैं अपने इस नम्र प्रयासको सफल मानूँगा।

* 'आत्मसिद्धिशास्त्र'

श्री रसिकभाईने इस पुस्तककी प्रस्तावना लिखकर इसकी मौलिकतामे वृद्धि की है। इसके लिअे मैं अुनका भी आभार मानता हूँ।

इस जीवन-साधनाको तैयार करनेमे श्रीमद् राजचन्द्रजीके लेखो, पत्रोका तथा आज तक अुनके विषयमे लिखे गये लेखोका मैंने अुपयोग किया है। इन सबका मैं अन्तःकरणपूर्वक आभारी हूँ।

अन्तमे श्रीमद् राजचन्द्रजीके पावनकारी चरण-कमलोमे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर प्रार्थना करता हूँ कि अुनके द्वारा अुपदिष्ट धर्मतत्त्वको जीवनमे अुतारनेकी मुझे शक्ति प्रदान करे।

और वह धर्मतत्त्व यह है

'धर्मतत्त्व जो पूछ्यु मने, तो समळावु स्नेहे तने,
जे सिद्धान्त सकलनो सार, सर्वमान्य सहुने हितकार।
भाख्यु भाषणमा भगवान, धर्म न बीजो दया समान,
अभयदान साथे सन्तोष, द्यो प्राणीने दळवा दोष।
सत्य, शील ने सघळा दान, दया होईने रह्या प्रमाण।

* * *

पुष्पपाखडी ज्या दुभाय, जिनवरनी त्या नहि आज्ञाय।
सर्व जीवनु इच्छो सुख, महावीरनी शिक्षा मुख्य,

* * *

अे भवतारक सुन्दर राह, धरिये तरिये करी अुत्साह।
धर्म सकळनु अे शुभ मूळ, अे वण धर्म सदा प्रतिकूळ,
तत्त्वरूपथी अे ओळखे, ते जन पहोचे शाश्वत सुखे।'[1]

* * *

धर्मका तत्त्व जो मुझसे पूछा है, अुसे मै तुझे स्नेहपूर्वक सुनाता हूँ। यह धर्मतत्त्व सकल सिद्धान्तका सार है, सर्वमान्य और सबको हितकारी है।

१ मोक्षमाला पाठ–२

भगवानने अपने उपदेशमे कहा है कि दयाके समान कोई दूसरा धर्म नही है। दोषोको नष्ट करनेके लिअे अभयदानके साथ प्राणियोको सन्तोष प्रदान करो।

सत्य, शील तथा अनेक प्रकारके दान, दया होने पर ही प्रमाणभूत हैं।

जहा पुष्पकी अेक पाखुरीको भी दुःख पहुँचता हो, वैसी प्रवृत्ति करनेकी जिनवरकी आज्ञा नहीं है। समस्त जीवोके सुखकी इच्छा करना यही भगवान महावीरका मुख्य अुपदेश है।

ससारसे पार करनेवाला यह सुन्दर मार्ग है, इसे अुत्साहपूर्वक धारण करके ससारसे पार होना चाहिअे। यह समस्त धर्मोका मूल है, इसके विना धर्म सदा प्रतिकूल रहता है।

जो मनुष्य इसे तत्त्वरूपमे पहचानते है, वे शाश्वत सुखको प्राप्त करते हैं।

मुकुल कलार्थी

७

जीवन-साधना

अनुक्रमणिका

श्रीमद् राजचंद्र

वर्ष ३३ वाँ | वि स १९५६

१

सेवानिष्ठ मातापिता

सन्त परम हितकारी जगत माही
सन्त परम हितकारी ॥
प्रभुपद प्रगट करावत प्रीति,
भरम मिटावत भारी ॥

हमारे भारतवर्षकी आत्म साधना बहुत ही प्राचीन और सुप्रसिद्ध है। सहस्रो वर्ष पहले यह प्रारम्भ हुई। हम नही जानते कि इसका किसने प्रथम प्रारम्भ किया था। परन्तु इस जीवन साधनाके पुरस्कर्ता अनेक महान पुरुष प्रसिद्ध हैं। यह ऋषि-परपरा बुद्ध और महावीर से पहलेकी है।

उनके बाद भी आजतक इस साधनाको प्राप्त सन्त महात्मा पुरुष देशके भिन्न-भिन्न भागोमे, भिन्न-भिन्न परंपराओमे और भिन्न-भिन्न जातियोमे होते आये हैं।

इसी अध्यात्म परपरामे हुए श्रीमद् राजचन्द्रकी जीवन

साधना हमे उतनी ही प्रेरणादायक और जीवनप्रेरक है। हम लोग उनके पावनकारी जीवनमे अवगाहन करके आत्म-सिद्धिके पथ पर विचरे।

श्रीमद् राजचन्द्रके दादाजी श्री पचाणभाई महेता मोरबी समीपस्थ 'माणिकवाडा'के मूल निवासी थे। वहाँसे वे अपने भाइयोसे अलग होकर स १८९२मे ववाणिया रहने आये थे।

ववाणिया आनेके बाद दादाजीने अेक मकान खरीदा था। इसी मकानमे श्रीमद् राजचन्द्रका जन्म हुआ था।

ववाणियामे पचाणदादा जहाज बनवाकर जहाजी-व्यापार करते थे। साथ-साथ अच्छे प्रमाणमे शराफी भी करते थे।

पचाणदादाकी बडी उम्रतक एक भी पुत्र जीवित न रहा, परन्तु बादमे श्री रवजीभाईका जन्म स १९०२के माह महीनेमे हुआ। श्रीमद् राजचन्द्रके पिताका नाम रवजीभाई और माताका नाम देवबाई था।

श्री रवजीभाई चौदह वर्षकी अवस्थासे ववाणिया तथा चमनपर आदि आस-पासके गावोमे व्याज वटावका काम करने लगे थे।

श्री रवजीभाई ववाणियाके ठाकुरके मन्दिरके चौपालमे समवयस्क मित्रोके साथ हमेशा बैठा करते थे। वहाँके भाट लोग अनेक प्रकारकी कथाये करते, उस समय वहाँ मनुष्योकी मण्डली जमती। मण्डलीमे रवजीभाई भी जाते। इसके अतिरिक्त गरासियाओके चौपालमे भी मण्डली बैठती

थी उसमे भी रवजीभाई जाया करते थे। वहाँ भाट चारण लोग कथाये, दन्तकथायें तथा धर्मकथाये करते। रवजीभाई उन्हे रसपूर्वक सुनते थे।

रवजीभाई बहुत ही भक्तिभावसे साधुसन्तोकी सेवा करते तथा गरीबोको अन्न-वस्त्र भी देते थे। साधु, सन्त, फकीर और महात्माओ पर उनकी खूब ही आस्था थी।

श्री रवजीभाईके यहाँ एक वयोवृद्ध आडतिया आया करते थे। एक बार वे बहुत बीमार हो गये। उस समय माता देवबाईने उनकी खूब ही सेवा-चाकरी की। वह वयोवृद्ध रोगके कारण अतिशय अशक्त हो गये थे। परन्तु देवबाई उन्हे जरा भी व्याकुल नही होने देती थी।

इनकी माता तुल्य सेवा चाकरीको देखकर वे वृद्ध आभारवश बोल उठे 'तुम मेरी खूब सेवा चाकरी करती हो। प्रभु! तुम्हारे यहाँ महाभाग्यशाली पुत्रका जन्म हो! बेटा देव! यह तुम्हे मेरा आशीर्वाद है।'

माता देवबाई अपने सास-ससुरकी अत्यन्त सेवा करती थी। सास तो प्रसन्न होकर कहती 'देव, तू तो हमारे घरमे देवी समान है। तेरे जैसी भली बहू किसीकी न होगी। बेटा, तेरा सबकुछ अच्छा होगा।

ऐसे भक्तिशील और सेवाभावी माता-पिताके यहाँ श्रीमद्का जन्म हुआ था।

श्रीमद् राजचन्द्रका जन्म ववाणियामे सवत १९२४के कार्तिकी पूर्णिमाके शुभ दिन रविवारकी रात्रिको दो बजे हुआ था।

जैनोमे कार्तिकी पूर्णिमाका अपूर्व माहात्म्य है। पूर्णिमा शब्द पूर्णतासूचक है। आत्माके पूर्णस्वरूप प्राप्त करनेके ध्येयमे पूर्णिमाकी महत्त्व कुछ कम नही है। इसी दिन महान तीर्थराज श्री सिद्धाचलकी यात्रा पालीतानामे अनेक श्रद्धालु जैन दूर दूरसे आकर भावपूर्वक करते है। इसके सिवाय कलिकाल सर्वज्ञकी पदवीधारण करनेवाले श्री हेमचन्द्राचार्यका जन्म भी वि स ११४५ (ई स १०८९)मे गुर्जरेश्वर कर्णदेवके समयमे कार्तिकी पूर्णिमाके पवित्र दिनको हुआ था।

श्रीमद्जीका प्यारका नाम 'लक्ष्मीनन्दन' था। पश्चात् स १९२८मे इस दुलारके नामको वदलकर 'रायचन्द्र' रखा। वादमे श्रीमद् राजचन्द्रके नामसे प्रसिद्ध हुए।

॰

२

वाल्यावस्थाके धार्मिक सस्कार

श्रीमद् राजचन्द्रके दादाजी श्रीकृष्णके भक्त थे। जव श्रीमद्की माता देववाई जैन सस्कारोमे पली-पुसी थी, ववाणियाके दूसरे वैश्य परिवार भी जैन धर्मका पालन करते थे। इन सभी सस्कारोका मिश्रण किसी विचित्र प्रकारसे गगा-यमुनाके सगमकी तरह इस वाल महात्माके हृदयमे ढलता था। श्रीमद् राजचन्द्रने वाईस वर्षकी वयमे अपनी वाल्यावस्थाका वर्णन 'समुच्चयवयचर्या' नामके लेखमे किया है।

उसमे श्रीमद्जी लिखते हैं कि–'मेरे पितामह कृष्णकी भक्ति करते थे। उनसे उस वयमे मैंने कृष्ण-कीर्तनके पद सुने थे, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न अवतारो सम्वन्धी चमत्कार श्रवण किये थे, जिससे मुझे भक्तिके साथ उन अवतारोमे प्रीति हो गई थी, और रामदासजी नामके साधु से मैंने वाललीलामे कठी वधवाई थी।

मैं नित्य कृष्णके दर्शन करने जाता, समय-समय पर कथाये सुनता, वारम्वार अवतार सम्वन्धी चमत्कारोसे

मोहित होता और उसे परमात्मा मानता, जिससे उसके निवास-स्थान देखनेकी परम जिज्ञासा थी। मै उसके सम्प्रदायका महन्त होऊ, जगह-जगह चमत्कार पूर्ण हरिकथा करता फिरू और त्यागी होऊ, तो कितना आनन्द आये ? यह विकल्पना हुआ करती थी तथा जब किसी वैभवशाली भूमिकाको देखता तब बहुत वैभवशाली होनेकी इच्छा होती थी।

उन दिनो मैने 'प्रवीणसागर' नामका ग्रन्थ पढ लिया था, परन्तु उसे विशेष समझा नही था, फिर भी स्त्री सम्बन्धी अनेक प्रकारके सुखमे लीन होऊ और निरुपाधिक होकर कथाये श्रवण करता होऊ तो कैसी आनन्ददायक दशा! यह मेरी तृष्णा थी।

गुजराती भाषाकी पाठमालामे कितने ही स्थलो पर जगत्कर्ता सम्बन्धी जो उपदेश है, वह मुझे दृढ हो गया था। जिससे जैन लोगोके प्रति मेरी बहुत जुगुप्सा थी। कोई भी पदार्थ बिना बनाये नही बन सकता, इसलिए जैन लोग मूर्ख है, उन्हे जगत्कर्ताकी खबर नही है। साथ-साथ उसी समय प्रतिमाके अश्रद्धालु लोगोकी क्रियाये देखनेमे आती थी। वे मलिन लगनेसे मै उन क्रियाओसे डरता था, अर्थात् वे मुझे प्रिय नही थी।

'जन्मभूमिमे जितने बनिये रहते थे उन लोगोकी कुल-श्रद्धा भिन्न-भिन्न होने पर भी कुछ अशोमे प्रतिमाको न माननेवालोसे ही मिलती-जुलती थी और मुझे उन लोगोका ही सग था। पहले से ही वहाँके आदमी मुझे

समर्थ शक्तिवाला और गावका नामाकित विद्यार्थी मानते थे। इमसे मै अपनी प्रशसाके कारण जानबूझकर वैसे मडलमे वैठकर अपनी चपल शक्ति दिखानेका प्रयत्न करता था। कठी के लिए वे वारम्वार मेरी हास्यपूर्वक टीका करते थे। फिरभी मै उनसे वाद-विवाद करता और समझानेका प्रयत्न करता था।

'परन्तु धीरे-धीरे मुझे उनकी 'प्रतिक्रमण सूत्र' आदि पुस्तकें पढनेको मिली, उनमे अत्यन्त विनयपूर्वक सव जीवो-से मित्रताकी कामना की है। इससे मेरी उनमे भी प्रीति उत्पन्न हुई और प्रथम प्रीति भी रही। धीरे-धीरे यह प्रसग वढा। फिर भी स्वच्छ रहनेके तथा वैष्णवोके दूसरे आचार-विचार प्रिय थे, और जगत्कर्ताकी श्रद्धा थी। इतनेमे कठी टूट गई, मैने फिर वह न वधवाई। उस समय वाधने न वाधनेका कारण मैने नही खोजा था।

इस प्रकार श्रीमद् राजचन्द्र अपनी तेरह वर्षकी आयु तक जैन धर्मके रगमे पूर्णतया रगे गये थे। वचपन से ही वैराग्य-प्रधान उनका चित्त भोगप्रधान वैष्णव सम्प्रदायकी अपेक्षा त्यागप्रधान जैन धर्मकी ओर विशेष आकर्षित होता गया।

श्रीमद्जी इसके सम्वन्धमे लिखते है कि—'जहा स्त्रियोके भोगनेका उपदेश हो, लक्ष्मीलीलाकी शिक्षा दी हो, रग-राग, गुलतान और ऐशआरामको ही तत्त्व वताया हो, वहासे हमारी आत्माको शान्ति नही है। क्यो कि यदि इसे धर्म-मत माने तो सारा ससार धर्ममत युक्त ही है। प्रत्येक गृहस्थका घर इन योजनाओसे भरा रहता है। यदि इसे

धर्म-मन्दिर कहे तो फिर अधर्म स्थानक कौन-सा? कोई इस प्रकार कहे कि उस धर्म-मन्दिरमे तो प्रभुकी भक्ति हो सकती है, तो उसके लिए खेदपूर्वक इतना ही उत्तर देना है कि वे परमात्मतत्त्व और उसकी वैराग्यमय भक्तिको नही जानते।

९

३

जातिस्मरण ज्ञान

श्रीमद् राजचन्द्रकी सात वर्षकी आयु बालवयके खेल-कूदमें व्यतीत हुई। परन्तु उस समय भी उनका झुकाव स्वाभाविक रूपसे आत्मोन्नतिकी ओर ही रहता था। श्रीमद् इस बारेमें 'समुच्चयवयचर्या'में लिखते हैं—उस समयकी मुझे इतनी स्मृति है कि विचित्र कल्पना (कल्पनाका स्वरूप या हेतु समझे बिना) मेरे आत्मामें आया करती थी। खेल-कूदमें भी विजय प्राप्त करनेकी और राजराजेश्वर जैसी उच्च पदवी प्राप्त करनेकी मेरी परम अभिलाषा थी। वस्त्र पहिननेकी, स्वच्छ रखनेकी, खाने-पीनेकी, सोने-बैठनेकी मेरी सभी दशायें विदेही जैसी थी, परन्तु हृदय कोमल था। अब भी वह दशा स्मृतिमें आती है। यदि इस समयका विवेकी ज्ञान उस वयमें होता तो मुझे मोक्षकी विशेष इच्छा नहीं रहती, ऐसी निरपराध दशा होनेसे वह बारम्बार स्मृतिमें आती है।

श्रीमद्जी जब सात वर्षके थे, उस समय एक अति महत्वका प्रसग बना था। श्रीमद्जीने 'समुच्चयवयचर्या'में

इस प्रसगका कुछ उल्लेख नही किया है, तथा वादके लेखोमे भी इसकी विशेष चर्चा देखनेमे नही आती। फिर भी मित्रोकी वातचीतमे प्रत्यक्ष पूछनेवालेको, अपनेको जातिस्मरण ज्ञान कव और किस प्रसग पर प्रगट हुआ था, इस विषयमे उन्होने कहा है।

श्रीमद्जीने कल्याणभाईसे कहा था कि हमे आठसौ भवोका ज्ञान है। उन्होने खीमजीभाईसे अपने पूर्वभवोका विस्तृतवर्णन किया था।

कच्छ-निवासी वैश्यभाई पदमशी ठाकरशी स १९४२से श्रीमद्जीके समागममे आये थे। उन्होने एक समय वम्वईमे भूलेश्वरके शाक मारकीटके पासके दिगम्बर जैन मन्दिरमे श्रीमद्जीसे प्रश्न किया था कि 'आपको जातिस्मृति ज्ञान है, ऐसा मैंने सुना है, वह उचित है?'

श्रीमद्जीने उत्तरमे कहा–'हा, है।' उसके आधार पर ही यह सव कहा गया है।

पदमशीभाईने पुन प्रश्न किया 'आपको जातिस्मरण ज्ञान कितनी आयुमे और कैसे हुआ?'

इससे अपने जीवनमे वना हुआ यह प्रसग श्रीमद्जीने कहा था, श्रीमद्जी उस समय सात वर्षके थे। ववाणियामे एक अमीचन्द्र नामके सद्गृहस्थ रहते थे। वे श्रीमद्जी पर खूब प्रेम रखते थे। एक समय अमीचन्द्रको सर्पने काट खाया, उससे उनकी तत्काल मृत्यु हो गई।

इस वातको सुनते ही वालक राजचन्द्र दौडते-दौडते दादाजीके पास गये। मृत्यु क्या वस्तु है, इसका उन्हे

ख्याल नही था। इससे उन्होने दादाजीसे पूछा—'दादाजी, अमीचन्द्र मर गये क्या?' बालकके इस सरल सवालको सुनकर दादाजीने विचारा कि यदि इस बातकी इस बालकको खबर पडेगी तो भयभीत होगा। इस कारणसे बालकके ध्यानको अन्य ओर आकर्षित करने के लिए भोजन करने के लिए कहा तथा इधर-उधरकी बाते करने लगे।

परन्तु बालक राजचन्द्रने मरणके सम्बन्धमे यह पहली ही बार सुना था, इसलिए उसे समझनेकी उन्हे तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न हुई और उससे वे बारम्बार इसी एक प्रश्नको पूछते रहे। अन्तमे थक कर दादाजीने कहा—'हा, बात सत्य है। बालक राजचन्द्र कुछ इतनेसे ही सन्तुष्ट होनेवाले नही थे। इसलिए उन्होने पुन पूछा—'दादाजी मर जाना (मृत्यु) क्या है?'

दादाजीने कहा—'उसमेंसे जीव निकल गया है और अब वह हिलना, चलना, बोलना आदि कुछ नही कर सकता, तथा खाना-पीना भी नही कर सकता। इसलिए इसे तालाबके पासके श्मसानमे जला आयेंगे।

तत्पश्चात् बालक राजचन्द्र थोडी देर घरमे इधर-उधर घूमकर छिपकर तालाबके समीप गये। वहाँ किनारे पर रहे हुए दो शाखावाले बबूलके वृक्ष पर चढकर देखा तो सचमुचमे चिता भक-भक जल रही थी और उसे बहुतसे मनुष्य चारो ओरसे घेरकर बैठे हुए थे।

एक परिचित और प्रेमी मनुष्यको इस प्रकारसे जलाते हुए देखकर उनको बहुत ही दु ख हुआ और वे थोडी देर के

लिए उलझनमे पड गये। उन्होने देखा कि अमीचन्द्रको जलानेवाले सगे सम्वन्धी तथा समझदार मनुष्य ही थे।

यह दृश्य देखकर वालक राजचन्द्र विचारने लगे कि यह सब क्या है? इस प्रकार मनुष्यको जला देना, यह कितनी क्रूरता है? ऐसा क्यो हुआ?

इस प्रकार उनके चित्तमे एक भारी उलझन पैदा हुई और तीव्र विचारधारा वही। उसी समय अचानक उनके हृदय परका पर्दा दूर हो गया और उन्हे जन्म-जन्मान्तरका कुछ दर्शन हुआ। फिर वे कुछ शान्त हो गये।

ऐसा ही अनुभव, जब वे जूनागढका किला देखने गये थे, उस समय फिर हुआ था, और तबसे उनको पुनर्जन्मका दृढ निश्चय हो गया था।

श्रीमद् राजचन्द्रको सात वर्षकी आयुमे अर्थात् १९३१मे जातिस्मरण ज्ञान हुआ और वैराग्य वढने लगा। इस 'अपूर्व अनुसार'का उल्लेख उन्होने सवत् १९५३मे लिखे हुए एक काव्यमे किया है।

धन्य रे दिवस आ अहो।
जागी रे शान्ति अपूर्व रे।
दश वर्षे रे धारा उल्लसी,
मट्यो उदय कर्मनो गर्व रे।
ओगणीससे ने एकत्रीसे,
आव्यो अपूर्व अनुसार रे।
ओगणीससे ने वेतालीसे,
अद्भुत वैराग्य धार रे।

अहा ! इस दिनको धन्य है, अपूर्व शान्ति जाग्रत हुई। दश वर्षमे यह धारा उल्लसित हुई और उदय कर्मका गर्व दूर हो गया। अहा ! इस दिनको धन्य है।

सवत् १९३१ उन्नीससौ इकत्तीसमे अपूर्व क्रम प्राप्त हुआ और उन्नीससौ बियालिसमे अद्‌भुत वैराग्यधारा प्रकाशित हुई। अहा ! इस दिनको धन्य है।

तथा इसी भावको प्रगट करता हुआ दूसरा एक काव्य स १९४५मे लिखा था। उसमे श्रीमद्‌जी कहते है

'लघु वयथी अद्‌भुत थयो, तत्त्वज्ञाननो बोध,
ए ज सूचवे एम के, गति-आगति का शोध ?
जे सस्कार थवो घटे, अति अभ्यासे काय,
विना परिश्रम ते थयो, भव शका शी त्याय,'

मुझे जो लघु वयसे तत्त्वज्ञानका बोध हुआ है, वह यह सूचित करता है कि गति-आगति खोजनेकी क्या आवश्यकता है। अर्थात् इस बोधसे ही पुनर्जन्मकी सिद्धि हो जाती है।

जो सस्कार अत्यन्त अभ्यास करनेसे उत्पन्न होते है वे सब मुझे बिना किसी परिश्रमके सिद्ध हो गये, तो फिर पुनर्जन्मके सम्बन्धमे शका क्या ?

श्रीमद्‌को जातिस्मरण ज्ञान था, परन्तु वे इस विषयकी चर्चामे पीछेसे बडी उम्रमे भी नही उतरते थे। क्योकि उन्हे तो एक आत्मानुभव ही प्रिय था। किसी समय किसी परिचित मनुष्यके सन्मुख अपने इस अनुभवकी बात

यदि वे कहते तो उस समय उस पर वे लोग कुछ अनुमान करते थे। उनके परिचयमे आनेवाले मनुष्योके शब्दोको यहाँ लिखना अनुचित न होगा। श्रीमद्जीने स्वय उन लोगोसे कहा था कि, 'मै स्वय महावीर स्वामीका शिष्य था। अमुक प्रकारका प्रमाद करनेसे ८०० भव करने पडे है। परन्तु इस विषयमे जब उनके सम्बन्धियोकी ओरसे भारपूर्वक पूछनेमे आता, तब श्रीमद् 'मुझे इस विषयका अनुभव है,' इतना कह कर चुप हो जाते और उस विषयकी व्यर्थ कुतूहल वृत्तिको रोकनेका प्रयत्न करते।

२६वे वर्षमे लिखे हुए एक पत्रमे श्रीमद्जी विदित करते है कि

'पुनर्जन्म है, अवश्य है, इसके लिए मै अनुभवसे 'हाँ, कहनेमे अचल हू।' यह वाक्य पूर्वभवके किसी योगका स्मरण होते समय अनुभव सिद्ध लिखा है। जिसने पुनर्जन्मादि भाव किये है, उस पदार्थको किसी प्रकारसे जानकर यह वाक्य लिखा है।

श्रीमद् राजचन्द्रजी कहते थे कि–शास्त्रोमे अनेक वार कहनेमे आया है कि आत्मा पर अज्ञान कर्मोके पटल छा गये है, उससे आत्मा अपनी अनेक शक्तियो और शुद्ध स्वरूपको गुमा वैठा है। जैसे-जैसे मनुष्य अपनी इस मलिनताको दूर करता जाता है, वैसे-वैसे उसकी शक्तियाँ प्रगट होती जाती है।

जिस तत्त्वको जाननेकी और प्राप्त करनेकी वृत्ति लोगोमे वृद्धावस्थामे भी नही उत्पन्न होती, उस तत्त्वको

प्राप्त करनेकी जो चटपटी श्रीमद् राजचन्द्रमे अति अल्प वयमे मालूम होती है, वह ऊपरके सिद्धान्तसे ही समझमे आ सकती है।

बाईस वर्षकी उम्र तक श्रीमद् किस-किस स्थितिमेंसे पार हुए इसका चित्रण उन्होने 'समुच्चयवयचर्या'मे अति सचोट रीतिसे किया है। वह यहाँ विचारने योग्य है।

'बाईस वर्षकी अल्प वयमे मैंने आत्मा सम्बन्धी, मन सम्बन्धी, वचन सम्बन्धी, तन सम्बन्धी और धन सम्बन्धी अनेक रग देखे हैं। नाना प्रकारकी सृष्टि-रचना, नाना प्रकारकी सासारिक लहरे, अनन्त दु खके मूल कारण इन सबका मुझे अनेक प्रकारसे अनुभव हुआ है। समर्थ तत्त्वज्ञानियोने और समर्थ नास्तिकोने जो-जो विचार किये है, उस प्रकारके अनेक विचार मैंने इस अल्प वयमे किये हैं। महान् चक्रवर्ती द्वारा किये गये तृष्णाके विचार और एक निस्पृही महात्मा द्वारा किये गये निस्पृहताके विचार भी मैंने किये है। अमरत्वकी सिद्धि और क्षणिकत्वकी सिद्धिका खूब विचार किया है। थोडी-सी आयुमे महान विचार कर डाले हैं, महान विचित्रताकी प्राप्ति हुई है।'

पुनर्जन्मकी प्रत्यक्ष अनुभूतिके विना इतनी अल्प आयु मे जीवनकी इतनी विपुल व्यापकताका सभव नही है।

इसके सिवाय स १९४६ के भाद्रपद सुद छठके पत्रमे उपस्थित की गई विचारणा, पूर्वभवके स्मरणका ज्ञान उनको था, इस बातका समर्थन करती है।

'अन्तर्ज्ञानसे स्मरण करने पर ऐसा कोई काल नही

मालूम होता या याद नही आता कि जिस कालमें इस जीवने परिभ्रमण न किया हो, सकल्प विकल्पका रटन न किया हो, और इससे 'समाधि'को न भूला हो। निरन्तर यह स्मरण रहा करता है, और वह महा वैराग्यको देता है।

और स्मरण होता है कि इस परिभ्रमणको केवल स्वच्छन्दतासे करते हुए इस जीवको उदासीनता क्यो न आई? अन्य जीवोके प्रति क्रोध करते हुए, मान करते हुए, माया करते हुए, लोभ करते हुए या अन्यथा करते हुए, वह अनुचित है ऐसा यथायोग्य क्यो नही जाना? अर्थात् इसे जानना योग्य था, फिर भी नही जाना। यह पुन परिभ्रमण करनेका वैराग्य उत्पन्न करता है।

फिर स्मरण होता है कि, जिसके विना मैं एक पल भी नही जीवित रह सकता, ऐसे कितने ही पदार्थों (स्त्री आदि)को अनन्तवार छोडते हुए, उनका वियोग हुए अनन्तकाल हो गया, तो भी उनके विना जीवित रहा, यह कुछ कम आश्चर्यकारक नही हे। अर्थात् जिस-जिस समय वैसा प्रीतिभाव किया था, उस-उस समय वह कल्पित था। इस प्रकारका प्रीतिभाव क्यो हुआ? यह पुन पुन वैराग्य देता है।

जिसका मुख मैं किसी समय भी नही देखूँ, जिसे कभी ग्रहण नही करूँ, उसके घरमे पुत्र रूपसे, स्त्री रूपसे, दास रूपसे, दासी रूपसे तथा छोटे जन्तु रूपसे मैं क्यो जन्मा? अथात् ऐसे द्वेषसे इस रूपमे जन्म लेना पडा। और वैसी अभिलाषा तो नही थी। तो कहो यह स्मरण होते हुए

इस क्लेशित आत्मा पर जुगुप्सा नही आती? आती है।

'अधिक क्या कहे? पूर्वके जिन-जिन भवान्तरोमे भ्रान्तिने भ्रमण किया, उसका स्मरण होनेसे अव कैसे जियें? यह चिन्तन हो रहा है। फिर जन्म ही धारण न करूँ, और फिर ऐसा करूँ ही नही ऐसी दृढता आत्मामे प्रकाशित है। परन्तु कुछ निरुपायता है। वहाँ क्या करू?

'जो दृढता है, उसे पूर्ण करना, अवश्य पूर्ण करना, यही रटन है। परन्तु जो विघ्न आते है, उन्हे एक ओर करना पडता है, अर्थात् हटाना पडता है, और उसमें समय जाता है। जीवन चला जा रहा है, इसे न जाने देना। जहाँ तक यथायोग्य जीत न हो वहाँ तक ऐसी जो दृढता है, उसका क्या करना?

'कदापि इसमेका किसी तरह कुछ करे, तो वैसा स्थान कहाँ है कि जहाँ जाकर रहे? अर्थात् वैसे सन्त कहाँ है जहाँ जाकर, इस दशामे रह कर उसका पोषण प्राप्त करे। तो अव क्या करना?

'कुछ भी हो, कितने ही दुःख क्यो न पडे, कितने परिसह क्यो न आये, कितने ही उपसर्ग क्यो न आये, कितनी व्याधियाँ क्यो न आये, कितनी उपाधियाँ क्यो न आये, चाहे तो जीवन एक समय मात्र क्यो न हो और दुर्निमित्त क्यो न हो, परन्तु ऐसा ही करना। हे जीव! वहाँ तक छुटकारा नही है।'

१७ वर्षकी उम्र पहलेकी श्रीमद् राजचन्द्र कृत 'पुष्पमाला'के वारेमे महात्मा गाधीजीने पण्डित सुखलालजीसे वातचीत करते हुए कहा था 'अरे! यह पुष्पमाला तो पुनर्जन्मकी साक्षीरूप है।'

४

विद्याकालमे अद्‌भुत शक्तियोका आविर्भाव

सात वर्षकी उम्र वाद श्रीमद् राजचन्द्रको विद्याशालामे पढने के लिए भेजा गया।

वालक राजचन्द्रकी स्मरणशक्ति इतनी अधिक तीव्र थी कि एक वार ही पाठ पढ जानेसे उनको वह पूर्णत याद रह जाता। उन्होने स्वय 'समुच्चयवयचर्या'मे लिखा है, तदनुसार 'उस समय निरपराधी स्मृति होनेसे एक ही वार पाठका अवलोकन करना पडता था स्मृति इतनी वलवती थी कि वैसी स्मृति वहुत ही थोडे मनुष्योमे इस कालमे, इस क्षेत्रमे होगी।'

श्रीमद्‌जीको इस स्मरण-शक्तिके कारण सामान्य वालकोकी तरह घर पर फिरसे पढनेकी कुछ आवश्यकता नही रहती थी। इससे वाहरसे अन्य मनुष्योको श्रीमद् पढनेमे प्रमादी लगते थे। परन्तु विद्याशालामे शिक्षक जो कुछ उन्हे वहाँ सिखाता वे उसे वही सीख लेते थे। इससे घर पर सीखनेकी जरूरत नही रहती थी।

इस कारणसे एक महीनेसे भी कम समयमे अकपहाडे

पूरे किये और दो वर्षमे शालाकी सात पुस्तके पूरी की। परिणाममे जिस वडे विद्यार्थीने उनको प्रथम पुस्तकका प्रारंभ कराया था उसे स्वय सात पुस्तकोका अध्ययन पूर्ण करके पहली पुस्तक पूर्ण कराई थी।

उनमे छुटपनसे ही सुन्दर कहानियाँ और कथाये स्वय घडकर कहनेकी कोई अद्‌भुत शक्ति थी। आठ वर्षकी अवस्थामे उन्होने कविता वनाना प्रारम्भ किया था, जिसे वादमे जाचने पर छन्दशास्त्रानुसार सिद्ध हुई थी। उस समय उनको जो मिल सके वे सब काव्य-ग्रन्थ पढ डाले थे, और कुछ कठस्थ भी हो गये थे।

कहा जाता है कि श्रीमद्‌ने आठ वर्षकी अवस्थामे कविताकी ५००० पंक्तियाँ लिखी थी। और नव वर्षकी उम्रमे रामायण तथा महाभारतको पद्योमे लिखा था।

प्रथमसे ही श्रीमद् स्वभावके अति सरल और प्रेमी थे। श्रीमद्‌जी 'समुच्चयवयचर्या'मे लिखते है कि, 'उस समय मुझमे प्रीति—सरल वात्सल्यता—वहुत थी, सबसे एकता चाहता, सर्वमें भ्रातृभाव हो तो ही सुख, यह मुझे स्वाभाविक होता था। लोगोमें किसी भी प्रकारसे भिन्नताके अंकुर देखता कि मेरा अन्त करण रो उठता था।* वहाँतक मुझसे स्वाभाविक रीतिसे भद्रिकताका ही सेवन हुआ था।

* श्रीमद्‌जीका यही स्वभाव अन्त तक रहा था। इस विषयमे महात्मा गाधीजी कहते हैं:

'वे वहुधा कहा करते थे कि, "कोई चारो ओरसे वरछियो चुभाये, उसे सहन कर सकू, परन्तु जगतमे जो झूठ, पाखड और

मै मनुष्य जातिका बहुत विश्वासी था। मुझे स्वाभाविक सृष्टिरचना पर खूब प्रीति थी।'

अपनी विद्याशालाके अतिरिक्त अध्ययनके विषयमे श्रीमद्जी विदित करते है कि, 'उस समय मैने कितने ही काव्यग्रन्थोको पढा था, तथा अनेक प्रकारके बोधग्रन्थ छोटे-बडे इधर-उधरके भी देख डाले थे, जो प्राय आज भी स्मृतिमे है।'

ऐसा प्रखर बुद्धिशाली और प्रेमी विद्यार्थी अध्यापकवृन्द तथा सहाध्यायियोको प्रिय हुए विना न रहे। कक्षामे अध्यापक तो बैठा ही रहता और श्रीमद्जी साठ विद्यार्थीयोका पाठ लेते थे।

विद्यार्थीयोका श्रीमद् पर कितना अधिक प्रेम था इसका एक उदाहरण प्रसिद्ध है। किसी समय एक शिक्षकने किसी कारणसे श्रीमद् राजचन्द्रको उलाहना दिया। इससे दूसरे दिन श्रीमद्जी विद्याशालामे नही आये। इधर विद्यार्थी श्रीमद्जीको पाठशालामे न देखकर, उनके घर गये और उनके साथ सब विद्यार्थी दूरके एक खेतमे चले गये।

जब अध्यापक पाठशालामे आये तो वहॉ एक भी विद्यार्थी न मिला। इसका कारण विचारनेसे शिक्षकको

अत्याचार चल रहा है, धर्मके नामसे जो अधर्म प्रवर्त रहा है, उसकी बरछी सहन नही हो सकती।" अत्याचारोसे खौलते हुए उनको मैने कईबार देखा है। उन्हे समस्त जगत् अपने कुटुम्ब समान था। अपने भाई-बहनोको मरते देखकर जो क्लेश अपनेको होता है, उतना क्लेश उनको जगतमे दु ख और मरणको देखकर होता था।'

लगा कि, कल रायचन्दभाईको उलाहना दिया था इससे सभी विद्यार्थी उनके पास होगे। जाँच पडताल करने पर सब विद्यार्थी खेतमे गये हुए हैं, ऐसा जानकर शिक्षक वहाँ गये और श्रीमद् राजचन्द्रको समझा-बुझाकर वापस पाठशालामे ले आये।

बचपनसे ही श्रीमद्मे नवीन जाननेकी, नया सुननेकी और नया सीखनेकी तथा उसके ऊपर मनन-चिन्तन करनेकी अत्यन्त टेव थी।

दसवे वर्षमे तो वे अनेक विषयोके ऊपर छटादार सुन्दर भाषण करते थे।

ग्यारह वर्षकी अवस्थामे उन्होने अखबारोमे लेख लिखना प्रारभ कर दिया था, और इनामी निबन्ध लिखकर योग्य इनाम भी प्राप्त किये थे। उस ही वर्ष उन्होने स्त्री-शिक्षाकी उपयोगिताके बारेमे एक निबन्ध लिखा था।

बारह वर्षकी आयुमे उन्होने तीन दिनमे घडीके ऊपर तीन-सौ पक्तियाँ लिख डाली थी।

तेरह वर्षकी अवस्थामे श्रीमद्जी अग्रेजी पढनेके लिए राजकोट गये थे। उन्होने वहाँ कितने समय तक तथा कहाँतक अग्रेजी पढी इसकी कोई जानकारी नही मिल सकती। परन्तु २३ वे वर्षमे लिखे हुए एक पत्रमे उन्होने लिखा है

'शिशुवय से ही इस वृत्तिके उगनेसे किसी प्रकारका परभाषा अभ्यास न कर सका और वह न हो सका उसके लिए कोई अन्यथा विचार नही हैं। इससे आत्मा

अधिक विकल्पी होता। और विकल्पादि क्लेशका तो नाश करना ही चाहता था। इसलिये जो कुछ हुआ वह कल्याणकारक ही।'

इसी समयमे एक समय कच्छके दीवान मणीभाई जशभाईने श्रीमद्जीसे कच्छ तरफ आनेकी विनती की थी। इससे वे कच्छ गये थे। वहाँ धर्म सम्बन्धी अच्छा व्याख्यान दिया था। उसे सुनकर कच्छके लोग प्रशसा करते कहने लगे थे कि, यह वालक महाप्रतापी और यशस्वी होगा।

श्रीमद् राजचन्द्रके अक्षर इतने छटादार थे कि लिखनेके लिए उन्हे कच्छ दरवारके मुकाम पर बुलाया जाता था और वे वहाँ जाते थे।

जब श्रीमद्जी दश वर्षके थे उस समय बना हुआ एक प्रसग उनकी महान सहनशक्तिकी साक्षी देता है। श्रीमद्जीके दादाजी ९८ वर्षकी आयुमे स्वर्गवासी हुए। पचाणदादा स्वर्गवासी हुए उस समय श्रीमद्जी दश वर्षके थे।

श्मसानमे जाते समय श्रीमद्जी ठठरीके आगे आगे अग्निकी हंडी ले कर चल रहे थे। पाँवमे जूते नही थे। उस समय पैरोमे जूते पहरनेका रिवाज नही था।

मार्गमे चलते हुए श्रीमद्जीके पैरमे एक तीक्ष्ण लम्बा काँटा चुभ गया, परन्तु उन्होने उसकी वेदनाकी ओर ध्यान ही न दिया।

अग्निसस्कार करके सभी मनुष्य घर वापस आये। माता देववाईने देखा कि श्रीमद्जी लचकते-लचकते आ रहे है, इससे माताने पूछा, 'भाई, पैरमे क्या लगा है? पैर

क्यो इस तरह लचकता है?'

माताने पाँवकी एडी देखी तो उसमे बबूलका एक तीक्ष्ण तथा लम्बा काँटा चुभा हुआ था। यह देखकर माताने पूछा, 'भाई, यह काँटा कहाँसे लगा?'

श्रीमद्‌जीने कहा, 'माँ, मरघटमे जाते समय मार्गमे लगा है।'

माताने कहा, 'भाई, तूने किसीसे कहकर काँटा क्यो नही निकलवा लिया? यहाँ तक यह वेदना कैसे सहन की?'

श्रीमद्‌जी मौन ही रहे।

तेरह वर्षकी वयसे श्रीमद्‌जी नियमसे खानगीमे नये-नये विषयोका अध्ययन करने लगे थे और पन्द्रह वर्षकी आयु तकमे अनेक विषयो सम्बन्धी विलक्षण ज्ञान प्राप्त कर चुके थे।

तेरह वर्ष पूरे होनेके बाद श्रीमद् राजचन्द्र पिताकी दुकान पर बैठने लगे थे। वहाँ भी उन्होने खेल-कूद या अन्य प्रपचोमे अपना समय न गुमाकर वाचन-मनन चालू रखा था। श्रीमद्‌जी स्वय इस सम्बन्धमे लिखते है, 'दुकान पर रहकर मैंने नाना प्रकारकी मौज मजाये की है, अनेक पुस्तके पढी है, राम इत्यादिके चरित्रो पर कविताये रची है.. तो भी किसीको मैंने कम अधिक भाव नही कहा या किसीको कमज्यादा तौलकर नही दिया, यह मुझे बराबर याद है।'

इस प्रकार इतनी छोटी उम्रमे भी उनकी व्यवहारमे नीतिधर्मके ऊपर भार देनेकी स्वाभाविक वृत्ति थी, वह ध्यान देने योग्य है।

❦

५

वृद्धो जैसा ज्ञान

जब श्रीमद्‌जी दश वर्षके थे तब वे एक बार मोरबी गये, वहाँसे अपने ननिहालमे राजकोट जानेका विचार था। इससे मोरबीके कुटुम्बीजन किसी योग्य साथको देखने लगे। उसी समय मोरबीके न्यायाधीश धारसीभाई राजकोट जानेवाले है, ऐसी खबर मिली। अत उन्होने उनसे पूछा कि, आप रायचन्दको राजकोट अपने साथ ले जायेगे? उसे राजकोट अपने ननिहालमे जाना है।

धारसीभाईने हाँ कहा और उन्हे अपने साथ राजकोट ले गये।

राजकोट जाते समय मार्गमे धारसीभाईका श्रीमद्‌के साथ अनेक प्रकारका वार्तालाप हुआ। श्रीमद्‌जीकी मननीय बाते सुनकर उनको खूब ही आश्चर्य हुआ कि लगभग दस वर्षकी उम्रका यह लडका कितना होशियार है। वृद्धावस्थाके आदमी जो बाते नही कर सकते वैसी बुद्धिकी बाते सुनकर धारसीभाईको लगा कि, कैसी इस बालककी चतुराई! उनके गुणोसे आकर्षित होकर धारसीभाई बोले, 'रायचन्द,

तुम राजकोटमे हमारे साथ ही रहना।'

श्रीमद्ने कहा 'नही, मै अपने ननिहालमे रहूँगा।'

धारसीभाईने अत्यन्त आग्रह किया, तव श्रीमद् बोले, आपके यहाँ आता रहूँगा, परन्तु निवास तो ननिहालमे ही होगा।

श्रीमद् राजकोट पहुचे तव ननिहालमे गये। वहाँ मामाने पूछा, 'तुम किसके साथ आये?'

श्रीमद्ने कहा, 'मै धारसीभाईके साथ आया हूँ।'

दोनो मामाओने जाना कि धारसीभाई यहाँ आये है। इससे वे दोनो मिलकर उनके लिए पडयत्र रचनेकी परस्पर प्रपची वाते करने लगे।

भोजन करते करते श्रीमद् राजचन्द्रने यह सव सुना, इस परसे उन्होने अनुमान लगाया कि, 'इन दोनो भाइओकी धारसीभाईके साथ कुछ खटपट है, और इससे वे दोनो उनको मार डालनेका प्रपच रच रहे है, तो मुझे उनके यहाँ जाकर यह महान उपकार करनेका अवसर न चूकना चाहिए। उनको सावधान कर देना योग्य है।' ऐसा विचार कर भोजनके वाद श्रीमद् जलदीसे धारसीभाईके यहाँ गये।

श्रीमद्ने धारसीभाईसे पूछा, 'धारसीभाई, हमारे मामाके साथ आपका कुछ सम्वन्ध है?'

धारसीभाईने उनसे पूछा, 'क्यो?'

श्रीमद्ने कहा, 'मै पूछता हू।'

तव धारसीभाई बोले, 'पारिवारिक सम्वन्ध नही है,

परन्तु राज सम्बन्धी खटपट चलती है।'

तब श्रीमद्जी बोले, 'यदि ऐसा है तो आपको उनसे सावधान रहना चाहिए। क्योकि वे आपके लिये कोई उपाय ढूढते थे। आपको ठिकाने पहुचा देनेकी बात करते थे। इसलिए आप इस विषयमे प्रमादी न रहे।'

धारसीभाईने आश्चर्यचकित होकर पूछा, 'परन्तु तुमने यह कैसे जाना कि वे मेरे लिए ऐसा विचार कर रहे है?'

श्रीमद्ने उत्तर दिया, 'मै भोजन करता था, उस समय बाहर मै सुन सकूँ इतने जोरसे वे बाते कर रहे थे। और मै किसके साथ आया हूं, यह भी उन्होने जब पूछा तब मैने आपका नाम लिया। उस परसे उन्होने यह बात छेडी थी।'

धारसीभाईने पूछा, 'तुम्हारे देखते उन्होने वैसी बात क्यो की?'

श्रीमद्ने कहा, 'यह छोटा बालक है, वह इन बातोमे क्या समझे? ऐसा जानकर वे बाते कर रहे थे। इससे मै आपसे कहने—सावधान करनेके लिए आया हूँ।'

धारसीभाईके मनमे हुआ कि, अहो! इस बालकमे कितनी उपकार बुद्धि! किसी बडे आदमीको भी न सूझे वैसा महाउपकार यह बालक कर रहा है! अच्छा हुआ कि इसे मै साथमे ले आया। धन्य है इस बालक महात्माको! मेरा धन्य भाग्य कि इसका मुझे सग हुआ! ऐसा विचार कर वे अत्यन्त आनन्दित हुए।

इसी समयमे ऐसा हुआ कि, कच्छ-कोडायके रहनेवाले

शा हेमराजभाई तथा नलियाके निवासी शा मालसीभाई श्रीमद्से मिलनेके लिए ववाणिया आ रहे थे। उन्होने सुना था कि ववाणिया निवासी कविराज रायचन्दभाई बडे बुद्धिशाली है। इनकी प्रसिद्धिसे आकर्षित होकर ये दोनो सज्जन साडनी पर सवार होकर ववाणियाकी ओर रवाना हुए। ववाणिया आने पर मालूम हुआ कि वे तो मोरवी गये है। इससे वे दोनो सज्जन मोरवीकी ओर रवाना हुए। वहाँ ऐसा समाचार मिला कि, रायचन्दभाई अपने ननिहाल राजकोट गये है। इस कारण वे मोरवीसे राजकोटकी तरफ चले। इधर श्रीमद् राजचन्द्रने अपने निर्मल ज्ञानमे जाना कि दो कच्छी भाई साडनी पर सवार होकर मुझसे मिलने आ रहे है। अत श्रीमद् धारसी-भाईके पास जाकर बोले, 'दो सज्जन कच्छसे आनेवाले है। उन्हे आप अपने यहाँ स्थान दे सकेगे?'

धारसीभाईने कहा, 'हाँ, खुशीसे मेरे यहाँ आकर रहे। मै उनके लिए सब प्रबन्ध कर दूंगा।'

तब इस विषयमे निश्चित होकर श्रीमद् इन भाइयोके आनेके मार्गमे स्वागतार्थ गये।

जब ये दोनो महाशय समीप आये, तब श्रीमद् राजचन्द्रने बिना जान-पहचानके उनका नाम लेकर उनसे कहा, 'कहिये हेमराजभाई? कहिये मालसीभाई?'

अपना अपना नाम सुनकर वे दोनो सज्जन विचारमे पड गये कि, हमारा नाम इन्होने कहाँसे जाना? हम लोगोने तो प्रथमसे किसीको अपने आनेकी खबर नही दी है।

यह तो वडा भारी आश्चर्य! इससे उन दोनोने विस्मित होकर पूछा, 'तुमने कैसे जाना कि हमलोग इस समय इसी मार्गसे आ रहे है?'

श्रीमद्ने कहा, 'आत्माकी अनन्त शक्ति है, उसके द्वारा हम जानते है।'

यह सुनकर वे सज्जन मनमे समझ गये कि, हमलोग इनसे मिलकर, इनके साथ वातचीत करके इन्हे विशेप अध्ययनके लिए काशी भिजवानेकी इच्छासे यहाँ आये है। परन्तु ऐसे अजव शक्तिधारी निर्मल आत्माको क्या पढना वाकी है? फिर भी इनमे इस सम्वन्धमे कुछ विनती करके तो देखे।

भोजनके वाद कच्छके इन भाइयोने धारसीभाईसे कहा, 'हमे रायचन्दभाईके साथ निजी वात करना है, तो ऐसा एकान्त स्थल क्या हमे मिल सकेगा?'

धारसीभाईने वैसा स्थान वताया। वहाँ एकान्तमे वैठकर वे लोग श्रीमद्जीसे वाते करने लगे।

श्रीमद्की वाते सुनकर उनको इनकी अद्‌भुत शक्तियोका परिचय हुआ। इससे उन भाइयोके मनमे आया कि, इनको काशी ले जाकर क्या अधिक ज्ञान देना? फिर भी हमलोग जिस कामके लिए आये है उसके लिए कुछ प्रयत्न तो अवश्य करना चाहिए। जो कुछ होना होगा, होगा। हमको अपना स्पप्ट हेतु कह देना चाहिए।

यह विचार करके उन सज्जनोने अपने मनके विचार उनके सामने उपस्थित किये 'आपको विद्याध्ययन कराने

काशी ले जानेकी विनती करने हमलोग आये है। आप काशी चलिये। आपके खाने-पीने, रहने-करनेकी सब व्यवस्था हम कर देगे। यदि आप हमारे साथ चले तो बडा उपकार होगा।' इस प्रकार अनेक लालच देकर साथमे ले जानेका प्रयत्न किया।

परन्तु श्रीमद्ने इनकार करते हुए कहा कि, मेरा वहाँ जाना न बन सकेगा।

इससे वे भाई समझ गये कि, प्रथममे जो अनुमान लगाया था कि अपना विचार सफल न होगा, वैसा ही हुआ, इनको काशी जाकर क्या अधिक सीखना है!

तत्पश्चात् वे दोनो सज्जन धारसीभाईके पास गये। इसने धारसीभाईने कहा, 'रायचन्दभाईके साथ हुई बात-चीत यदि मुझे कहने योग्य हो तो आप लोग कहिये।'

हेमराजभाई बोले, 'छिपाने जैसी कोई बात नही है। परन्तु हम लोग अपने विचारमे सफल न हुए।'

धारसीभाईने फिर पूछा, 'सफल क्यो न हुए।' उसके उत्तरमे उन्होने उनको सारा प्रसग कह सुनाया और कहा, 'हमने इन्हे प्रथमसे अपने आनेकी कोई सूचना नही दी थी तो भी ये स्वयमेव मार्गमे सन्मुख आये, हमे नामपूर्वक बुलाया, यहाँ सब तैयारी कराई। यह तो कोई आश्चर्यकारी महापुरुष है!'

यह सुनकर धारसीभाईको आनन्द सहित आश्चर्य हुआ। उन्हे तो प्रथम ऐसा लगा था कि रायचदभाई इस समय भूल कर रहे है। इतना अधिक सुविधा कर देनेके लिए

जव ये लोग तैयार है, तो हाँ क्यो नही कहते? उनको अध्ययनके लिए काशी जाना चाहिए। परन्तु वाद की सत्य घटनासे समझे कि जो व्यक्ति इतनी-सी थोडी आयुमे इस प्रकारकी अजव शक्तिवाला है, उसे पढकर भी क्या करना है? और इनकी गभीरता भी कितनी है, कि सागरके समान सव समा सकते है, लेशमात्र भी नही छलकते।

इस तरह धारसीभाई जैसे महान न्यायाधीशको श्रीमद्के ज्ञानादि गुणकी यथार्थ महत्ता लगी, इससे 'गुणा पूजास्थान गुणिपु, न च लिग न च वय।' इस न्यायके अनुसार धारसीभाई प्रथम श्रीमद्को अपने साथ गद्दी पर वैठाते, इसके वदले जवसे उनको यह महापुरुष है ऐसी प्रतीति हुई तवसे वे उन्हे गद्दीतकियेसे टिककर वैठाते और स्वय उनके सामने नीचे वैठते। इस तरह वे पूज्यभाव धारण कर विनयका पालन करते। और तत्पश्चात् जैसे-जैसे श्रीमद्के साथका सत्समागम वढता गया, वैसे-वैसे धारसी-भाईका श्रीमद्के प्रति श्रद्धाभाव वढता गया। और अन्तमे श्रीमद् राजचन्द्रको परमकृपालु सद्गुरु मानकर उनकी शरण ग्रहण की।

श्रीमद्का वापस ववाणिया जानेका विचार हुआ। उस समय उनके ननिहालवालोने मिठाईका एक डिव्वा भरकर मार्गमे नाश्ता करनेके लिए रख दिया था। उसे लेकर तथा सवसे अनुमति लेकर श्रीमद् ववाणिया तरफ चले। धारसी-भाईसे मिलकर उनकी भी अनुमति ली थी।

परन्तु उस समय श्रीमद्के पास गाडीके किरायेके लिए

पैसे नही थे। इससे उन्होंने एक हलवाईके यहाँ डिब्बेकी मिठाई वेचकर कियायेके पैसे प्राप्त किये। धारसीभाईने इतनी पहचान होने पर भी उनसे कुछ भी माग न की तथा उधार भी पैसे न मागे। छोटी-सी वय होने पर भी समझदार गृहस्थकी तरह समझशक्ति थी कि,

'मरजाऊं मागूं नहि, अपने तनके काज,
परमारथके कारण मागूं, ना मै समजु लाज।'

कच्छके भाइयोको किसी प्रकारका कष्ट न हो, इसके लिए धारसीभाईने श्रीमद्‌ने विनती की और उन लोगोके आदर-सत्कारका प्रबन्ध किया। परन्तु अपने लिए किरायेके थोडे भी पैसे किसीने न मागे। किसीके सामने हाथ धर-कर उन्होंने दीनभाव नही दिखाया।

९

६

अवधान शक्ति

सवत् १९४०के अरसेमे श्रीमद् राजचन्द्रमे एक दूसरी अद्‌भुत शक्तिका दर्शन होता है।

ववाणिया गाँव छोटा-सा होनेसे इनका मन प्रवासके लिए आतुर रहा करता था। और ववाणियामे सुज्ञ, विद्वान मनुष्योका समागम भी थोडा मिलता, इस कारण कही वाहर जानेकी इनकी इच्छा रहा करती थी। सवत् १९४०के अरसेमे श्रीमद् मोरवी गये थे।

उस समय मोरवीमे शास्त्री शकरलाल माहेश्वर भट्ट जाहिरमे अष्टावधानके प्रयोग करके वताते थे। अष्टावधान अर्थात् आठ भिन्न भिन्न विपयोकी ओर एकही साथ लक्ष्य रखकर भूल विना आठ आठ क्रियाओको कर वताना।

इसी समयमे वम्वईमे गट्टुलाल महाराज भी अष्टाव-धानके प्रयोग करते थे।

उस समयके जानकारी, अनुसार हिन्दुस्तानमे ये दो पुरुप ही इस प्रकारकी चमत्कारी शक्तिवाले माने जाते थे।

श्रीमद् मोरवी आये हुए थे, उस समय जैनोके उपा-

अयने शास्त्री शकरलालने आठ अवधान किये। वणिक् भूषण कविराजके तौर पर ख्यातिप्राप्त श्रीमद्को भी अष्टावधानोको देखनेके लिए आमत्रण दिया गया था।

श्रीमद्की स्मरणशक्ति अद्भुत तो थी ही। इससे उन्होंने अवधान देखे और तुरन्त सीख लिए।

दूसरे दिन वसन्तबागमे प्रथम अपनी मित्र-मडली समक्ष नये नये विषयोको लेकर अवधान कर बताये। तत्पश्चात् दो हजार प्रेक्षकोंके समक्ष बारह अवधान कर दिखाये।

इस समय बम्बईके सेठ लक्ष्मीदास खीमजीभाई मोरबी आये हुए थे। हाईस्कूलमे एक बडी सभा भरके श्रीमद्ने उन्हे बारह अवधान करके बताये। उनकी ऐसी अपूर्व शक्ति देखकर सेठ लक्ष्मीदासने कहा, 'इस समय भारतमे यह एक ही पुरुष इतनी शक्तिवाला है।' उस अवसर पर श्रीमद्को अच्छा पुरस्कार भी दिया गया था।

इसके बाद एक बार श्रीमद् निजी कामके कारण जामनगर गये थे। वहाँ उन्होने विद्वानोकी दो सभाओमे अनुक्रमसे बारह और सोलह अवधान कर बताये। इससे सभी प्रेक्षक मुग्ध हुए थे। यहाँ उनको 'हिन्दका हीरा' बिरुद दिया गया था। उस समय जामनगरमे दो विद्वान् आठ-दस वर्षोंसे अवधान करनेके लिए तनतोड परिश्रम कर रहे थे, परन्तु सफल नही होते थे। इस कारण वहाँके विद्वानोको सोलह अवधान करनेवाले श्रीमद्के प्रति बहुमान और आश्चर्य उत्पन्न हुआ।

इसके बाद वढवाणकी प्रदर्शिनीमे श्रीमद्ने कर्नल एच

एल नट साहब और अनेक राजा रजवाडे तथा मित्र-मडल इत्यादिसे मिलकर लगभग दो हजार प्रेक्षकोके सामने सोलह अवधान कर दिखाये थे। यह देखकर सारी सभा आनन्द-मग्न हो गई थी। सभी सभाजन श्रीमद्की अलौकिक शक्तिकी मुक्तकठसे प्रशसा करते थे। लगातार प्रशसाके व्याख्यान हो रहे थे। 'गुजराती', 'वम्वई समाचार', 'लोकमित्र', 'न्याय दर्शक' आदि अखवारोमे भी श्रीमद्का यशोगान होने लगा।

एक वार श्रीमद् वोटाद गये थे। वहाँ उन्होने वावन अवधान, किसी भी खास परिश्रम वा पूर्वतैयारी किये विना कर दिखाये थे। इस प्रकार सोलह अवधानके वाद एकदम वावन अवधान सहजमे कर दिखाये, इससे उनकी अद्भुत शक्ति देखकर लोग खूव ही प्रसन्न हुए।

इन वावन अवधानोका थोडा-सा ख्याल नीचेकी हकीकत परसे आ सकेगा

१	तीन मनुष्योके साथ चौपड खेलते जाना	१
२	तीन मनुष्योके साथ गजीफा खेलते जाना	१
३	एक मनुष्यके साथ शतरज खेलते जाना	१
४	झालरकी टकोरे गिनते जाना	१
५	जोड, वाकी, गुणा और भागको मनमे करते जाना	४
६	मालाके दानोकी लक्ष्यपूर्वक गिनती करना	१
७	आठ नई समस्याओकी पूर्ति करना	८
८	सोलह नये सूचित विषयोकी मध्यस्थोके द्वारा कहे छन्दमे रचना करते जाना	१६

९ ग्रीक, अग्रेजी, सस्कृत, अरवी, लेटिन, ऊर्दू, गुर्जर, मराठी, वगला, मरु, जाडेजी आदि सोलह भापाओके अनुक्रमविहीन चार सौ शब्दोको कर्त्ता, कर्म युक्त अनुक्रमसे कह जाना। वीच-वीचमे अन्य काम भी करते जाना — १६

१० विद्यार्थीको समझाना — १

११ दो अलकारोका विचार करना — २

— ५२

इस प्रकार वावन कार्योका प्रारभ एक साथ करना, एक कार्यका कुछ अश करके, दूसरे कार्यका कुछ अश करना, फिर तीसरेका, फिर चौथेका . और फिर पहला कार्य करना, इस तरह सभी वावन कार्य पूर्ण होने तक करते रहना, इसमे न किसी से कुछ पूछना और न कागज आदि पर लिखना।

भापाके अनुक्रमविहीन शब्दोको क्रमवद्ध करनेका यहाँ एक उदाहरण देते है।

सस्कृतके अनुक्रमविहीन अक्षर

स्ति	क्तो	ष्णा	न्व	न्व	र्ग	न्ति	क्त	तृ	क्ष	व
हि	वि	यो	वि	वा	को	प	नु	र	रो	को
घो	या	को	मु	प	गी	क	रा	वा	वि	प
म	कि	य	द	द्धो	ये	वि	न	ह	र	दे

श्रीमद् द्वारा अनुक्रमसहित किया गया श्लोक

वद्धो हि को यो विषयानुरागी
को वा विमुक्तो विषये विरक्त ।
को वास्ति घोरो नरक स्वदेह
तृष्णाक्षय स्वर्गपद किमस्ति ॥

गुजरातीका अनुक्रमविहीन स्वरूप

त	त्नो	ष्टि	ना	आ	जु	आ	सृ	था
शो	जे	प	द	ए	य	जो	थी	छ
र	नु	ने	भि	ई	न	ह	वा	छे

श्रीमद्जीने इन अक्षरोको यथास्थान रखकर कहा

आपना जेवा रत्नोथी हजु सृष्टि सुशोभित छे, ए जोईने आनद थाय छे।

(आप जैसे रत्नोसे अभी सृष्टि सुशोभित है, यह देखकर आनन्द होता है।)

सवत् १९४३ मे श्रीमद् राजचन्द्र वम्वईमे थे। वहाँ शतावधान—सौ अवधान करनेकी अपनी अद्भुत शक्तिका परिचय फरामजी इन्स्टिटयूट तथा अन्य स्थलोमे कराया था।

श्रीमद्की सौ अवधानकी शक्तिसे सभी लोग मुग्ध हो गये थे। उन्हे उस समय एक सुवर्णचन्द्रक दिया गया था और 'साक्षात् सरस्वती'की पदवीसे सुशोभित किया गया था। इससे इनकी कीर्ति सर्वत्र प्रसरित होने लगी थी। 'टाइम्स

आफ इन्डिया', 'पायोनियर' आदि मुख्य अखबारोंने श्रीमद्की खूब प्रशंसा की।

उन्नीस वर्षकी वयवाले एक बुद्धिशाली, तेजस्वी युवककी ऐसी अद्भुत मानसिक शक्ति देखकर डॉ पिटर्सन आदि पाश्चात्य विद्वान् आश्चर्यचकित हो गये। बम्बईके हाईकोर्टके मुख्य न्यायाधीश सर चार्ल्स सारजन्टने तो श्रीमद्ने युरोप जाकर अपनी उन विस्मयकारक शक्तिके प्रयोगोंको बतानेका आग्रहपूर्ण सूचन किया। परन्तु श्रीमद् वहाँ जानेके लिए तैयार नहीं हुए। क्योंकि उन्होंने विचारा कि युरोपमें जैनधर्मानुसार रहना कठिन है।

अवधान के सिवाय श्रीमद् अलौकिक स्पर्शनेन्द्रिय शक्तिवाले भी थे। उनको प्रथम भिन्न-भिन्न आकारकी एक दर्जन पुस्तकें दिखानेमें आई तथा साथमें उनके नाम बता दिये गये उनके बाद उनकी आँखो पर कपडेकी एक मोटी पट्टी बाँध दी गई। और फिर एकके बाद एक जुदे-जुदे क्रममें उन पुस्तकोंको उनके हाथमें दिया गया। श्रीमद् राजचन्द्र पुस्तकका स्पर्श करके उसके आकार परसे प्रत्येक पुस्तकका नाम कह देते थे।

इसी प्रकार इनमें अन्य शक्तियोंका भी विकास दृष्टिगोचर होता है। रसोईको देखकर, चखे बिना और हाथसे स्पर्श किये बिना, कौनसी वानगीमें नमक कम है या अधिक अथवा नहीं है, इस बातको श्रीमद्जी कह सकते थे।

अमुक मनुष्य किस हाथसे पगडी बाँधता है यह बात भी श्रीमद् उसके सिरकी आकृति देखकर परख जाते थे।

श्रीमद् स्वय अन्दर घरमे वैठे हो और पगडी वाधनेवाला मनुष्य यदि वाहर जाकर पगडी वाधता हो तो वह मनुष्य जिस मरोडकी वाधता हो, इस वातको श्रीमद् घरमे वैठे-वैठे कह देते थे।

इसका कारण पूछने पर श्रीमद् कहते थे कि, 'अन्त-करणकी शुद्धि के सिवाय कुछ नही हो सकता। सिखानेसे नही आता।'

वीस वर्षकी अवस्थाके वाद श्रीमद् राजचन्द्रने इन अवधानोका करना एकदम बन्द कर दिया था। क्योकि स्मरणशक्तिके प्रतापरूप इस अवधान प्रवृत्तिका वढता हुआ चमत्कार आत्मोन्नतिरक्त और अन्तर्मुख वृत्तिवाले श्रीमद्को प्रिय न लगा। आत्मोन्नति और चमत्कार दोनो भिन्न लगनेसे — सन्मार्गरोधक प्रतीत होनेसे — श्रीमद् राजचन्द्रकी अन्तरग वैराग्यमय, उदासीन तथा सत्यसुखशोधक भावना इस प्रवृत्तिको विस्तृत न कर, शान्त कर देती है।

हमको इसमे श्रीमद् राजचन्द्रकी महत्ताका प्रत्यक्ष दर्शन हुए विना नही रहता।

इतनी अपूर्व और आश्चर्यजनक अवधानशक्ति कि जिसके द्वारा हजारो औ‌ लाखो लोगोको चकित कर अनुयायी वनाया जा सकता था, असाधारण प्रतिष्ठा और अर्थलाभ सिद्ध किया जा सकता था, (वह) होते हुए भी श्रीमद् राज-चन्द्रने इन सवका प्रयोग योगविभूतियोके समान हेय मानकर उसका उपयोग अन्तर्मुख कार्यकी ओर किया, यह अन्य किसी साधारण मनुष्यसे नही वन सकता।

श्रीमद्की यह अजब अवधानशक्ति इनकी असाधारण स्मृतिका प्रमाण है। इसमे भी उनकी कितनी ही विशेषताएँ है। एक तो यह कि अन्य अवधानियोकी तरह इनके अवधानकी सख्या केवल सख्या–वृद्धिके लिए ही वढी नही थी, परन्तु अन्य अवधानियोको इस शक्तिकी प्राप्तिके लिए तथा उसको विकसित करनेके लिए अनेक प्रकारके प्रयत्न करने पडते है, जब कि श्रीमद्मे इस शक्तिका विकास सहज और स्वाभाविक रूपसे देखनेको मिलता है। खास महत्त्वकी विशेषता यह है कि, श्रीमद्की अवधान-शक्ति वुद्धिदोषसे लेशमात्र भी निष्फल नही हुई थी, उलटा इसमेंसे विशिष्ट सर्जनवल प्रगटित हुआ था, जो अन्य अवधानियोमे नही दिखाई देता। इसका मुख्य कारण यह कहा जा सकता है कि श्रीमद्मे रहे हुए प्रज्ञागुणका ही यह एक व्यक्त स्वरूप था।

अव हम यहाँ, निर्मल अन्त करणके फलरूप जो शक्ति श्रीमद्मे प्रगट हुई थी उसका भी जरा विचार कर ले। यह शक्ति भविष्यमे वननेवाले प्रसगका या सामनेके मनुष्यके चित्तमे उत्पन्न होनेवाले विचारोका पूर्वज्ञान है। ऐसा एक प्रसग हम आगे शा हेमराजभाई और शा मालसी-भाईके विवरणमे देख चुके है। ऐसा ही दूसरा प्रसग अव हम श्री सौभाग्यभाईके विषयमे आगे देख सकेगे। यहाँ हमे दूसरे कितने ही प्रसगोका विचार करना है।

ववाणियामे देसाई वीरजी रामजी रहते थे। एक समय वीरजी देसाई और श्रीमद् साथमे घूमने गये। रास्तेमे

श्रीमद्ने वीरजीभाईसे पूछा, 'वीरजीकाका, यदि हमारी काकीको कुछ हो जाय तो आप दूसरी वार शादी करेंगे ?'

वीरजीभाईने कुछ जवाव न दिया।

थोडे दिनोके वाद वीरजीभाईकी पत्नीका स्वर्गवास हो गया। इसके वाद दूसरी वार श्रीमद्को वीरजीभाईके साथ घूमनेका मौका मिला। श्रीमद्ने पूछा, 'वीरजीकाका, क्या अव आप शादी करेंगे?'

वीरजीभाईने ऊपरसे मना किया, परन्तु जरा मुह मुसकराया। अर्थात् उनकी फिरसे शादी करनेकी अन्तरग इच्छा थी।

श्रीमद्ने कहा, 'आप छ महीने वाद शादी करना।'

छ महीने वीते। श्रावण वदी छट्ठ—राधन छट्ठके दिन वीरजीभाई वाहरसे घर आये, तव उन्हे नालीमे सापने काट खाया। विप उतारनेकी खूव मेहनत की गयी, परन्तु कर्मवशात् सभी व्यर्थ हुई।

तव वीरजीने कहा, 'मेरा चोविहार (रातमे चार प्रकारके आहारका त्याग) न तुडाना। मुझे कहनेवालेने कह दिया हे।'

*

एक समय रवजीभाई चमनपर जाते थे, तव श्रीमद्ने कहा, 'वापा, आप आज चमनपर न जाये तो अच्छा।'

फिर भी रवजीभाई गये।

शामको दीयावत्तीके समय श्रीमद्के छोटे भाई मनसुख-भाईको रसोई-घरमे जानेसे दीयेकी झाल लगी और उनका

कुर्ता जलने लगा। वहाँ भवकवहिन उपस्थित थी, उन्होंने एकदम मट्ठेकी दोहनी मनसुखभाईके शरीर पर डाल दी। मनसुखभाईकी छाती जल गई थी।

उसी समय रवजीभाईको बुलानेके लिए चमनपर एक आदमी भेजा गया।

* *

ववाणियामें एक गरासिया बापु एक समय घोडी पर सवार होकर घूमने निकले।

श्रीमद्ने उनसे कहा, 'बापु, आज आप घोडी लेकर घूमने न जाये।'

श्रीमद्के अधिक कहने पर भी वे नही माने और घोडी लेकर गाँवके वाहर गये।

वहाँ घोडीने ऊधम मचाया। गरासियाबापुको जमीन पर गिरा दिया। उन्हे दो चार मनुष्य कपडेकी झोलीमे सुलाकर घर लाये। इससे गरासियाबापुका शीघ्र देहान्त हो गया।

* *

किसी समय श्रीमद्के भक्त काविठावाले शा झवेरभाई स १९५३के पोष मासमे स्वजन, सम्बन्धी तथा अन्य मुमुक्षुओके साथ श्रीमद्के दर्शनार्थ ववाणियाके लिये रवाना हुए।

वहाँ तो मोरवी स्टेशन पर एक मनुष्य इन लोगोके सामने मिलने आया। उसने श्रीमद्का सन्देश कहते हुए कहा, 'साहवजी यहाँ है। आप लोगोको लेनेके लिये

मुझे भेजा है।'

शाह झवेरभाईने आश्चर्यपूर्वक पूछा, 'कृपालुदेवने यह कैसे जाना?'

आनेवाले भाईने कहा, 'इस विषयमे मै कुछ नही जानता। ववाणिया जाते हुए आप लोगोको रोक कर यहाँ लानेके लिए कहा है।'

* ,

काविठामे उत्तरकी ओर वागडिया तलाव नामका एक स्थान है, वहाँ एक समय श्रीमद् मुमुक्षुओके समक्ष ज्ञान-वार्ता कर रहे थे। इतनेमे वहीके रहनेवाले एक पाटीदार शामलभाईने, समीपके अपने खेतमेसे मोगराके थोडे-से पुष्प लाकर भक्तिभावसे श्रीमद्की बैठकके ऊपर रखे।

यह देखकर श्रीमद् बोले, 'सहज कारणमे इतने अधिक फूल न तोडना चाहिए।' पश्चात् थोडी देर रुक कर श्रीमद् बोले, 'तुम्हारी पुत्री हीराको कल आराम हो जायगा।'

काविठासे तीन कोस दूर सिहोल गाँवमे शामलभाईकी लडकी अपनी ससुरालमे बहुत दिनोसे बीमार थी। वहाँ शामलभाई उसे देखने गये, तो आराम हो गया था।

श्रीमद् शामलभाई पटेल तथा उसकी लडकीको नही पहचानते थे।

श्रीमद्मे इस प्रकारकी अनेक अलौकिक विभूतियोका साक्षात्कार हुआ देखकर हम लोगोको भी आत्माकी अनन्त शक्तियोकी प्रतीति होती है। 'आत्मसिद्धि शास्त्र'मे श्रीमद्ने

यथार्थ ही कहा है

'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन,
स्वयज्योति सुखधाम,
बीजू कहिए केटलूं ?
कर विचार तो पाम'

(तू शुद्ध, बुद्ध, चैतन्यस्वरूप, स्वयज्योति-प्रकाशक और सुखका धाम है। विशेष हम कितना कहे? सक्षेपमे इतना ही कहना है कि यदि तू विचार करेगा, तो उस पदको प्राप्त करेगा।)

७

कुमार-कालकी विचारसमृद्धि

श्रीमद् राजचन्द्रने वीस वर्षकी अवस्थामे गृहस्थाश्रममे प्रवेश किया। इससे पहलेकी इनकी विचार-भूमिकाको समझना आवश्यक है। कुमार अवस्थामे उनके विचार कैसी उच्च और आत्मोन्नतिकर कक्षामे पहुचे थे यदि इसका अवलोकन करे तो इतनी छोटी वयमे भी श्रीमद्ने कैसी विचारसमृद्धि प्राप्त की थी, इसका ख्याल (विचार) आ सकता है।

हम देख चुके है कि छुटपनसे ही श्रीमद् राजचन्द्रमे विवेक, वैराग्य और धर्मभावनाके साथ-साथ ससारमे विजय प्राप्त करा सके ऐसी अद्भुत शक्तियाँ तथा महेच्छाये थी। इस कारणसे श्रीमद्को प्रारभसे ही एक प्रकारके आन्तर युद्धमे उतरना पडा था। और इससे उनकी विचारशक्ति अत्यन्त तीव्र, अत्यन्त स्थिर और गभीर बनी थी।

धीरे धीरे उनके विचार दृढ और परिपक्व होते गये। अपने इन विचारोको प्रगटरूप देनेकी तथा दूसरोको भी इनमे भागीदार करनेकी उनमे वृत्ति जागृत हुई। इसके

फलमे वचपनसे ही श्रीमद् पुस्तके लिखने तथा प्रगट करनेकी ओर झुके।

इसका एक दूसरा कारण भी था। प्रारभसे ही उनमे ज्ञानप्राप्ति और शास्त्र अध्ययनकी जिज्ञासा अत्यन्त प्रवल थी। सत्रहवे वर्ष पहलेके उनके लेखोमे भी निम्न वाक्य हमे देखनेको मिलते है, उस परसे इसका सहजमे अनुमान लगाया जा सकता है।

'वीरके कथित शास्त्रोमे सुवर्ण-वचन अलग अलग और गुप्त है। "उत्तराध्ययन" नामका जैन सूत्र तत्त्व दृष्टिसे पुन पुन अवलोको। ज्ञानियो द्वारा एकत्र की गई अद्भुत निधिके उपभोगी वनो। श्रवण करके कल्याणको जानना चाहिए—पापको जानना चाहिए। फिर जो श्रेय हो उसका आचरण करना चाहिए। जो जीव अर्थात् चैतन्यका स्वरूप नही जानता, अजीव अर्थात् जडका स्वरूप नही जानता, वह साधु सयमकी वात कहाँसे जाने?'

श्रीमद् राजचन्द्रकी स्मरणशक्ति प्रथमसे ही अति तीव्र थी। इससे भापाज्ञान प्राप्त करनेमे अधिक समय नही लगता था। इस कारण इतनी छोटी अवस्थामे भी श्रीमद्ने विचार और सिद्धान्तोसे भरे हुए गहन दार्शनिक ग्रन्थ पढ लिए थे। इस प्रकारसे अपना धर्मज्ञान सीधा मूल ग्रन्थोसे ही प्राप्त करनेके लिये शक्तिशाली हुए थे।

यह निश्चित रूपसे नही कहा जा सकता है कि इस उम्र तकमे श्रीमद्ने कौन-कौनसे ग्रन्थोका अध्ययन किया था। इस सम्बन्धमे उनके लेखोमे कोई क्रमवद्ध उल्लेख

नही मिलता। परन्तु मुख्यतासे जैनागमोमेसे वहुतोका श्रीमद्ने अवलोकन कर डाला था। और उससे जैन धर्मका मूल लक्ष्य तथा मूल शास्त्रोमे वर्णित वास्तविक गृहस्थ और यथार्थ मुनिके आचार जानने और समझनेके लिए वे शक्तिमान हुए थे।

परन्तु अपने समयके जैन-आचार-विचारोके साथ तुलना करनेसे श्रीमद् राजचन्द्रको मूल सिद्धान्तोमे और प्रचलित आचारोमे आकाश-पाताल जितना अन्तर दिखाई दिया। उन्होने स्पष्ट देखा कि, लोग मूल शास्त्रोको वाचते विचारते नही है, उससे चाहे जैसे विचारहीन आचारोको परम्पराके नाम या अज्ञानसे स्वीकार कर उन्हीमे अपना जीवन विताया करते है।

जैन मुनियोकी दशा भी ऐसी ही है। जो आदर्श शास्त्रोमे कहा है, उसका अपनेसे पालन नही हो सकेगा ऐसा मानकर, उसे शिथिल करने या ढाकनेकी वृत्तिसे, परस्पर आचार्योके वाद-विवादसे, कदाग्रहसे, मतिकी न्यूनतासे और मूल शास्त्रोका अध्ययन तथा सद्विचारोके घट जानेसे, इन लोगोमे जो मतभेद और वहमोका साम्राज्य प्रवर्तता था, उसे देखकर उनका पुरुषार्थी और पवित्र आत्मा व्याकुल हो उठा।

तीर्थंकर जैसे पूर्ण पुरुषके धर्मकी प्राप्ति होने पर लोग जडता और प्रमादके कारण तथा सद्गुरु और सत् शास्त्रोके अध्ययनके अभावमे जो अन्ध जीवन विता रहे थे, उससे श्रीमद् अत्यन्त खिन्न हुए। और तवसे, किसी भी प्रकारसे

लोगोमे सत्य सिद्धान्तके ज्ञानका प्रचार कर समस्त जगत्को जगाऊं और प्रयत्नशील करूँ, ऐसी उन्हे चटपटी लगी।

सत्रहवे वर्षमे श्रीमद् लिखते हे

'जैन प्रजा (सारे हिदुस्तानमे मिलाकर) २० लाखकी है। उसमेसे नव तत्त्वको पठन रूपसे दो हजार मनुष्य भी वडी कठिनतासे जानते होगे। मनन और विचारपूर्वक जाननेवाले पुरुष तो उंगलियो पर गिन सके इतने भी न होगे। तत्त्वज्ञानकी जव ऐसी हीनावस्था हो गई है तव ही मतमतान्तर वढ गये है।'

उस समय अग्रेजी शासनमे जो शिक्षा दी जाती थी वह इस प्रकारकी थी कि ज्ञात अथवा अज्ञात भावसे पढे-लिखे मनुष्योमेसे धार्मिकवृत्तिका मूलसे नाश कर देती थी।

फिर वे ही इक्कीसवे वर्षमे लिखते है कि, 'जो लोग विद्याका ज्ञान प्राप्त कर सके है, उनको धर्मतत्त्व पर मूलसे ही श्रद्धा नही होती। जिनको सरलताके कारणसे कुछ श्रद्धा होती है, उन्हे उस विषयकी कुछ समझ नही पडती। और यदि कोई समझदार भी हो तो वह उस वस्तुकी वृद्धिमे विघ्न करनेवाला होता है, परन्तु सहायक नही। इस प्रकार पढे-लिखे मनुष्योको धर्म-प्राप्ति दुर्लभ हो गई है।'

इससे 'युगके वालयुवक अविवेकी ज्ञान प्राप्त कर आत्मसिद्धिसे भ्रष्ट होते है, उसे रोकनेके लिए' तथा 'कितने अज्ञानी मनुष्य न पढने योग्य पुस्तके पढकर अपना अमूल्य समय गुमा देते है,' उसके वदलेमे 'आत्माका हित हो,

ज्ञान, शान्ति और आनन्द मिले तथा वे परोपकारी, दयालु क्षमावान्, विवेकी और बुद्धिशाली बने' इसके लिए श्रीमद् राजचन्द्रने सुगम, सरल पुस्तकोका लिखना प्रारभ किया।

सत्रहवे वर्षमे अपनी लिखी हुई 'मोक्षमाला'मे तो श्रीमद् यहाँ तक कहते है कि,

'आग्लदेशवासियोने ससारके अनेक कला कौशलोमे किस कारणसे विजय प्राप्त की है? यह विचार करनेसे हमे तत्काल मालूम होगा कि, उनका अति उत्साह और इस उत्साहमे अनेकोका एकत्रित होना, एक समाजमे मिलना यह इसका कारण है। सर्वज्ञ भगवान्का कहा हुआ गुप्त तत्त्व प्रमाद स्थितिमे आ पडा है, उसे प्रकाशित करनेके लिए तथा पूर्वाचार्योके रचे हुए महान शास्त्रोको एकत्र करनेके लिए, पडे हुए गच्छके मतमतान्तरोको दूर करनेके लिए और धर्म विद्याको प्रफुल्लित करनेके लिए, सदाचरणी श्रीमान और धीमान दोनोको मिलकर एक महान समाजकी स्थापना करनेकी आवश्यकता है। पवित्र स्याद्वादमतके ढँके हुए तत्त्वको प्रसिद्ध करनेका जबतक प्रयत्न नही है वहाँतक शासनकी उन्नति भी नही है।'

श्रीमद् राजचन्द्रने इसी समयमे स्त्रीनीति बोधक पुस्तक पद्योमे लिखी थी। इसमे स्त्रियोको सद्गुणी, सदाचारी बननेका उपदेश दिया है तथा माता-पिता अपनी बालिकाओको किस प्रकारसे सस्कारसम्पन्न और नीतिशील बनाये इसका भी उपदेश है। किसीको यह पुस्तक देखकर विचार आये कि आत्मतत्त्वका विचार करनेवाले श्रीमद्

राजचन्द्रने नीतिका बोध (ज्ञान) देना किस लिए विचारा होगा? परन्तु इसके पीछे भी श्रीमद्की स्पष्ट दृष्टि थी। संवत् १९५०मे लिखे हुए एक पत्रमे श्रीमद्ने इस दृष्टिको स्पष्ट रूपसे समझाया है

'जो मुमुक्षु जीव गृहस्थके व्यवहारमे रहता हो, उसे प्रथम तो अखड नीतिका मूल अपने आत्मामे स्थापित करना चाहिए, नही तो उपदेशादिकी निष्फलता होती है। द्रव्यादि उपार्जन करने आदिमे सागोपाग न्यायसम्पन्न रहनेका नाम नीति है। इस नीतिको छोडनेके समय प्राणत्याग जैसी दशाके आनेपर त्याग और वैराग्य अपने यथार्थ स्वरूपमे प्रगट होते है और उसी जीवको सत्पुरुपके वचनका तथा आज्ञाधर्मका अद्भुत सामर्थ्य, माहात्म्य और रहस्य समझमे आता है, और इससे सब वृत्तियोके निजरूपसे प्रवृत्ति करनेका मार्ग स्पष्ट सिद्ध होता है।'

श्रीमद् उन्नीस वर्षकी अवस्था बाद जिस महामथन कालमेसे पार होनेवाले है, इससे पहले अपने जीवनको योग्य दिशामे झुकानेके लिए श्रीमद्ने कैसी विचारणा की थी, यह लक्ष्यमे लेने योग्य है। यहाँ उन विचारोको उपस्थित किया है। श्रेयार्थीको वे मार्गदर्शकरूप है।

१ आहार, विहार, निहार(शौचादि क्रिया)की नियमितता(रखूं), अर्थकी सिद्धि (करूँ), आर्य जीवनका उत्तम पुरुपोने आचरण किया है, परहितको अपना हित समझना और परदु खको अपना दु ख समझना, नीतिके नियमोको न तोडना, जितेन्द्रिय बनना, विवेकबुद्धिसे सब आचरण

करना, ज्ञानचर्चा, विद्याविलास तथा शास्त्राध्ययनमे लीन रहना, ससारमे रहते हुए और उसे नीतिमे भोगते हुए, विदेही दशा रखना, आत्मज्ञान और सज्जनसगति रखना, ज्ञानियो द्वारा एकत्र की हुई अद्भुत निधिके उपभोगी वनो।

२ दु ख लगेगा ही, और दु खके कारण भी तुझे दृष्टिगोचर होगे उन्हे दूर करनेका जो उपाय है वह इतना ही है कि उनसे वाह्याभ्यन्तर रहित होना। रहित हो सकते है, अद्भुत दशाका अनुभव होता है, यह प्रतिज्ञा-पूर्वक कहता हूँ। निर्ग्रन्थ सद्गुरुके चरणमे जाकर रहना योग्य है। जीवन अति अल्प है, उपाधि अधिक है, और उसे त्यागा नही जा सकता। तो जिज्ञासा उस वस्तुकी रखना। ससारको वन्धन मानना। पूर्वकर्म वलवान है, इस लिए यह सव प्रसग मिला है, ऐसा एकान्तिक ग्रहण न करना।

३ यह दु ख कहाँ कहना? और कैसे दूर करना? आप अपना वैरी, यह कैसी सत्य वात है! तूने भिन्न-भिन्न स्थलमे सुखकी कल्पना की है। हे मूढ! ऐसा न कर। यह तुझे तेरा हित कहा। अन्तरगमे सुख है। सत्य कहता हूँ। स्त्रीके स्वरूप पर होने वाले मोहको रोकनेके लिए उसका त्वचा-हीन स्वरूप वारम्वार विचारने योग्य है। हे जीव! अव भोगसे शान्त हो, शान्त। जरा विचार तो सही कि इसमे कौन-सा सुख है?

४ जिस महा कामके लिए तूने जन्म धारण किया

है, उस महा कामका अनुप्रेक्षण कर। ध्यान धर ले। समाधिस्थ हो। कोई भी तुच्छ भूल तेरी स्मृतिमेसे नही जाती, यह महाकल्याण है। जिससे प्रमाद हुआ है उसके लिए अब प्रमाद न हो, वैसा कर।'

ये अवतरण तो सोलह वर्षके पहलेकी आयुके है। उस परसे इस उम्रतककी श्रीमद्की मनोभूमिकाका थोडा-बहुत परिचय मिल सकता है। सम्पूर्ण विचारके लिए तो श्रीमद्के सभी लेखोका अनुशीलन करना आवश्यक है।

परन्तु उन्नीसवे वर्ष बाद तो श्रीमद् गृहस्थ जीवन स्वीकार करते है। इस लिए सोलहसे उन्नीस वर्षकी वयके बीच, गृहस्थ जीवन कैसे बिताना, किस प्रकारसे सुव्यवस्थित करना इस सम्बन्धमे श्रीमद्ने अपने निजी लेखोमे बहुत-कुछ लिखा है, उनमेसे इस वस्तुको समझनेके लिए थोडेसे अवतरण दिये जाते है।

१ गृहस्थाश्रमको विवेकी बनाना। लोक-अहित कार्य नही करूँ, धर्मपूर्वक अर्थ उपार्जन करूँ। तेरा (भगवानका) सिद्धान्त भग हो उस प्रकारसे ससार-व्यवहार न चलाऊ। स्वार्थवश किसीकी आजीविका न तोडूँ। जीवहिसक व्यापार नही करूँ। स्वस्त्रीसे समभावसे व्यवहार करूँ। अब्रह्मचर्यका सेवन नही करूँ। नीति बिना ससारका सेवन नही करूँ। दशाश धर्मके लिए निकालूँ। विद्याशाली स्त्री ढूँढूँ, लाऊँ। पुत्रीको अनपढ नही रखूँ। उनको धर्मपाठ सिखाऊँ। कुटुम्बको स्वर्ग बनाऊँ। सृष्टिको स्वर्ग बनाऊँ तो कुटुम्बको मोक्ष बनाऊँ।

२ किसी कृत्यमे प्रमाद न करूँ। मनोवीरत्वकी वृद्धि करूँ। अयोग्य विद्या साधूँ नही। निर्मल्य अध्ययन करूँ नही। विचारशक्तिको विकसित करूँ। आलसको उत्तेजन न दूँ। दिनचर्याका दुरुपयोग न करूँ। उत्तम शक्तिको साध्य करूँ। चारित्र्यको अद्भुत करना। विजय, कीर्ति, और यश सर्वपक्षी प्राप्त करना। शक्तिका दुरुपयोग न करूँ। प्रत्येक वस्तुका नियम करूँ। बिना नियमके विहार न करूँ। खराब उद्यम नही करूँ। अनुद्यमी भी न रहूँ।

३ किसी दर्शनकी निन्दा न करूँ। एकपक्षीय मतभेद नही बांधूँ। अज्ञान पक्षकी आराधना करूँ नही। परमात्माकी भक्ति करूँ। तत्त्व आराधते हुए लोकनिन्दासे न डरूँ। तत्त्वज्ञानका अभ्यास करूँ।

इनमेसे प्रत्येक गृहस्थको आदर्श गृहस्थजीवनकी प्रेरणा मिले बिना नही रह सकती। साथसाथ श्रीमद् राजचन्द्रमे बाल्यकालसे रही हुई धर्मोद्धारकी उदात्त भावना भी विशेष-विशेष दृढ होती जाती थी। उसके लिए नीचेका एक अवतरण यहाँ पर्याप्त होगा

'ज्ञानका उद्धार करना। भिन्न-भिन्न धर्मोपदेशके ग्रन्थोको बाँटना। भिन्न-भिन्न धर्मग्रन्थोको रचना। मतमतान्तरोका स्वरूप समझाना। जो मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थोकी प्राप्ति करना चाहता हो, उसके विचारोमे सहायक होना। किसी समय तत्त्व द्वारा दुनियामेसे दु:ख जायगा ऐसा मानूँ। असत्यका उपदेश न दूँ।

आजीविकाके लिए धर्मका उपदेश न करूँ। गुणविहीन वक्तृत्वका सेवन न करूँ।'

अन्तमें, उस छोटी उम्रमें भी, एक आदर्श गृहस्थ कैसा हो उनका प्रेरणादायी सुन्दर चित्र श्रीमद्ने खींचा है। ये अपनी उस समयकी परिपक्व विचारधाराका अच्छा परिचय कराते हैं। 'मोक्षमाला'में 'सुख विषयक विचार' इस शीर्षकसे एक मननीय कथाका निरूपण किया है। उसमें उन्होंने द्वारिकाके महाधनाढ्य धर्ममूर्ति श्रावक गृहस्थका चित्र खींचा है। उसमें धर्ममूर्ति सेठ अपनी चर्याका वर्णन करता है। इस वर्णन परसे उस वयमें भी श्रीमद् आदर्श गृहस्थ किसे कहते हैं, इसका अनुपम ध्यान हम लोगोंको आये बिना नहीं रहता। उसमेंसे सक्षिप्त करके यहाँ उपस्थित किया गया है। यह चित्र प्रत्येक गृहस्थको प्रेरणादायक हो, ऐसा है।

'यद्यपि मैं दूसरोंकी अपेक्षा सुखी हूँ, तो भी यह शाता वेदनीय है, सत्-सुख नहीं है, जगत्में बहुत करके अशाता वेदनीय है।

'मैंने धर्ममें अपना समय बितानेका नियम रखा है, सत्शास्त्रोंका वाचन, मनन, सत्पुरुषोंका समागम, यम-नियम, एक महीनेमें बारह दिवस ब्रह्मचर्य, यथाशक्ति गुप्तदान इत्यादि धर्मरूपसे अपने समयको व्यतीत करता हूँ। सब व्यवहारकी उपाधियोंमेंसे कितना ही भाग बहुत अंशमें मैंने छोड़ दिया है। पुत्रोंको व्यवहारमें यथायोग्य बनाकर मैं निर्ग्रन्थ होनेकी इच्छा रखता हूँ। अभी तो निर्ग्रन्थ नहीं

हो सकता। इसमे ससार-मोहिनी अथवा ऐसा ही दूसरा कारण नही है। परन्तु इसमे भी धर्म सम्वन्धी कारण है। गृहस्थ धर्मके आचरण वहुत कनिष्ठ हो गये है और मुनिलोग उन्हे नही सुधार सकते। गृहस्थ, गृहस्थको विशेप वोध दे सकता है, आचरणसे भी प्रभाव डाल सकता है। इस लिए धर्म सम्वन्धमे गृहस्थवर्गको मै अधिक अशोमे उपदेश देकर यम–नियम मे लाता हूँ।

'प्रति सप्ताह हमारे यहाँ पाँचसौ सद्गृहस्थोकी सभा होती है। आठ दिनका नया अनुभव और वाकी पहलेका धर्मानुभवका मै इन सवको दो तीन मुहूर्त तक उपदेश करता हूँ। मेरी स्त्री धर्मशास्त्रकी जानकार होनेसे वह भी स्त्री वर्गको उत्तम यम–नियमका उपदेश करके साप्ताहिक सभा करती है। पुत्र भी यथायोग्य शास्त्रका परिचय रखते है।

'विद्वानोका सन्मान, अतिथिका सन्मान, विनय और सामान्य सत्यता, (व्यापारमे) एक ही भाव—ये नियम अधिकतर मेरे अनुचर भी पालते है। इससे वे लोग शाता भोग सकते है।

'लक्ष्मीके साथसाथ मेरी नीति, धर्म, सद्गुण और विनयने जनसमुदाय पर वहुत अच्छा प्रभाव डाला है। राजा भी मेरी नीतियुक्त वातको मानता है।

'यह सव मै आत्म-प्रशसाके लिए नही कह रहा हूँ, इसे आप स्मृतिमे रखे। केवल आपकी पूछी हुई वातका स्पष्टीकरण करनेके लिए यह सव सक्षेपमे कह रहा हूँ।

'इन सव वातोसे मै सुखी हूँ, ऐसा आपको जान

पडेगा। और सामान्य विचारसे आप मुझे सुखी माने तो मान सकते है। धर्म, शील और नीतिसे तथा शास्त्रावधानसे मुझे जो आनन्द आता है, वह अवर्णनीय है।

'परन्तु तत्त्वदृष्टिसे मै सुखी नही माना जा सकता। जबतक मैने सर्व प्रकारसे बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रहका त्याग नही किया, वहाँ तक रागद्वेषका भाव है। जो कि वह अधिक अशमे नही है, परन्तु है अवश्य, तो वहाँ उपाधि भी है। सर्वसगपरित्याग करनेकी मेरी सम्पूर्ण आकाक्षा है, परन्तु जबतक वैसा नही हुआ है, तबतक अभी किसी प्रियजनका वियोग, व्यवहारमे हानि, कुटुम्बका दुख ये थोडे अशमे भी उपाधि उत्पन्न कर सकते हैं। इसलिए सर्वथा निर्ग्रन्थ, बाह्याभ्यन्तर परिग्रहका त्याग, अल्पारभका भी त्याग जबतक नही हुआ है, तबतक मै अपनेको सर्वथा सुखी नही मानता।

'अब आपको तत्त्वदृष्टिसे विचार करने पर मालूम पडेगा कि लक्ष्मी, स्त्री, पुत्र या कुटुम्ब इनसे सुख नही है। और यदि इसे सुख मानूँ तो जिस समय मेरी स्थिति बिगडी थी उस समय यह सुख कहाँ गया था? जिसका वियोग है, जो क्षणभगुर है, और जहाँ एकत्व या अव्याबाधता नही है, वह सुख सम्पूर्ण नही है।'

इस प्रकार कुमारवयमें ही श्रीमद्के विचार सुनिश्चित, प्रौढ, सुनीतिपोषक और आत्मनिष्ठ, सयमशील तथा श्रेयसाधक स्वरूपको प्राप्त हुए थे।

८

गृहस्थाश्रममे प्रवेश

सवत् १९४४ मे श्रीमद् राजचन्द्रका जीवन गृहस्थाश्रमकी ओर मुडता है।

श्रीमद् जैसे स्वभावसे विचारवान, प्रखर बुद्धिशाली, आत्मनिष्ठ पुरुपने, पुख्तवयमे पहुँचकर लग्नजीवनमे प्रवेश किया, यह कोन-सी मनोदशामे, किस कारणसे, यदि यह सव इनकी जीवन-साधनाकी दृष्टिसे जाननेको मिले तो सव लोगोके लिए यह वात अत्यन्त उपयोगी हो सकेगी। परन्तु इसके लिए सम्पूर्ण सामग्री हमारे पास नही है।

इस विपयमे श्रीमद् राजचन्द्रने जो थोडा वहुत लिखा है, उस परसे पूरा-पूरा सार निकालना शक्य तो नही, परन्तु इतनेसे भी हम लोगोको श्रीमद्की मनोदशाका कुछ-कुछ भी ख्याल तो आ ही सकेगा।

विवाहके वाद स १९४६मे श्रीमद्ने लिखा है

'कुटुम्वरूपी काजलकी कोठरीमे निवास करनेसे ससार वढता है। उसका कितना भी सुधार करो तो भी एकान्त निवाससे जितना ससारका क्षय हो सकता है, उसका सौवॉ

भाग भी उस काजलगृहमें रहनेसे नहीं हो सकता, क्योंकि वह कषायका निमित्त है, और अनादिकालसे मोहके रहनेका पर्वत है।'

मानो इस सत्यकी ही प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त करनेके लिए श्रीमद् लग्नजीवन अंगीकार करनेको कटिबद्ध हो रहे हों इस प्रकार बीसवें वर्षके प्रारम्भमें एक स्नेहीके ऊपर बम्बईसे १९४४ पौष वदी १०के दिन एक पत्र लिखकर बताते हैं

'लग्न सम्बन्धी उन्होंने जो तिथि निश्चित की है, यदि इसके विषयमें उनका आग्रह है तो तिथि भले ही निश्चित रहो।

'लक्ष्मी पर प्रीति न होनेपर भी वह किसी भी परोपकारके काममें बहुत उपयोगी हो सकती है, ऐसा लगनेसे मौन धारण करके मैं यहाँ उस सम्बन्धी सद् व्यवस्थामें जुटा हुआ था। इस व्यवस्थाका अभीष्ट परिणाम आनेमें बहुत देर न थी। परन्तु उनकी ओरका एक ममत्वभाव शीघ्रता करता है, जिससे यह सब योंही छोड़कर वदी १३ वीं या १४वीं (पौषकी)के दिन यहाँसे रवाना होता हूँ।

'परोपकार करनेमें भी कदाचित् लक्ष्मी अन्धापन, बहरापन और मूँगापन ला देती है, इससे उसकी कोई परवाह नहीं है।

'हम लोगोंका जो परस्परका सम्बन्ध है, वह कुछ सगपनका नहीं, परन्तु हृदय-सगपनका है। परस्पर लोह-चुम्बकका गुण प्राप्त हुआ है, ऐसा दर्शित है, फिर भी

मैं इससे भी भिन्न रूपसे आपको हृदयरूप करना चाहता हूँ। सब प्रकारके संगपनको और संसार योजनाको दूर करके ये विचार मुझे तत्त्वविज्ञानरूपसे बताने है, और उन्हे आपको अनुसरण करना है। इतनी बात बहुत सुखप्रद होने पर मार्मिकरूपसे आत्मस्वरूपके विचारपूर्वक यहाँ लिखता हूँ।

'क्या उनके हृदयमे ऐसी सुन्दर योजना है कि शुभप्रसंगमे सद्विवेकी बनकर और रूढियोसे प्रतिकूल रहकर, परस्पर एक कुटुम्बरूप स्नेह उत्पन्न हो सके? क्या आप यह योजना ग्रहण करायेगे? कोई दूसरा ग्रहण करायेगा? यह विचार बारम्बार हृदयमे पर्यटन करता है।'

विवाह विधिकी पुरानी रूढियोको छोडकर, सद्विवेक-पूर्वक व्यवहार करनेकी सूचना श्रीमद् क्यो दे रहे है, उसका कारण भी समझने योग्य है।

'निश्चय ही, साधारण विवेकी-जन जिन विचारोको आकाशीय माने वैसे विचार, जो वस्तु और जो पद आज साम्राज्ञी विक्टोरियाको दुर्लभ—केवल असंभवित है, उन विचारो, उस वस्तु और उस पदकी केवल इच्छा होनेसे, ऊपर (विवाह विधिमे विवेक रखनेको) बताया है, उससे किंचित् भी यदि प्रतिकूल बने तो उस पदाभिलाषी पुरुषके चारित्रको बट्टा लगे, ऐसा है।'

इसके बाद संवत् १९४४ माह सुदी बारसके दिन श्रीमद् राजचन्द्रका विवाह झबकबाईसे होता है। झबकबाई जौहरी रेवाशंकरभाई जगजीवनदास महेताके बडे भाई

पोपटलालभाईकी सुपुत्री थी।

यो तो श्रीमद् गृहस्थाश्रममे प्रविष्ट हुए, परन्तु साथ-साथ वे तीव्र आत्ममथनमेसे भी पार हो रहे थे। त्याग, वैराग्य, निर्लेपता और तत्त्वजिज्ञासा उनमे प्रवलतासे जागृत होती जाती थी। विवाह होनेके वाद एकाद वर्षमे लिखे हुए एक लेख 'स्त्रीके सम्वन्धमे मेरे विचार'मे श्रीमद् प्रगट करते है।

'अति अति स्वस्थ विचारणासे यह सिद्ध हुआ है कि निरावाध सुख शुद्ध ज्ञानके आधार पर रहा है, तथा वही परम समाधि है।

'केवल आवरण युक्त दृष्टिसे स्त्री ससारका सर्वोत्तम सुख माना गया है, परन्तु वैसा नही है। स्त्रीसे सयोग-सुख भोगनेका जो चिह्न है, उसे विवेकपूर्वक दृष्टिगोचर करनेसे वह वमन करने योग्य स्थानके भी योग्य नही है। जिन जिन पदार्थो पर जुगुप्सा आती है, वे सभी पदार्थ इस शरीर मे भरे पडे है, और उन सवकी यह जन्मभूमि है। तथा यह सुख क्षणिक, खेद और खुजलीके दर्द समान है। उस समयका दृश्य हृदयमे अकित होकर हँसाता है कि यह कैसी भूल! सक्षेपमे कहना है कि उसमे कुछ भी सुख नही है। और यदि उसमे सुख हो तो उसका अपरिच्छेद-रूपसे वर्णन करके देखो। अर्थात् एक मोह दशाके कारण उसमे सुखकी मान्यता हुई है, ऐसा ही मालूम होगा।

'यहाँ मै स्त्रीके अवयवादि भागोका विवेक करने नही वैठा हूँ, परन्तु आत्मा पुन वहाँ आकर्षित न हो, यह

विवेक उत्पन्न हुआ है, उसका सहज सूचन है।

'स्त्रीमे दोप नही है, परन्तु आत्मामे दोप है, और इस दोपके जानेसे आत्मा जो देखता है, वह अद्भुत आनन्दमय ही है। इसलिए उस दोपसे रहित होना ही परम जिज्ञासा है। यदि शुद्ध उपयोगकी प्राप्ति हुई तो फिर आत्मा समय समय पर पूर्वोपार्जित मोहनीय कर्मको भस्मीभूत कर सकेगा। यह अनुभवगम्य प्रवचन है।

'परन्तु जबतक मुझमे पूर्वोपार्जित कर्मका उदय है, तबतक मेरी किस तरहसे शान्ति हो? यह विचारनेसे मुझे नीचे लिखा हुआ समाधान हुआ

'स्त्रीके सम्बन्धमे किसी भी प्रकारसे राग-द्वेप करनेकी मेरी लेशमात्र इच्छा नही है, परन्तु पूर्वोपार्जित कर्मसे इच्छाके प्रवर्तनमे रुका हुआ हूँ।'

दूसरे एक लेखमे श्रीमद् विदित करते है कि

'स्त्रीके सम्बन्धमे अभिलापा और है, और आचरण और है। एक पक्षने उसका कुछ समय तक सेवन करना सम्मत माना है, और वहाँ सामान्य प्रीति-अप्रीति है। परन्तु दुख यह है कि इच्छा न होने पर भी पूर्वकर्म क्यो घेरे रहता है? इतनेसे ही नही पूरा होता, परन्तु उसके कारण न रुचनेवाले पदार्थोको देखना, सूघना, छूना पड़ता है उसी कारणसे प्राय उपाधिमे पडना पडता है।'

अपने गृहाश्रमके विपयमे श्रीमद् एक भाईको स १९४६मे लिखकर बताते है

'इस जन्ममे आपसे पहले, लगभग दो वर्पसे कुछ

अधिक समय हुआ मैं गृहाश्रमी हुआ हूँ, यह आप जानते हैं।

'जिसके कारण गृहाश्रमी कहा जा सकता हूँ उस वस्तु (स्त्री)का तथा मेरा उस समयमें कुछ अधिक परिचय नहीं हुआ था, फिर भी उसने जो कायिक, वाचिक और मानसिक वृत्ति बने वह मुझे बहुत कुछ समझमें आई है और उस परसे उसका और मेरा सम्बन्ध असन्तोषमय नहीं हुआ, यह बतानेका यही कारण है कि सहज मात्र भी गृहस्थाश्रमका व्याख्यान करते हुए, उस सम्बन्धी विशेष अनुभव उपयोगी होता है। मुझमें कुछ सास्कारिक अनुभव उग निकलनेसे मैं यह कह सकता हूँ कि अभीतक मेरा गृहस्थाश्रम ज्यों असन्तोषमय नहीं है त्यों उचित सन्तोषमय भी नहीं है, वह केवल मध्यम है, और उसके मध्यम होनेमें भी मेरी उदासीनवृत्तिकी सहायता है।

'तत्त्वज्ञानकी गुप्त गुफाका दर्शन करते हुए गृहाश्रमसे विरक्त होना अधिकतर सूझता है और अवश्य उस तत्त्वज्ञानका विवेक भी इसे उत्पन्न हुआ था। कालकी बलवान अनिष्टताके कारण, यथायोग्य समाधिके संगकी अप्राप्तिके कारण, उस विवेकको महाखेदके साथ गौण करना पड़ा, और यदि सचमुच वैसा न हो सकता तो उसके (इस पत्र-लेखकके) जीवनका अन्त आता।

'जिस विवेकको महाखेदके साथ गौण करना पड़ा है उस विवेकमें ही चित्तवृत्ति प्रसन्न रहती है, बाहर उसकी मुख्यता नहीं रख सकता, इसके लिए अकथ्य खेद होता

है। फिर भी जहाँ निरुपायता है वहाँ सहन करना ही सुखदायक है, ऐसी मान्यता होनेसे मौनता है।

'किसी किसी समय सगी-प्रसगी तुच्छ निमित्त वन जाते है, उस समय उस विवेक पर एक प्रकारका आवरण आता है, तव आत्मा वहुत घवराता है। उस समय जीवन रहित होनेकी—देह त्याग करनेकी—दु खस्थितिकी अपेक्षा अधिक भयकर स्थिति हो जाती है। परन्तु यह वहुत समय तक नही रहती, और इस प्रकार जव होगा तव अवश्य देहत्याग कर दूंगा परन्तु असमाधिसे प्रवृत्ति नही करुंगा। अभीतक ऐसी प्रतिज्ञा सतत आ रही है।'

अपने चित्तमे चल रहा मन्थन—दो विरोधी वृत्तियोके वीचकी यह टक्कर—और उसके कारण 'जीवन रहित होनेकी दु खद स्थितिमे भी भयकर' स्थितिका वर्णन स १९४५मे लिखे हुए एक मर्मवेधी पत्रमे श्रीमद् राजचन्द्रने किया है।

'यदि दुनियाभरके दु खी मनुष्योका प्रदर्शन करनेमे आये तो अवश्य उसके शिरोभागमे मै आ सकूंगा।

'मेरे इन वचनोको पढकर कोई विचारमे पडकर भिन्न-भिन्न कल्पनाये करेगा अथवा तो कोई इसे भ्रम समझ लेगा। परन्तु उसका समाधान यहाँ पर दिये देता हूँ।

'तुम मेरा स्त्री सम्वन्धी कुछ दु ख न समझना, लक्ष्मी सम्वन्धी दु ख नही समझना, पुत्र सम्वन्धी दु ख नही समझना, कीर्ति सम्वन्धी नही मानना, भय सम्वन्धी नही मानना, काया सम्वन्धी नही मानना, अथवा सर्व वस्तु

सम्बन्धी नही मानना, मेरा दुःख अन्य प्रकारका है। यह दर्द वातका नही है, कफ या पित्तका नही है, शरीरका नही है, वचनका नहीं है और मनका भी नही है। मानो तो सभीका है और न मानो तो एकका भी नही है। परन्तु मेरी विज्ञापना (दुःख) न माननेकी है, क्योंकि उसमे कुछ और ही मर्म रहा है।

'तुम जरूर मानना कि मैं समझपूर्वक कलम चला रहा हूँ। मैं राजचन्द्र नामसे पहचाने जानेवाला ववाणिया नामके एक छोटे गांवका, लक्ष्मीमे साधारण फिर भी आर्यत्वमें प्रसिद्ध दशा श्रीमाली वैश्यका पुत्र कहलाता हूँ। इस भवमे मुख्य दो भव किये है, अमुख्यका कुछ हिसाब नही है। अल्पवयकी अल्प समझमे कौन जाने कहाँसे बडी-बडी कल्पनाये आया करती थी। सुखकी अभिलाषा भी कुछ कम नही थी, और सुखमे भी महालय, बाग-बगीचे, स्त्री आदिको माना। किन्तु सबमें बडी कल्पना यह थी कि 'यह सब क्या है?' उस कल्पनाका एक बार ऐसा रूप देखा कि पुनर्जन्म नही है, पुण्य नही है, पाप नही है, सुखसे रहना, ससारका उपभोग करनेमे ही कृत-कृत्यता है। इस कारण किसी अन्य पचायतमे न पडकर मैंने हृदयमेसे धर्मकी वासनायें निकाल डाली। किसी भी धर्मके प्रति न्यूनाधिक श्रद्धाभाव न रहा।

'अल्प समय व्यतीत होनेके बाद इसमेसे ओर ही हुआ, जिसकी मैंने कल्पना भी नही की थी और उसके लिए मेरे विचारमे हो ऐसा मेरा कुछ प्रयत्न भी नही था,

फिर भी अचानक परिवर्तन हुआ। कोई और अनुभव हुआ, जो अनुभव प्राय शास्त्रोमे न हो, जडवादियोकी कल्पनामे न हो, ऐसा था। वह क्रमसे बढा, बढकर इस समय एक 'तूही तूही'का जाप करता है।

'अब यहाँ समाधान हो जायगा। आगे जो नही मिले या भयादि होगा इससे दुख है, ऐसा कुछ नही है, यो अवश्य समझना।'

किं बहुना! जिज्ञासुओको उस समयके श्रीमद्के सभी पत्र, लेख अवश्य पढने योग्य है। परन्तु इन सब लेखोको पढते समय हमे इतना विवेक योग्य है कि, सुज्ञ आत्मार्थी पुरुष अपने राई समान, छोटेसे छोटे दोषोको बडे पहाडके समान देखते है, और अपनेमे रहे हुए उच्च गुणोका वर्णन नही करते। इससे स्वाभाविक रीतिसे ऐसे निजी वर्णनमे अनेक बार दोषो पर ही विशेष भार दिया हुआ देखनेको मिलता है।

श्रीमद्के सभी लेख दृष्टिगोचर करने पर इतना तो हम देख सकते है कि विवाह करके श्रीमद्ने अपने लिए भयानक मारयुद्धको ललकारा था, और उसमे वे हाथमे प्राण लेकर घूमे थे। अपनी हाथनोंध (डायरी) 'अभ्यन्तर परिणाम अवलोकन'मे भी श्रीमद् लिखते है

'त्या आव्यो रे उदय कारमो,
परिग्रह कार्य प्रपच रे,
जेम जेम ते हडसेलीओ,
तेम वधे, न घटे रच रे'

इस समय एक भयानक उदय आया, जिससे परिग्रह कार्यके प्रपचमे पडना पडा। ज्यो ज्यो उसे धक्का मारकर हटाते है त्यो त्यो वह उलटा बढता ही जाता हे, लेकिन रचमात्र भी कम नही होता। यो तो उदयकर्म भगवान महावीर स्वामीको भी भोगना पडा था, तथा सबको भोगना ही पडता है, अज्ञानी मोहभाव और बन्धभावसे कर्मको भोगता है, ज्ञानी निर्जराभावसे भोगता है।

इस स्थितिमे श्रीमद्का आत्ममन्थन पराकाष्ठाको पहुँचता है। परन्तु थोडे समयमे ही वे इस घोर सग्राममेसे विजयी और अधिक तेजस्वी होकर बाहर आते हे। तेईसवे वर्षमे तो रणसग्रामकी धूलके बदलेमे एक शान्त, समाहित और आत्मलक्षी पुरुषका इनमे दर्शन होता है। इनकी अभ्यन्तर दशा एक विशिष्ट प्रकारकी तीव्रता पकडती जाती है। इस वर्षमे उनकी समाधि दशा बढती जाती है।

9

९

मनोमन्थन बादकी आत्मस्थिति

विवाह बादके तीव्र मनोमन्थनमेसे अधिक तेजस्वी और आत्मनिष्ठ होकर श्रीमद् विशेष प्रकाशित हो उठते है। तेईसवे वर्षमे तो श्रीमद् अद्भुत आत्मस्थितिको पहुँच जाते है। इस वर्षमे सौभागभाईके ऊपर लिखे गये पत्रमे श्रीमद् बताते है

'रात और दिन एक परमार्थ विषयका ही मनन रहता है, आहार भी यही है, निद्रा भी यही है, शयन भी यही है, स्वप्न भी यही है, भय भी यही है, भोग भी यही है, परिग्रह भी यही है, गति भी यही है, और आसन भी यही है।

'अधिक क्या कहा जाय? हड्डी, मास और उसकी मज्जा पर एक उसी रगका रग चढा हुआ है। मानो एक एक रोम भी इसीका विचार करता है। और इस कारणसे कुछ देखना अच्छा नही लगता, कुछ सूंघना अच्छा नही लगता, कुछ सुनना अच्छा नही लगता, कुछ चखना अच्छा नही लगता या कुछ स्पर्श करना अच्छा नही लगता,

कुछ बोलना अच्छा नही लगता, मौन रहना भी अच्छा नही लगता। उठना-बैठना, सोना-जागना, खाना या भूखा रहना, सग-असग, लक्ष्मी-अलक्ष्मी आदि किसीमे भी रुचि नही रही ऐसी स्थिति है।

'फिर भी उसके प्रति आशा, निराशा कुछ भी उदय होता नही दिखाई देता। वह हो तो भी अच्छा और न हो तो भी अच्छा। ये कुछ दुखके कारण नही है। दुखका कारण एक विपमात्मा है और यदि वह सम है, सर्व सुख ही है। इस वृत्तिके कारण समाधि रहती है।

'परन्तु वाहरसे गृहस्थपनेकी प्रवृत्ति नही हो सकती, देहभाव दिखाना नही पुसाता। आत्मभावसे वाह्य प्रवृत्ति करनेमे कितने ही अन्तराय है। तो अव क्या करना? किस पर्वतकी गुफामे जाकर लोप हो जाना, यही रटन है। तो भी वाहरसे ससारकी अमुक प्रवृत्ति करनी पडती है, उसके लिए शोक तो नही, फिर भी जीव उसे सहन नही करना चाहता। परमानन्दका त्याग करके इसे चाहे भी क्यो? और इसी कारणसे ज्योतिषादिकी* ओर चित्त नही है। किसी भी प्रकारके भविष्यज्ञान या सिद्धियोकी इच्छा नही है, और उसका उपयोग करनेमे उदासीनता है। उसमे भी वर्तमानमे अधिक रहती है।'

* श्रीमद् ज्योतिप विद्यामे निपुण थे। इस विपयमे ऐसा हुआ था कि, स १९४३के भाद्रपदमे वम्वई जानेसे पहले श्रीमद् जेतपर (मोरवीका गाँव) अपने वहनोई श्री चत्रभुज वेचरके यहाँ गये थे। उस समय श्रीमद्की आर्थिक स्थिति निर्वल थी। जेतपरमे

एक अन्य स्थल पर भी वे अपनी दिव्य अनुभूतिका वर्णन करते है।

'प्रभातमे मै जल्दी उठा, तवसे कोई अपूर्व आनन्द रहा करता था। .इस एकाकार वृत्तिका वर्णन शव्दोसे कैसे हो सकता है? वह दिनके वारह वजे तक रहा।

शकर पचोली नामके एक विद्वान् ज्योतिषी थे। उन्हे गणित फलादेशका अच्छा ज्ञान था। चत्रभुजभाईने उनसे श्रीमद्के वम्वई प्रयाण और अर्थप्राप्तिके सम्वन्धमे पूछा। शकर पचोलीने प्रश्नकुडली वनाकर वम्वई जानेके अमुक समय पश्चात् अर्थलाभ वताया। उसमेसे अमुक फलित हुआ और अमुक वरावर न फला। इससे श्रीमद्को अच्छा ज्योतिष जान लेनेकी इच्छा उत्पन्न हुई थी।

वम्वईमे शतावधान करके श्रीमद्ने अच्छी ख्याति प्राप्त की। उस समय वम्वईके अग्रगण्य विद्वान्, पडित, श्रीमान् आदि उपस्थित थे। उनमे अच्छे अच्छे ज्योतिषी भी थे। उनमे ज्योतिषियोका, छोटी आयुके प्रवल प्रतिभासम्पन्न श्रीमद्के प्रति आकर्षण हुआ। इस प्रकारसे श्रीमद्को ज्योतिष जाननेकी इच्छा की पूर्ति करनेवाले साधनोकी प्राप्ति हुई। विद्वान् ज्योतिषियोका निमित्त पाकर श्रीमद् उन विद्वानोसे भी अधिक उस विद्यामे पारगत हुए थे।

इस विषयका एक प्रसिद्ध प्रसग है। जौहरी रेवाशकरभाई वकालत करते थे और व्यापार करनेकी उनकी स्वप्नमे भी भावना नही थी। वे उस समय कुछ कर्जदार थे। उनकी कुडली देखकर श्रीमद्ने कहा था कि उनको व्यापारमे अत्यन्त लाभ है, वल्कि लक्षाधिपति होनेका योग है, ऐसा कहकर वकालत छोडकर वम्वई जानेकी प्रेरणा श्रीमद्ने उन्हे की थी। श्री रेवाशकरभाईने तदनुसार किया और श्रीमद्का कहा हुआ वचन सत्य निकला।

अपूर्व आनन्द तो वैसेका वैसा ही है, परन्तु अन्य ज्ञानकी बातोमे, उनके बादका काल व्यतीत किया।. '

अपने एक अद्भुत अनुभवके बारेमे श्रीमद् स १९४४के आषाढ वदी तृतीयाके दिन लिखे गये पत्रमे विदित करते है

'यह एक अद्भुत बात है कि चार पाँच दिन हुए बांई आंखमे, एक छोटा चक्र जैसा बिजलीके समान प्रकाश हुआ करता है, जो आंखसे थोडी दूर जाकर अदृश्य हो जाता है। लगभग पांच मिनट रहकर फिर दिखाई देता है। यह मेरी दृष्टिमे बारम्बार देखनेमे आता है।

इस सम्बन्धमे किसी प्रकारकी भ्रमणा नही है। इसका कुछ निमित्तकारण नही दिखाई पडता। इससे बहुत आश्चर्य उत्पन्न होता है। आंखमे दूसरा किसी भी प्रकारका विकार नही है। प्रकाश और दिव्यता विशेष रूपसे रहा करती है। चार दिन पहले दोपहरको २–२० मिनट पर एक आश्चर्यभूत स्वप्न आया था, उसके बाद यह सब हुआ, ऐसा मालूम होता है। अन्त करणमे खूब प्रकाश रहता है, शक्ति खूब रहती है। ध्यान समाधिस्थ रहता है। '

आगे वे कार्तिकमे १९४६के पत्रमे प्रगट करते है।

'उस पवित्र दर्शनके बाद फिर चाहे कैसा आचरण क्यो न हो परन्तु उसे तीव्र बन्धन नही है, अनन्त ससार नही है, सोलह भव नही है, अभ्यन्तरमे दुख नही है, शकाका निमित्त नही है, अन्तरगमे मोहिनी नही है, सत् सत्, निरुपम, सर्वोत्तम, शुक्ल, शीतल, अमृतमय दर्शनज्ञान,

सम्यक् ज्योतिर्मय चिरकाल आनन्दकी प्राप्ति है। उस अद्भुत सत् स्वरूप दर्शनकी बलिहारी है।

'जहाँ मतभेद नही, जहाँ शका नही, काक्षा, वितिगिच्छा (जुगुप्सा), मूढदृष्टि इनमेसे कुछ भी नही है। और जो है उसे कलम नही लिख सकती, वचनसे उसका वर्णन नही हो सकता तथा मन भी जिसका विचार नही कर सकता।'

श्रीमद्के पवित्र जीवनमे कल्याणकारी धार्मिक भावनाये यहाँ तक भरी हुई थी कि स्वप्न भी उनको उस विषयका आया करता था।

स १९४६मे जेष्ठ वदी बारसके एक पत्रमे श्रीमद् लिखते है।

'कल रातको एक अद्भुत स्वप्न आया था। उसमे दो पुरुषोके समीप इस जगत्की रचनाके स्वरूपका वर्णन किया था। प्रथम सबकुछ भुलाकर जगत्का दर्शन कराया था। स्वप्नमे भगवान् महावीरका उपदेश सप्रमाण सिद्ध हुआ था। इस स्वप्नका वर्णन अतिशय सुन्दर और चमत्कारी होनेसे परमानन्द हुआ था।'

पुन श्रीमद् श्री सौभागभाईको स १९४७मे मार्गशीर्ष वदी अमावस्याके दिन लिखे गये एक पत्रमे अपने मनकी स्थितिका कथन करते है।

'सत्स्वरूपको अभेदभावसे अपूर्व समाधिमे स्मरण करता हूँ।

'अन्तिम स्वरूप समझनेमे उसका अनुभव करनेमे अल्प

भी न्यूनता नही रही है। जैसा है वैसा स्वरूप सब तरहमे समझमे आया है। सर्व प्रकारका, एक देश छोडकर बाकी सब अनुभवमे आया है। एक देश भी समझे बिना नही रहा है, परन्तु योग(मन, वचन, काया)मे असग होनेके लिए वनवासकी आवश्यकता है और वैसा होनेपर वह देश भी अनुभवमे आयेगा अर्थात् उसीमे रहा जायेगा। परिपूर्ण लोकालोकज्ञान उत्पन्न होगा, और उसे उत्पन्न करनेकी तो इच्छा नही है, तो फिर कैसे उत्पन्न होगा? यह आश्चर्यकारक है। परिपूर्ण स्वरूपज्ञान तो उत्पन्न हुआ ही है, और इस समाधिमे निकलकर लोकालोकके दर्शनके प्रति जाना कैसे बनेगा? (यह भी एक मुझे नही परन्तु पत्र लिखनेवालेको विकल्प आता है।)

' अब हम अपनी दशा किसी प्रकारसे नही कह सकेगे, तो लिख सकेगे कैसे? आपके दर्शन होनेपर यदि वाणी कुछ कह सकेगी तो कहेगी, बाकी तो निरुपायता है। मुक्ति भी नही चाहिए, और जिसको जैनोका केवलज्ञान भी नही चाहिए, उस पुरुषको परमेश्वर फिर कौन-सा पद देगा? यह कुछ आपके विचारमे आता है? यदि आता हो तो आश्चर्ययुक्त होना, नही तो यहाँसे तो किसी प्रकारसे कुछ भी बाहर आ सके, ऐसा मालूम नही देता।

'आप जो कुछ व्यावहारिक धर्मप्रश्न भेजते है, उनपर भी लक्ष्य नही जाता। उनके अक्षर भी पूरे पढनेके लिए लक्ष्य नही जाता, तो फिर उनका उत्तर न दिया जा सके तो आप क्यो उसकी प्रतीक्षा करते है? अर्थात् अब वह

कब होगा, इसकी कल्पना नही की जा सकती।

'आप वारम्बार लिखते है कि दर्शन करनेकी अति आतुरता है, परन्तु महावीर देवने इस कालको पचमकाल कहा है, व्यास भगवान्ने कलियुग कहा है, वह कहाँसे एक साथ रहने दे? और यदि रहने दे तो आपको उपाधि-युक्त क्यो न रखे?

'यह भूमिका उपाधिकी शोभाका सग्रहस्थान है।'

श्रीमद् सवत् १९४७मे पौप सुदी ५को लिखते है

'अलखनाम धुनी लगी गगनमे,
मगन भया मन मेरा जी,
आसन मारी सुरत दृढ धारी,
दिया अगम घर डेराजी,
दरश्या अलख देदाराजी।'

गगन–निर्विकल्प समाधि–मे अलक्ष्य धुनी लगी हुई है, उसीमे मेरा मन मग्न–लीन हुआ है। आसन मारकर तथा अचल ध्यान धारणकर अगम परमात्माके घरमे डेरा जमाया है। अलख रूपके दर्शन हुए है।

उपर्युक्त वर्पके माह वदी ३के दिनका अनुभव प्रगट करते हुए वे एक पत्रमे लिखते है

'आज प्रभातसे निरजनदेवका कोई अद्भुत अनुग्रह प्रकाशित हुआ है, आज चिरकालकी इच्छित पराभक्ति कोई अनुपम रूपमे उदित हुई है।'

इस प्रकार श्रीमद्का धीरोदात्त जीवनप्रवाह सम्पूर्ण विशुद्ध आत्मस्थितिकी ओर अविरत रूपसे वहने लगता

है। चौबीसवे वर्षमे अर्थात् १९४७मे श्रीमद् राजचन्द्रके परमानन्दकी मस्ती बढ़ती जाती है। स १९४७के आषाढ सुदी १३के पत्रको ही देखिये।

'सुखका सिन्धु श्री सहजानन्दजी,
जगजीवन के जगवन्दजी,
शरणागतना सदा सुखकन्दजी,
परमस्नेही छो परमानन्दजी

श्री सहजानन्दजी आप सुखके सिन्धु है, जगत्के जीवन-आधार है, जगतमे वन्दनीय है। शरणागतके लिए आप सदा सुखके मूल है, परमस्नेहवाले है और परमानन्द स्वरूप है।

'हम हरिकृपासे परम प्रसन्न पदमे है।

'हालमे हमारी दशा कैसी है, यह जाननेकी आपकी इच्छा रहा करती है, परन्तु वह जैसे विस्तारसे चाहिए वैसे विस्तारसे नही लिखी जा सकती, इस कारण वारवार नही लिखी है। यहाँ हम सक्षेपमे लिखते है।

'एक पुराणपुरुष और पुराणपुरुषकी प्रेमसपत्तिके विना हमे कुछ भी अच्छा नही लगता। हमारी किसी पदार्थमे रुचि नही है, कुछ प्राप्त करनेकी इच्छा नही होती, व्यवहार कैसे चलता है, इसका भी भान नही है, जगत् किस स्थितिमे है इसकी स्मृति नही रहती, शत्रु-मित्रमे कोई भेदभाव नही है, कौन मित्र और कौन शत्रु है, इसका ख्याल रहता नही है। हम देहधारी है या नही, इसका जब स्मरण करते है तब बडी कठिनतासे जानते है, हमे

क्या करना है इसका कोई अनुमान नही कर शकता।

'सब पदार्थोमे उदासी आ जानेसे हम इच्छानुसार प्रवृत्ति करते है। व्रत-नियमका कोई नियम नही रखा है। जाति-पातिका कोई प्रसग नही है। हमने जगत्मे अपनेसे विमुख किसीको नही माना है, हमारे जैसे सत्सगी न मिलनेसे खेद रहता हे, सम्पत्ति पूर्ण है इस कारण उसकी इच्छा नही रहती, अनुभवित शब्दादि विषय स्मृतिमे आनेसे अथवा ईश्वरेच्छासे उसकी इच्छा नही रही है, अपनी इच्छासे थोडी ही प्रवृत्ति की जाती है।

'हरिका इच्छित क्रम जैसे चलाता है वैसे चलते है। हृदय प्राय शून्य-सा हो गया है। पॉचो इद्रिय शून्यरूप प्रवर्तमान है। नय, प्रमाण आदि शास्त्रभेद याद नही आते, कुछ भी पढनेसे चित्त स्थिर नही रहता। खाने, पीने, बैठने, सोने, चलने और बोलनेकी वृत्तियाँ अपनी इच्छानुसार प्रवृत्ति करती है। मन अपने स्वाधीन है या नही इसका यथायोग्य ज्ञान नही रहा है।

'इस प्रकार सब तरहसे विचित्र उदासीनता आ जानेसे चाहे जैसी प्रवृत्ति करते है। एक प्रकारसे यह पूरा पागलपन है और एक प्रकारसे उस पागलपनको कुछ छिपाकर रखते है। तथा जितने अशमे उसे छिपाकर रखते है, उतने अशमे हानि है। हम योग्य प्रवृत्ति करते है या अयोग्य इसका कुछ हिसाब नही रखा हे।

'आदिपुरुषमे अखड प्रेमके सिवाय अन्य मोक्षादि पदार्थोकी आकाक्षा नष्ट हो गई है। इतना सब कुछ

होने पर भी मनमानी उदासीनता नही है, ऐसा हम मानते है। अखड प्रेमकी खुमारी जैसी प्रवाहित होनी चाहिए वैसी प्रवाहित नही है, ऐसा हम जानते है। ऐसा करनेसे वह अखड खुमारी प्रवाहित होगी, ऐसा निश्चयरूपसे मानते है। परन्तु उसे करनेमे काल कारणभूत हो रहा है और यह सब दोष हमारा है या हरिका, ऐसा यथोचित निर्णय नही कर सकते।

'इतनी अधिक उदासीनता होने पर भी व्यापार करते है, लेते-देते है, लिखते-पढते है, सभाल रखते है और खेद करते है तथा हसते है। जिसका कोई ठिकाना नही ऐसी हमारी दशा है और उसका कारण यही है कि जबतक हरिकी इच्छाको सुखद नही माना है, तबतक खेद मिटने-वाला नही है।

'. प्रभुकी परम कृपा है। हमे किसीसे भिन्न भाव नही है। किसी पर दोषबुद्धि नही आती। सिद्धान्तज्ञान हमारे हृदयमे आवरितरूपसे पडा है। यदि हरि–इच्छा प्रगट होने देनेकी होगी तो प्रगट होगा। हमारा देश हरि है, जाति हरि है, काल हरि है, देह हरि है, रूप हरि हैं, नाम हरि है, दिशा हरि है, सबकुछ हरि है, और वैसा होने पर भी इस प्रकार व्यापारमे है, यह इसकी इच्छाका कारण है।'

इसी मासमे लिखे हुए श्रीमद्के आत्मानुभूतिपूर्ण पद्यकी ओर दृष्टिपात करना अनुचित न होगा।

'विना नयन पावे नहि, विना नयनकी बात,
सेवे सद्गुरुके चरन, सो पावे साक्षात् १
बूझी चहत जो प्यास को, है बूझनकी रीत,
पावे नहि गुरुगम विना, एहि अनादि स्थित २
एहि नहि है कल्पना, एहि नहि विभग,
कई नर पञ्चमकालमे, देखी वस्तु अभग ३
नहि दे तु उपदेशकु, प्रथम लेहि उपदेश,
सवसे न्यारा अगम है, वो ज्ञानीका देश ४
जप, तप, और व्रतादि सब, तहाँ लगी भ्रमरूप,
जहाँ लगी नहि सतकी, पाई कृपा अनूप ५
पायाकी ए बात है, निज छन्दनको छोड,
पिछे लाग सत्पुरुषके, तो सब वन्धन तोड' ६

इस प्रकार श्रीमद् राजचन्द्र आगे वढते वढते उस स्थितिको प्राप्त होते है, जिसके लिए वे आतुर थे। और इस गाढ स्वरूपस्थितिकी दशामे वे अपने पत्रोमे अपने लिए 'यथार्थ वोधस्वरूप', 'श्री वोधस्वरूप', 'वोधवीज', 'समस्थितभाव', 'स्वरूपस्थ', 'निष्काम आत्मस्वरूप', 'सहजस्वरूप', 'अप्रतिवद्ध', 'अभिन्न वोधमय', 'समाधिरूप', 'अचिन्त्यदशास्वरूप' आदि उपनामोका प्रयोग करते है। और एक स्थान पर तो श्रीमद् अपनेको आप ही प्रणाम करते है। वह वाक्य इस प्रकार है 'जिसमे अविषमरूपसे आत्मध्यान रहता है ऐसे श्री राजचन्द्रके प्रति पुन पुन (वारम्वार) नमस्कार। '

और इस परमस्थिति प्राप्तिका आनन्दोद्गार श्रीमद्ने

एक पदमे उल्लासपूर्वक गाया है। उस पदकी थोडी-सी पंक्तियाँ नीचे दी जाती है

'धन्य रे दिवस आ अहो,
जागी रे शान्ति अपूर्व रे,
दश वर्षे रे धारा ऊलसी,
मटचो उदयकर्मनो गर्व रे
ओगणीसे सुडताळीसे,
समकित शुद्ध प्रकाश्यु रे,
श्रुत अनुभव वधती दशा,
निज स्वरूप अवभास्यु रे'

अहा! इस दिनको धन्य है, जब आत्मामे अपूर्व शान्ति जाग्रत हुई है। दश वर्षमे यह धारा उल्लसित हुई और उदयकर्मका गर्व दूर हो गया। अहा! इस दिनको धन्य है।

संवत् उन्नीससौ सेतालीसमे शुद्ध समकितका प्रकाश हुआ, श्रुतका अनुभव, वढती दशा और निज स्वरूपका दर्शन हुआ।

इस प्रकार सं १९४७मे श्रीमद् राजचन्द्रको सम्यग्दर्शन –आत्मसाक्षात्कारकी प्राप्ति हुई और फिर वे शान्त, स्थिर होकर परम निर्ग्रन्थ पदकी ओर मुडे। इसी बातको वे एक पद्यसे प्रगट करते है।

'अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे?
क्यारे थईशु बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जो?

सर्व सम्बन्धनु बन्धन तीक्ष्ण छेदीने,
विचरशु कब महत्पुरुषने पन्थ जो ?''

ऐसा अपूर्व अवसर कब आयेगा ? कब मैं बाह्य और अन्तरगसे निर्ग्रन्थ बनूंगा ? समस्त सम्बन्धसे तीक्ष्ण बन्धनको छेदकर कब मैं महान पुरुषोंके पन्थ पर विचरण करूँगा ? ऐसा अपूर्व अवसर कब प्राप्त होगा ?

९

१०

व्यवहारमे आदर्शरूप श्रीमद्

श्रीमद् जिस समय प्रवल आत्मचिन्तन और प्रवल आत्मस्थितिकी दशामेसे पार हो रहे थे, उस समय दरम्यान ही उनकी व्यावहारिक उपाधि भी उतनी ही दृढ होती जाती थी। परन्तु अपनी आन्तर दशा और वाह्य उपाधि इन दोनोके वीचमे भी श्रीमद् राजचन्द्रने कैसा उत्तम प्रकारका मेल किया था, वह इस वर्षमे उनके लिखे गये पत्रोमे प्राय देखनेको मिलता है।

सवत् १९४८की पौष सुदी सप्तमीके दिन लिखे गये पत्रमे श्रीमद्जी विदित करते है।

'कोई इस प्रकारका उदय है कि, अपूर्व वीतरागता होते हुए भी व्यापार सम्वन्धी हम कुछ प्रवृत्ति कर सकते है, तथा अन्य भी खाने-पीने आदिकी प्रवृत्ति वडी मुश्किलसे कर सकते है। मन कही विराम नही पाता, प्राय वह यहाँ किसीका समागम भी नही चाहता।'

स १९४८के माह वदी ४के पत्रको देखिये

'जहाँ चारो ओर उपाधिकी ज्वाला प्रज्वलित हो रही

हो ऐसे प्रसगमे समाधि रहना परम दुष्कर है, और यह बात परम ज्ञानीके सिवाय अन्यसे बनना अति कठिन है। हमे भी आश्चर्य होता है, तथापि प्राय इस प्रकार रहा करता है, ऐसा हमको अनुभव है।

'जो आत्मभावको यथार्थ समझता है, निश्चल रहता है, उसे यह समाधि प्राप्त होती है।

'हम सम्यग्दर्शनका लक्षण वीतरागता मानते है, और वैसा अनुभव है।'

इस बातके समर्थनमे श्रीमद्के जीवनकी एक घटना पाठकोके लिए अत्यन्त उपयोगी होगी।

खभात सघके मुख्य आचार्य श्री हरखचदजी महाराजके साधुओमे श्री लल्लुजी महाराज नामके एक साधु थे। उनका श्रीमद्के साथ अत्यन्त परिचय था। श्री लल्लुजी महाराजके शिष्य श्री देवकरणजी महाराज कुशल व्याख्यान दाता थे। वे एक बार श्रीमद्से मिलने आये।

बातचीत करते हुए श्रीमद् राजचन्द्रने देवकरणजीसे पूछा

'व्याख्यानमे कितने मनुष्य आते है?'

देवकरणजीने कहा 'करीब एक हजार मनुष्योकी उपस्थिति रहती है।'

श्रीमद्ने प्रश्न किया 'स्त्रियोको व्याख्यानमे देखकर विकार होता है?'

देवकरणजीने कहा 'काया(शरीर)से नही होता, मनसे होता है।'

श्रीमद्ने कहा 'मुनिको तो मन, वचन, और काया

इन तीनो योगोमे व्रतोका पालन करना चाहिए।'

इसमे देवकरणजीने आक्षेप करते हुए कहा 'आप गद्दी पर बैठते है और हीरामाणिक आपके पास रहते है, तो उस समय आपकी वृत्ति डोलायमान नही होती?'

श्रीमद्ने कहा 'मुनि, हम तो उन्हे कालकूट विष मानते हैं।' पुन श्रीमद्जीने पूछा 'आप कौन है?'

श्री देवकरणजी बोले 'जितने समयतक वृत्ति स्थिर रहती है, तबतक साधु।'

श्रीमद्ने कहा 'इस प्रकार तो ससारीको भी साधु कह सकते है या नही?'

यह सुनकर देवकरणजी चुप रहे।

पुन श्रीमद्जी बोले 'नारियलका गोला जैसे उससे जुदा रहता है वैसे ही हम रहते है।'

एक दूसरा उदाहरण भी मननीय है।

एक समय श्रीमद् घूमने गये थे। श्मशानका स्थल आया, तब श्रीमद्ने साथमे आनेवाले एक भाईसे पूछा 'यह क्या है?'

उसने कहा 'श्मसान।'

श्रीमद् राजचन्द्रने कहा 'हमे तो सारी बम्बई श्मसान समान लगती है।'

स १९४८के माह वदीके एक पत्रका विचार कीजिये। वे लिखते है।

'क्षणभर भी अविकल्प समाधिका ध्यान नही दूर होता फिर भी अनेक वर्षोंसे विकल्परूप उपाधिकी आराधना

करते आ रहे है।

'जहाँतक ससारका उदय है वहाँतक किसी न किसी प्रकारकी उपाधिका सभव ही है। फिर भी अविकल्प समाधिमे रहनेवाले ज्ञानीको तो वह उपाधि भी अवाध है, अर्थात् समाधि ही है।

'जो कि इस देहको धारण करके किसी प्रकारकी महान श्रीमन्तता नही भोगी, शब्दादि विषयोका पूरा वैभव प्राप्त नही हुआ, कोई विशेप राज्याधिकार सहित दिन नही विताये, अपने निजके गिने जानेवाले ऐसे किसी धाम, आरामका सेवन नही किया और अभी युवावस्थाका प्रथम भाग चल रहा है, तथापि इनमेसे किसीकी हमे आत्मभावसे लेशमात्र इच्छा नही। यह एक महान आश्चर्य जानकर हम प्रवृत्ति करते है और इन पदार्थोकी प्राप्ति अप्राप्ति दोनोको समान जानकर अनेक प्रकारमे अविकल्प समाधिका ही अनुभव करते है।

'ऐसा होने पर भी वारम्वार वनवासकी याद आया करती है। किसी प्रकारके लोकपरिचयमे रुचि नही रहती, सत्सगमे भाव रहा करता है, और अव्यवस्थित दशासे उपाधि योगमे रहते है। एक अविकल्प समाधिके सिवाय अन्य कुछ स्मृतिमे नही रहता, चिन्तन नही रहता, रुचि नही रहती, अथवा कोई भी काम नही किया जाता। '

सवत् १९४८मे श्रावण वदी १४के एक पत्रमे श्रीमद् लिखते है कि

'चित्तके वन्धनयुक्त न हो सकनेके कारण, जो जीव

ससारके सम्बन्धमे स्त्री आदि रूपसे प्राप्त हुए है, उन जीवोकी इच्छाको भी दुखित करनेकी इच्छा नही होती, अर्थात् उसे भी अनुकम्पासे और माँबाप आदिके उपकार आदि कारणोसे उपाधियोगको बलवान रीतिसे सहन करते हैं। और जिस जिसकी जो कामना है, उस उस प्रकारके उदयमे जिस प्रकारसे उनकी पूर्ति होना है, जबतक वह उस प्रकारसे न हो तबतक निवृत्ति ग्रहण करते हुए जीव उदासीन ही रहता है। इसमे किसी प्रकारकी हमारी इच्छा नही है, हम तो सबमे निष्काम ही है। ऐसा है फिर भी उस प्रकारके बन्धन रखनेका प्रारब्ध उदयमे रहता है, इसे भी दूसरे मुमुक्षुओकी परमार्थ वृत्ति उत्पन्न करनेमे विघ्नरूप समझते है।'

सवत् १९४८के असोज मासमे लिखे गये एक पत्रमे श्रीमद् विदित करते है

'हम किसी भी प्रकारके अपने आत्मिक बन्धनके कारण संसारमे नही रह रहे हैं। स्त्रीसे पूर्वमे बाँधा हुआ कर्म निवृत्त करना है, कुटुम्बका पूर्वमे लिया हुआ कर्ज वापिस देकर निवृत्त होनेके लिए उसमे निवास करते है। रेवाशंकरभाईका हमने जो लेना है, उसे देनेके लिए रह रहे हैं। इनके अतिरिक्त जो जो प्रसग हैं, वे सब उसीके अन्दर समा जाते हैं। तनके लिए, धनके लिए, भोगके लिए, सुखके लिए, स्वार्थके लिए या अन्य किसी तरहके आत्मिक बन्धनके कारण हम ससारमे नही रह रहे है। किसी दुखके भयसे भी हम संसारमे रहते हैं, ऐसा नही

है। मान अपमानका जो कुछ थोडा-बहुत भेद है, वह दूर हो गया है।'

इस तथा इस समयके अन्य पत्रोके अवलोकनसे आसानीसे समझमे आता है कि श्रीमद् राजचन्द्रने अपने ऊपर आई हुई उपाधिकी आपत्तिको, सप्राप्त व्यवहारोको निष्कामतासे, वीतरागतासे स्वस्थ, शान्त चित्तसे अदा करनेकी लोकोत्तर अद्‌भुत अवस्था प्राप्त कर ली थी।

इतनी भूमिकाको ध्यानमे रखकर अब हम श्रीमद् राजचन्द्रके व्यावहारिक जीवनकी ओर दृष्टिपात करते है।

यो तो श्रीमद् बचपनमे अपने पिताकी दुकानमे बैठते थे, इस बातका आगे विचार हो चुका है।

उस समय भी वे अपनी छोटी अवस्थामे पवित्र भावनासे अपना काम करते थे। 'किसीको मैने न्यूनाधिक भाव नही कहा या किसीको न्यूनाधिक नही तौला है।' यह भावना बडेपनमे भी इनमे उतनी ही दृढ थी।

इक्कीसवे वर्षमे श्रीमद् जवाहिरातके व्यवसायमे लगे थे। बहुत ही थोडे समयमे उन्होने एक अच्छे जौहरीके तौर पर कीर्ति प्राप्त की थी।

श्रीमद् बम्बईमे व्यापारमे पडे, उस समयसे हिस्सेदारोके साथ किस प्रकारका आचॅरण करना उसका निर्णय उन्होने कर रखा था। सवत् १९४६की उनकी रोजनीशी (डायरी) मे उसका उल्लेख मिलता है। यह आदर्श हम लोगोको सहायरूप हो, ऐसा अवश्य है।

१ 'किसीके भी दोषोको मत देख। तेरा जो होना

है वह अपने दोपसे होता है ऐसा तू मान।

२ 'तू अपनी(आत्म)प्रशसा न करना, और यदि करेगा तो तू तुच्छ है, ऐसा मैं मानता हूँ।

३ 'जिस प्रकार दूसरेको प्रिय लगे वैसा व्यवहार करनेका तू प्रयत्न करना। कदाचित् उसमे तुझे एकदम सिद्धि प्राप्त न हो, या विघ्न आये तो भी दृढ आग्रहसे धीरे-धीरे उस क्रम पर तू अपनी स्थिति करना।

४ 'जिसके साथ तूने व्यवहार-सम्बन्ध किया है, उसके साथ अमुक प्रकारके आचरणका निश्चय करके, उसे कह दे। यदि उसे अनुकूल आये तो ठीक, नही तो वह कहे वैसा करना। साथमे उसे कह देना कि तुम्हारे कार्य (जो मुझे सौंपा गया है)मे मैं किसी तरहसे अपनी निष्ठासे हानि नही पहुँचाऊँगा। तुम मेरे सम्बन्धमे अन्य शका न करना। मुझे व्यवहार सम्बन्धी अन्यथा भाव नही है। तथा मैं तुमसे अन्यथा व्यवहार नही करना चाहता, इतना ही नही परन्तु यदि मेरे मन, वचन और कार्यसे थोडा भी विपरीताचरण हुआ हो तो मैं उसके लिए पश्चात्ताप करूँगा। ऐसा न करनेकी प्रथमसे वहुत सावधानी रखूंगा। आपके सौंपे हुए कामको करते हुए मैं निरभिमानी रहूँगा। मेरी भूलके लिए यदि आप उपालभ देगे तो मैं सहन करूँगा।

'जहाँतक मेरा वश चलेगा वहाँतक स्वप्नमे भी आपसे द्वेष वा आप सम्बन्धी किसी भी प्रकारकी अन्यथा कल्पना न करूँगा। यदि आपको किसी भी प्रकारकी शका उठे तो मुझसे कहेगे तो मैं आपका उपकार मानूंगा और उसका

यथार्थ स्पष्टीकरण करूँगा। यदि स्पष्टीकरण न होगा तो मौन रहूँगा, परन्तु असत्य नही बोलूँगा।

केवल आपसे इतना ही चाहता हूँ कि आप किसी प्रकारसे मुझे निमित्त बनाकर अशुभयोगमे प्रवृत्ति न करे, आप अपनी इच्छानुसार चले, उसमे मुझे कुछ अधिक कहनेकी आवश्यकता नही है। मुझे केवल अपनी निवृत्ति श्रेणीमे प्रवर्तन करनेमे किसी तरहसे आप अपना अन्त करण सकुचित न करे। और यदि मनको सकुचित करनेकी आपकी इच्छा हो तो अवश्य मुझे पहलेसे सूचित कर दे। मेरी उस श्रेणीको निभानेकी इच्छा है, और उसके लिए मै यथायोग्य कर लूँगा। जहाँतक मेरा वश चलेगा वहाँतक मै दुखी नही करूँगा। और अन्तमे यदि आपको यह निवृत्ति-श्रेणी अप्रिय होगी तो जैसे बनेगा वैसे मै सावधानीसे आपके पाससे, आपको किसी प्रकारकी हानि पहुँचाये बिना, उचित लाभ करके और बादमे भी किसी भी समयके लिए वही इच्छा रखकर दूर हो जाऊँगा।'

श्रीयुत माणिकलाल घेलाभाई श्रीमद्के बारेमे लिखते है

'वे (श्रीमद्) कितने ही वर्षोतक हमारे व्यापारमे हिस्सेदार रहे। कठिनाईके समयमे उन्होने अपनी व्यापारिक कुशलताका अच्छा परिचय दिया था। हम लोग विलायतके व्यापारियोके साथ हीरा-मोती सम्बन्धी कामकाज करते थे, वे लोग हमारी कार्यपद्धतिको देखकर भारतीय व्यापारियोकी प्रशसा करते। इस कार्यपद्धतिका सारा श्रेय श्रीमान् राजचन्द्रजीको ही था।'

जब श्रीमद् राजचन्द्रने हीरा-मोतीका व्यापार शुरू किया था उस समयमें महात्मा गाँधीजीका उनसे समागम हुआ था। महात्मा गाँधीजीने उस समयके श्रीमद् राजचन्द्रका सुन्दर उल्लेख अपने इनसे सम्बन्धित सस्मरणोमें किया है। इसके लिए निम्नलिखित अवतरण देखिये

'वणिक तेहनु नाम, जेह जूठु नव बोले
वणिक तेहनु नाम, तोल ओछु नव तोले,
वणिक तेहनु नाम, बापे बोल्यु ते पाळे,
वणिक तेहनु नाम, व्याज सहित धन वाळे,
विवेक तोल ए वणिकनु, सुलतान तोल ए शाख छे
वेपार चूके जो वाणियो, दुःख दावानळ थाय छे'

(वणिक वह है, जो कभी झूठ नही बोलता वणिक वह है जो कभी कमती नही तोलता वणिक वह है जो अपने बापके वचनका पालन करता है, और वणिक वह है जो व्याज सहित लिये हुए धनको वापस लौटाता है।

वणिककी कीमत विवेकमे और राजाकी कीमत मर्यादा-पूर्वक चलनेसे है। यदि बनिया व्यापार चूके तो वह दुःखका दावानल होता है। अर्थात् दुःखी होता है।)

—शामल भट्ट

'प्राय सामान्य मान्यता ऐसी है कि व्यवहार-व्यापार, परमार्थ अथवा धर्म ये दोनो भिन्न और विरोधी है। व्यापारमे धर्मका समावेश करना यह एक प्रकारका पागलपन है। ऐसा करनेसे दोनो बिगडते है। यदि यह मान्यता खोटी न हो तो हमारे भाग्यमें केवल निराशा ही हो।

ऐसी एक भी वस्तु नही है, ऐसा एक भी व्यवहार नही है कि जिसमेंसे हम धर्मको दूर रख सके या दूर कर सके।

'धार्मिक मनुष्यका धर्म उसके प्रत्येक कार्यमे दिखाई देना चाहिए, ऐसा श्रीमद् रायचन्दभाईने अपने जीवनमे प्रगट किया था। धर्म कुछ एकादशीके दिन ही, पर्यूषणमे ही, ईदके दिन या रविवारके दिन पालनेका अथवा तो मन्दिरोमें, देवलोमे और मस्जिदोमे पालनेका है, परन्तु दुकान वा दरबारोमे नही, ऐसा कुछ नियम नही है। इतना ही नही, इस प्रकारसे कहना धर्मकी अज्ञानता सिद्ध करता है। यो रायचन्दभाई कहते, मानते तथा अपने आचारमे आचरण करते थे।

'उनका व्यवसाय हीरे-मोतीका था। श्री रेवाशकर जगजीवन जौहरीके साथ उनकी हिस्सेदारी थी। साथमे वे कपडेकी भी दुकान करते थे। वे अपने व्यवहारमे सब तरहसे प्रमाणिकताका ध्यान रखते है, ऐसा मुझ पर प्रभाव पडा था। वे सौदा करते उस समय मे भी कभी-कभी सहजमे उपस्थित रहता। उनकी बात स्पष्ट और एक ही थी 'चालाकी' जैसा कुछ नही देखता—अर्थात् वे किसीको ठगनेके लिए कुछ नही करते थे। आनेवालेकी चालाकी वे शीघ्र समझ जाते थे, और उन्हे वह असह्य होती थी, ऐसे समयमे भ्रूकुटियाँ भी चढती और आँखोमे ललाई भी मै देख सकता था।

'धर्मकुशल मनुष्य व्यवहारकुशल नही होता, इस वहमको रायचदभाईने असत्य सिद्ध कर बताया था।

अपने व्यापारमे पूरा लक्ष्य और होशियारी वताते। हीरे-मोतीकी परीक्षा अत्यन्त सूक्ष्मतासे कर सकते। यद्यपि उनको अंग्रेजीका ज्ञान नही था, फिर भी अपने कामके सम्बन्धके आये हुए तार, पत्रादिको अच्छी तरह समझ लेते थे, उन्हे उनके भावार्थ समझनेमे देर नही लगती थी। उनका किया गया अनुमान भी प्राय सत्य हुआ करता था।

'इतनी देखभाल और होशियारी होने पर भी वे व्यापारकी उतावल या चिन्ता नही करते थे। दुकानमे बैठे हुए भी जव अपना काम पूरा हो जाता, तो धार्मिक पुस्तक जो उनके पास सदा ही रहती थी, उस पर दृष्टि करने लगते थे। मेरे जैसे जिज्ञासु रोज उनके पास आते और वे उनमे धर्मचर्चा करते हुए जरा भी सकोच नही करते थे।'

महात्मा गाँधीजी इस सम्बन्धमे अपनी 'आत्मकथा'मे लिखते है

'जिसके ऊपर मै मुग्ध हुआ वह था उनका विशाल शास्त्रज्ञान, उनका शुद्ध चरित्र, और उनका आत्मदर्शन करनेका तीव्र उत्साह। वे आत्मदर्शनके लिए ही अपना जीवन व्यतीत करते थे, ऐसा मैने वादमे देखा।

'हसता रमता प्रगट हरि देखु रे,
मारु जीव्यु सफल तव लेखु रे,
मुक्तानन्दनो नाथ विहारी रे,
ओधा जीवनदोरी अमारी रे'

जिस समय मै हँसते खेलते हरिको प्रत्यक्षरूपसे

देखूंगा तब मैं अपने जीवनको सफल मानूंगा। हे उद्धवजी, 'मुक्तानन्द'का नाथ विहारी —उन्मुक्त आनन्दमे विहार करनेवाले भगवान्— हमारी जीवनदोरी अर्थात् आधार है।

मुक्तानन्दका यह पद उन्हे कठाग्र तो था ही, परन्तु वह उनके हृदयमे भी अकित हो गया था।

'स्वय हजारोका व्यापार करते थे, हीरे-मोतीकी परख करते थे, व्यापारकी जटिल समस्याओका समाधान करते थे, फिर भी यह उनका विषय नही था। उनका विषय —उनका पुरुषार्थ—तो आत्मज्ञान—हरिदर्शन था। अपनी दुकान पर और कोई वस्तु हो वा न हो, परन्तु कोई न कोई धर्मपुस्तक और रोजनीशी (डायरी) तो अवश्य उपस्थित रहती। व्यापारकी बात खतम हुई कि वे तुरन्त धर्म-पुस्तक खोलते अथवा समीपमे रखी हुई नोधपोथीमे कुछ लिखने बैठते। उनका जो लेखोका सग्रह प्रगट हुआ है उसमे अधिकाश तो इस नोधपोथीसे लिया गया है। जो मनुष्य लाखोके सौदाकी बात करके तत्क्षण आत्मज्ञानकी गूढ बाते लिखने बैठ जाय, वह व्यापारी नही परन्तु शुद्ध ज्ञानी है।

'उनका इस प्रकारका अनुभव मुझे एक बार नही परन्तु अनेक बार हुआ है। मैने उन्हे कभी मूर्च्छित (अत्यासक्त) स्थितिमे नही देखा। मेरे साथ उनका कोई स्वार्थ नही था। मै उनके अत्यन्त निकटमे रहा हूँ। मै उस समय भिखारी बैरिस्टर था, परन्तु जब मै उनकी दुकान पर पहूँचता तब वे मेरे साथ धर्मवार्ता सिवाय कोई

अन्य बात न करते थे। उस समय यद्यपि मैंने अपनी दिशा नही देखी थी और यह भी नही कहा जा सकता था कि सामान्य रीतिसे धर्मवार्तामे भाव था, फिर भी रायचन्दभाईकी धर्मवातोमे आनन्द आता था। इसके बाद मै अनेक धर्माचार्योंके प्रसगमे आया हूँ। मैंने प्रत्येक धर्मके आचार्योसे मिलनेका प्रयत्न किया है, परन्तु जो प्रभाव मेरे ऊपर रायचन्दभाईने डाला है वह कोई नही डाल सका। उनके बहुतसे वचन मुझमे सीधे अन्दर उतर जाते थे। उनकी बुद्धिके लिए मुझे मान था, उनकी प्रमाणिकताके लिए भी वैसा ही था। इससे मै जानता था वे मुझे जानबूझकर अवमार्गका उपदेश नही करेगे और जो अपने मनमे होगा वही कहेगे। इस कारण मै अपनी आध्यात्मिक कठिनाइयोमे उनका आश्रय लेता था।'

गाँधीजीने श्रीमद् राजचन्द्रका सुन्दर रेखाचित्र अपने स्मरणोमे अकित किया है। उसे पढनेसे श्रीमद्का उदात्त व्यक्तित्व आँखोके सामने खडा हो जाता है।

'अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे?
क्यारे थईशु वाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जो?
सर्व सम्वन्धनु वन्धन तीक्ष्ण छेदीने,
विचरशु कव महत्पुरुपने पथ जो।
सर्व भावथी औदासीन्य वृत्ति करी,
मात्र देह ते सयम हेतु होय जो,
अन्य कारणे अन्य कशु कल्पे नहि,
देहे पण किंचित् मूर्छा नव जोय जो।

ऐसा अपूर्व अवसर कव प्राप्त होगा? कव मै वाह्य और अभ्यन्तरसे निर्ग्रन्थ वनूँगा? सव प्रकारके तीक्ष्ण वन्धनोको छेदकर कव मै महान् पुरुषोके पथ पर विचरण करूँगा? ऐसा अपूर्व अवसर कव प्राप्त होगा?

समस्त पदार्थोसे उदासीन वृत्ति करके, यह देह भी केवल सयमका कारण हो, तथा अन्य किसी कारणसे कुछ भी ग्रहण न हो, और देहमे भी किंचिन्मात्र मूर्च्छा—आसक्ति न रहे। ऐसा अपूर्व अवसर कव प्राप्त होगा?

'जो वैराग्य श्रीमद्‌की इन पक्तियोमे झलक रहा है वह मैने उनके दो वर्षके गाढ परिचयमे उनमे प्रतिक्षण देखा था। उनके लेखोकी एक असाधारणता यह है कि उन्होने स्वय जो अनुभव किया, वही लिखा है, उनमे कही भी कृत्रिमता नही है। दूसरो पर प्रभाव डालनेके लिए उन्होंने एक अक्षर भी नही लिखा, ऐसा मैने देखा है। उनके पास हमेशा कोई धर्मपुस्तक और एक कोरी नोट-वुक पडी ही रहती थी। उस नोट-वुकमे, जो विचार आते उन्हे लिख डालते थे। किसी समय गद्यमे तो किसी समय पद्यमे। इसी प्रकारसे ही 'अपूर्व अवसर' भी लिखा होना चाहिए।

'खाते, पीते, सोते, प्रत्येक क्रिया करते उनमे वैराग्य तो रहता ही था। किसी समय इस जगत्‌के किसी भी वैभवमे उन्हे मोह उत्पन्न हुआ हो, ऐसा मैने कभी नही देखा।

'मै उनके रहन-सहनको आदरपूर्वक फिर भी सूक्ष्मतासे

देखता। भोजनमे उन्हे जो मिले उससे वे सन्तुष्ट थे। पोशाक सादी, कुर्त्ता, अगरखा, दुपट्टा सूतीसाफा और धोती। ये सब बहुत साफ या इस्त्रीबन्द रहते इसका मुझे स्मरण नही है। जमीन पर बैठना, या कुर्सी पर बैठना दोनो समान थे। सामान्य रीतिसे अपनी दुकानमे गद्दी पर बैठते थे।

'उनकी चाल धीमी थी, और देखनेवाला भी समझ सकता कि चलते हुए भी ये अपने विचारमे ग्रस्त है। आँखोमे चमत्कार था अत्यन्त तेजस्वी, विह्वलता जरा भी नही थी। दृष्टिमे एकाग्रता थी। चेहरा गोलाकार, होठ पतले, नाक नोकदार भी नही चपटी भी नही, शरीर इकहरा, कद मध्यम, वर्ण श्याम, देखाव शान्त मूर्तिका-सा था। उनके कठमे इतना अधिक माधुर्य था कि उसे सुनते हुए मनुष्य ऊबता नही। चेहरा हसमुख और प्रफुल्लित था। उसके ऊपर अन्तरानन्दकी छाया थी। भाषा इतनी परिपूर्ण थी कि उन्हे अपने विचारोको प्रगट करनेके लिए शब्द खोजने पडे हो, ऐसा मुझे याद नही है। पत्र लिखने बैठे उस समय कदाचित् ही मैने उन्हे शब्द बदलते देखा होगा, फिर भी पढनेवालेको ऐसा नही लगता कि विचार अपूर्ण है या वाक्य रचना खडित है, अथवा शब्दोके चुनावमे कमी है।

'यह वर्णन सयमीमे सभवित है। बाह्याडम्बरसे मनुष्य वीतरागी नही हो सकता। वीतरागता आत्माकी प्रसादी है। अनेक जन्मके प्रयत्नसे वह प्राप्त होती है

और प्रत्येक मनुष्य उसका अनुभव कर सकता है। राग-भावको दूर करनेका पुरुषार्थ करनेवाला जानता है कि रागरहित होना कितना कठिन है। यह रागरहित दशा कवि(श्रीमद्)को स्वाभाविक थी, ऐसी मेरे ऊपर छाप पडी थी।

'मोक्षकी प्रथम पैडी वीतरागता है। जहाँ तक मन जगत्की किसी भी वस्तुमे फंसा हुआ है, वहाँतक उसे मोक्षकी बात कैसे रुचे? और यदि रुचे तो वह केवल कानको ही—जैसे हम लोगोंको, अर्थ समझे या जाने विना किसी सगीतका मात्र स्वर ही अच्छा लगता है वैसे, मात्र ऐसी कर्णप्रिय क्रीडामेसे मोक्षका अनुसरण करनेवाले आचरण तक आनेमे वहुत-सा समय निकल जाता है। अन्तरग वैराग्यके विना मोक्षकी भावना नही होती, वैराग्यका तीव्र भाव कविमे था।

' व्यवहारकुशलता और धर्मपरायणताका जितना उत्तम मेल मैने कविमे देखा उतना किसी अन्यमे नही देखा।'

उस समयका एक प्रेरक प्रसग है। श्रीमद्ने जवाहि-रातके साथसाथ मोतीका व्यापार भी प्रारभ किया था। वे सभी व्यापारियोमे सवमे विशेष विश्वासपात्र व्यापारीके तौर पर प्रसिद्ध हुए थे।

एक अरव व्यापारी अपने छोटे भाईके साथ वम्वईमे मोतीकी आडतका व्यापार करता था।

छोटे भाईको एक दिन विचार आया कि आज मै भी वडे भाईके समान मोतीका कुछ वडा व्यापार करूँ। इससे

जो माल बाहर परदेशसे आया हुआ था उसे लेकर वह बाजारमे गया। वहाँ एक दलालसे उसने कहा, 'मुझे कोई अच्छा प्रमाणिक सेठ बताइये।'

दलालने श्रीमद्‌से उसकी मुलाकात कराई। श्रीमद्‌ने सभी माल बराबर देखा-भाला और उसकी योग्य कीमत चुका दी।

छोटा भाई रुपये लेकर प्रसन्न होता हुआ अपने घर आया। बडा भाई घर आया तब उसने अपने व्यापारकी बात कह सुनाई।

बडे भाईने सोचा कि छोटा भाई सौदा करनेमे ठगा गया तो नही है? श्रीमद्‌ने कीमत बराबर की थी। परन्तु बात यह हुई कि, जिस आदमीका वह माल था उसका उसी दिन पत्र आया था। उसमे उसने लिखा था, अमुक कीमत सिवाय माल मत बेचना। यह कीमत चालू बाजार भावकी अपेक्षा बहुत अधिक थी। अब क्या हो? यह तो बडा नुकसान हुआ। वह एकदम गुस्सेमे बोल उठा, 'अबे, तूने यह क्या किया? मुझे दिवाला ही निकालना पडेगा!'

वह अरब घबराता हुआ श्रीमद्‌के पास आया। उसने गिड-गिडाते हुए अपने व्यापारीका पत्र पढाकर कहा, 'साहिब, कुछ दया करो। नही तो मै गरीब आदमी चौपट हो जाऊँगा।'

श्रीमद्‌ने स्वस्थतासे कहा, 'भाई, तुम्हारा माल यह पडा है। तुम खुशीसे ले जाओ।' यह कहकर उस अरबको

उन्होने माल वापस लौटा दिया और रुपये ले लिए। मानो कुछ सौदा ही नही हुआ है ऐसा मानकर, जो वहुत-सा नफा होनेवाला था, उसे जाने दिया।

यह अरव श्रीमद्को खुदाके पैगम्वर समान मानने लगा।

श्रीमद् राजचन्द्रकी करुणामय जीवनदृष्टिका दूसरा एक प्रसग देखे।

एक वार एक व्यापारीके साथ श्रीमद्ने हीरोका सौदा किया। इसमे ऐसा तय हुआ कि अमुक समयमे निश्चित किये हुए भावसे वह व्यापारी श्रीमद्को अमुक हीरे दे। इस विपयकी चिट्ठी भी व्यापारीने लिख दी थी।

परन्तु हुआ ऐसा कि, मुद्दतके समय उन हीरोकी कीमत खूव वढ गई थी। यदि व्यापारी चिट्ठीके अनुसार श्रीमद्को हीरे दे, तो उस वेचारेको वडा भारी नुकसान सहन करना पडे, अपनी सभी सपत्ति वेचनी पडे। अव क्या हो?'

इधर जिस समय श्रीमद्को हीरोका वाजार-भाव मालूम पडा, उस समय वे शीघ्र ही उस व्यापारीकी दुकान पर जा पहुँचे।

श्रीमद्को अपनी दुकान पर आये देखकर व्यापारी घवराहटमे पड गया। वह गिडगिडाते वोला, 'रायचन्द-भाई, हमलोगोके वीचमे किये हुए सौदाके सम्वन्धमें मै खूव ही चिन्तामे पडा हुआ हूँ। मेरा जो कुछ होना हो, वह भले हो, परन्तु आप विश्वास रखना कि मै आपको आजके वाजार भावसे सौदा चुका दूंगा। आप चिन्ता न करे।'

यह सुनकर राजचन्द्रजी करुणाभरी आवाजमें बोले, 'वाह! भाई, वाह! मैं चिन्ता क्यों न करूँ? तुमको सौदाकी चिन्ता होती हो तो मुझे चिन्ता क्यों न होनी चाहिए? परन्तु हम दोनोंकी चिन्ताका मूल कारण यह चिट्ठी ही है न? यदि इसको फाडकर फेंक दें तो हम दोनोंकी चिन्ता मिट जायगी।'

यों कहकर श्रीमद् राजचन्द्रने सहज भावसे वह दस्तावेज फाड डाला।

तत्पश्चात् श्रीमद् बोले 'भाई, इस चिट्ठीके कारण तुम्हारे हाथपाँव बंधे हुए थे। बाजारभाव बढ जानेसे तुमसे मेरे साठ-सत्तर हजार रुपये लेना निकलते हैं, परन्तु मैं तुम्हारी स्थिति समझ सकता हूँ। इतने अधिक रुपये मैं तुमसे लूं तो तुम्हारी क्या दशा हो? परन्तु राजचन्द्र दूध पी सकता है, खून नहीं।'

वह बेचारा व्यापारी तो आभारवश बनकर फिरस्ता समान श्रीमद्को देखता ही रहा।

यह सब देखकर, श्रीमद्ने श्रावण वदी १९४८के पत्रमे जो उद्गार प्रगट किये है, वे ही उद्गार हमारे अन्तःकरणमेसे श्रीमद् राजचन्द्रजीके लिए व्यक्त हो जाते है।

वह पुरुष नमन करने योग्य है,

कीर्तन करने योग्य है,

परमप्रेमपूर्वक गुणगान करने योग्य है।

पुन पुन विशिष्ट आत्मपरिणामसे ध्यान करने योग्य है,

कि

जिस पुरुषको द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे और भावसे

किसी भी प्रकारकी प्रतिबद्धता नहीं है।

९

११

श्रीमद्‌की अेकान्त चर्या

हम देख चुके है कि श्रीमद् हीरे-मोतीका लाखोका व्यापार करते थे, परन्तु साथ-साथ उनका अभ्यन्तर जीवन भी विकसित होता जाता था। व्यापारमे लाभ हानि भी होती, परन्तु यह सब उनके मनमे क्षणिक थी। उनका सच्चा जीवन तो धर्मको अनिवार्य समझकर उसमे ही ओतप्रोत रहता था। और इस प्रकारकी बढती जाती व्यापारकी उपाधियोमे भी धर्म और तत्त्वज्ञानके अपने प्रिय अभ्यासमे उन्होने खलल नही आने दिया था। उद्योगरत जीवनमे शान्त और स्वस्थ चित्तसे चुपचाप लपने वे ज्ञान-वृद्धि किये जाते थे, तथा हमेशा धर्मग्रन्थोके पठन-मननमे गुथे रहते थे। इस प्रकार श्रीमद्‌ने बाह्य उपाधि और अन्तरंग दशाके मध्यमे अद्‌भुत सुमेल साधा था। इसमें भी श्रीमद् भगवानकी कृपा ही देखते थे।

वे लिखते है 'यदि भगवानकी कृपा न हो तो इस कालमें इस प्रकारकी उपाधिके योगमे मस्तकका धडके ऊपर रहना मुश्किल हो जाय।. हृदयमे प्रभुका नाम रखकर

कठिनतासे हम प्रवर्तन कर सकते है।'

इस तरह ईश्वरार्पितभावमे रहकर समतासे श्रीमद् राजचन्द्र सभी उपाधियोका निष्कामतासे निर्वाह करते थे। परन्तु उद्योग-प्रवृत्तिरत जीवनमेंसे भी वे बीचबीचमे आत्म-चिन्तनके लिए वम्बई छोडकर एकान्त स्थलोमे, वनोमे या पर्वतोमे कितनी ही वार अकेले चले जाते थे। वे अपनी दुकान पर कह जाते कि जवतक मैं स्वय पत्र न लिखूं, वहाँतक कोई मेरे साथ किसी भी प्रकारका पत्र व्यवहार न करे। इस तरह श्रीमद् चरोतर, सौराष्ट्र ईडर आदि प्रदेशोमे एकान्तमे रहे थे। कदाचित् कोई पहचान न जाय अथवा अपने एकान्त स्थलकी खवर न पड जाय इस डरसे वे खूब गुप्त रहनेका हमेशा प्रयास करते, फिर भी वे वारम्वार पहचाने जाते और लोगोकी अधिक सख्या उनका उपदेश, शिक्षावचन श्रवण करनेकी अभिलाषासे उनके पीछे पडती।

श्रीमद्की एकान्त चर्याकी सम्पूर्ण जानकारी नही मिल सकी, परन्तु जो मनुष्य उनके समागममे आये थे उनसे मिली हुई वातो परसे यहाँ सक्षेपमे उनका विचार करते हैं।*

सवत् १९४६ में श्रीमद् खभातमे प्रथम एक सप्ताह रहे थे। तत्पश्चात् थोडे समय खभातसे कुछ दूर रालज नामके गाँवमे स १९४७ मे रहे थे। उस समय कोई न

* विस्तृत जानकारीके लिए ब्र गोवर्धनदासजी कृत 'श्रीमद् राजचन्द्र जीवनकला' देखिये।

जाने इस प्रकार एकान्तमें निवास किया था।

संवत् १९५१मे श्रीमद् अवकाश लेकर सौराष्ट्रमे राणपुर समीपके हडमताला (हडमतिया) नामके छोटे गांवकी ओर रहे थे। वहां वडोदा, बोटाद, सायला और मोरबी आदि अनेक स्थानोंसे धर्मजिज्ञासु आये थे और अनेक जीवोंको सत्समागम, बोध इत्यादिका लाभ मिला था।

पश्चात् हडमतालासे बम्बई जाते समय बीचमें खंभात संवत् १९५१के असोज मासमें श्रीमद् रहे थे। सं १९५२मे श्रीमद् बम्बईसे अढाई मास जितनी निवृत्ति लेकर गुजरातके चरोतर प्रदेशमे गये थे।

वे, अम्बालालभाई, सौभागभाई तथा डुंगरशी गोसालियाके साथ बारह दिन अगासके पासके काविठा गाँवमें रहे थे। बादमें श्रीमद् खंभातके समीपवाले रालज गाँवमे पारसीके बंगलेमें आठ दस दिन रहे थे।

इसके बाद एक बार खंभातके पास वडवा स्थान पर श्री लल्लुजी महाराज और दूसरे पाँच मुनि श्रीमद्के समागमके लिए गये थे। श्रीमद्ने वडवामें एकान्त स्थल पर इन छ मुनियोंको बुलवाया था। वहाँ उन्होंने छ दिन रहकर श्रीमद्के मुखसे परमबोधका ग्रहण किया था। छठ्ठे दिन श्रीमद्ने इन छ मुनियोंको जीवनप्रेरक उपदेश देते हुए कहा था

'आप लोग गृह, कुटुम्ब, परिवार तथा पंचकी साक्षीपूर्वक विवाहित स्त्री—इन सब पर निर्मोही होकर निकले हैं। तो आप सच्चे साधु बनिये, आत्मामें सत्य प्रगट

कीजिये। (१) आत्मा है, (२) आत्मा नित्य है, (३) आत्मा कर्ता है, (४) आत्मा भोक्ता है, (५) मोक्ष है और (६) मोक्षका उपाय है, इन छ पदोका हे मुनियो! आप लोग बारम्बार विचार करना।

'वडवामे जो इतने समय तक रुकना हुआ है वह आपके ही लिए हुआ है। आप लोगोको (हमारी) इस वेशमे जो प्रतीति होगी वह यथार्थ सत्य होगी। क्योकि आप लोगोका त्यागीका वेश है और हमारे पास वैसा कुछ दिखाई तो भी, आत्मपरिणति पर लक्ष्य करनेसे प्रतीतिका कारण होगा।'

श्रीमद् काविठामे स्वय अकेले ही वहाँके खेतोमे विचरते थे। किसी प्रसग पर जन-समुदाय एकत्रित होता तो वे सहज बोधरूपसे करुणा करते थे। रालजमे भी उसी प्रकारके बोधके प्रसग बने थे। वडवामे तो खभातके पहचानवाले अनेक धर्मजिज्ञासु आनेसे प्रतिदिन बोधका प्रवाह बहता था। आणद, काविठा, रालज और वडवाके उपदेशसे स्मृतिमे रहे हुए विचारोको, बहुत करके श्रीमद्के ही शब्दोमे, प्रभावशाली स्मरणशक्तिवाले अम्बालालभाईने उतार लिया था। ये विचार 'श्रीमद् राजचन्द्र' बृहद् ग्रन्थमे 'उपदेश छाया'के नामसे प्रकाशित हुए है।

श्रीमद् आणदसे नडियाद स १९५२मे आये थे। उनकी सेवा भक्तिमे अम्बालालभाई सभी गाँवोमे साथ ही रहते थे। इसी नडियाद स्थान पर शरद्पूर्णिमाके दूसरे दिन रातके समय एक ही बैठकमे श्रीमद् राजचन्द्रने 'आत्म-

सिद्धिशास्त्र'को पद्यरूपमें रचा था।*

श्रीमद् नडियादमें स १९५२की दिवालीके बाद भी कुछ समय रहे थे। इसके बाद ववाणिया, मोरबी, सायला तरफ वैशाख मास तक रहे थे। और इसी माममे ईडर होकर बम्बई चले गये थे।

श्रीमद्‌का मोरबीमे तीन महीने स १९५४मे चैत्र महीने तक रहना हुआ था। उस अवसर पर हुए व्याख्यानोको एक मुमुक्षुने लेख रूपमें लिख लिया था। ये लेख 'श्रीमद् राजचन्द्र' बृहद् ग्रन्थमे 'व्याख्यानसार' नामसे प्रकाशित हुए है।

श्रावण मासके प्रारभमे श्रीमद् पेटलाद होकर काविठा गये थे। वहाँ एक मास नौ दिन तक निवृत्तिमे रहे। अंबालालभाई उनकी परिचर्यामे साथ थे। मुनिश्री लल्लुजी आदिका चौमासा वसोमे था। और देवकरणजी महाराज आदिका चौमासा खेडामे था। इससे श्रीमद् काविठासे नडियाद होकर वसो भी गये थे। श्री लल्लुजीको श्रीमद्‌ने पूछा 'कहिये, मुनि, यहाँ हम कितने दिन रहे?'

श्री लल्लुजी महाराजकी इच्छा श्रीमद्‌के साथ अधिक समय तक समागम करनेकी थी। इससे उन्होने जवाब दिया 'एक मास यहाँ रहे तो अच्छा।'

श्रीमद् मौन रहे।

श्री लल्लुजी महाराज वसो गाँवमे बडे-बडे लोगोके

* 'आत्मसिद्धिशास्त्र'की विशेष जानकारीके लिए प्रकरण १४वाँ देखिये।

यहाँ आहारपानी लेने जाते, उस समय वे सबसे कहते कि, 'बम्बईसे एक बडे महात्मा आये है। वे बडे भारी विद्वान है। यदि तुम लोग उनका व्याख्यान सुनने आओगे तो बहुत लाभ होगा।'

इससे अनेक मनुष्य श्रीमद्के पास आने लगे। यह देखकर श्रीमद्ने श्री लल्लुजीसे कहा, 'जिस समय सब यहाँ आये उस समय तुम मुनियोको नही आना चाहिए।'

यह सुनकर श्री लल्लुजीको अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ कि मैने इनसे एक मासके समागमकी याचना की थी। परन्तु इस प्रकारसे अन्तराय आ गया।

श्रीमद् वनमे बाहर जाते तब समस्त मुनियोको ज्ञान-वार्ताका लाभ मिलता। वसोसे एक मील दूरकी गोचर भूमिमे बैठकर श्रीमद् ज्ञानवार्ता आदि करते थे।

एक मास पूर्ण हुआ, उस समय मुनियोको जाग्रत रहनेकी सूचना करते हुए श्रीमद् राजचन्द्रने कहा

हे मुनियो! इस समय ज्ञानी पुरुषके प्रत्यक्ष समागममे आप लोग सब प्रमाद करते हैं। परन्तु जब ज्ञानी पुरुष न होगा तब पश्चात्ताप करेगे। पाँचसौ पाँचसौ कोस तक पर्यटन करने पर भी ज्ञानी पुरुषका समागम नही होगा।'

श्रीमद् राजचन्द्रने श्री लल्लुजीको बताया

'कोई मुमुक्षु भाई अथवा बहिन यदि तुमसे आत्मार्थ साधन माँगे तो उसे इस प्रकार आत्महितके साधन बताना।

'१ सात व्यसनोके त्यागका नियम कराना।

'२ हरी वनस्पतिका त्याग कराना।

'३ कन्दमूलका त्याग कराना।

'४ अभक्ष्य पदार्थोंका त्याग कराना।

'५ रात्रि भोजनका त्याग कराना।

'६ पाँच मालायें जप करनेका नियम कराना।

'७ स्मरण बताना।

'८ क्षमापनाका पाठ और बीस दोहोंका नित्य पठन-मनन करनेके लिए जताना।

'९ सत्समागम और सत्शास्त्रके सेवन करनेको कहना।'

वसोमें भाई मोतीलाल नामके नडियादके भावसार श्रीमद्की सेवामें रहते थे। उनके द्वारा श्रीमद्ने नडियादके आसपास रहने योग्य किसी एकान्त स्थलकी खोज कराई थी। नडियाद और उत्तरसंडाके बीचमें एक बंगला मिल सकनेकी व्यवस्था हुई। इससे श्रीमद् अंबालालभाई, लहराभाई और मोतीलालभाईके साथ उत्तरसंडाके बंगलेमें पधारे। वहाँ पर दूसरोंके आनेकी मनाई थी।

पन्द्रह दिन तक अम्बालाल सेवामें रहे और सभी व्यवस्था स्वयं कर लेते थे।

परन्तु श्रीमद्की बिलकुल एकान्त निवृत्तिकी वृत्ति होनेसे अम्बालालभाई जो रसोईका सामान, गद्दे, बरतन आदि लाये थे उन सबको ले जानेकी आज्ञा की, एक मात्र मोतीलालभाईको सेवामें रखा।

अम्बालालभाई बंगला खाली करके सब सामान बैल-गाडीमें भरकर नडियाद ले गये। मोतीलालभाईने अपने

यहाँ आहारपानी लेने जाते, उस समय वे सबसे कहते कि, 'बम्बईसे एक बडे महात्मा आये है। वे बडे भारी विद्वान है। यदि तुम लोग उनका व्याख्यान सुनने आओगे तो बहुत लाभ होगा।'

इससे अनेक मनुष्य श्रीमद्के पास आने लगे। यह देखकर श्रीमद्ने श्री लल्लुजीसे कहा, 'जिस समय सब यहाँ आये उस समय तुम मुनियोको नही आना चाहिए।'

यह सुनकर श्री लल्लुजीको अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ कि मैने इनसे एक मासके समागमकी याचना की थी। परन्तु इस प्रकारसे अन्तराय आ गया।

श्रीमद् वनमे बाहर जाते तब समस्त मुनियोको ज्ञान-वार्ताका लाभ मिलता। वसोसे एक मील दूरकी गोचर भूमिमे बैठकर श्रीमद् ज्ञानवार्ता आदि करते थे।

एक मास पूर्ण हुआ, उस समय मुनियोको जाग्रत रहनेकी सूचना करते हुए श्रीमद् राजचन्द्रने कहा

हे मुनियो! इस समय ज्ञानी पुरुषके प्रत्यक्ष समागममे आप लोग सब प्रमाद करते है। परन्तु जब ज्ञानी पुरुष न होगा तब पश्चात्ताप करेगे। पाँचसौ पाँचसौ कोस तक पर्यटन करने पर भी ज्ञानी पुरुषका समागम नही होगा।'

श्रीमद् राजचन्द्रने श्री लल्लुजीको बताया :

'कोई मुमुक्षु भाई अथवा बहिन यदि तुमसे आत्मार्थ साधन माँगे तो उसे इस प्रकार आत्महितके साधन बताना।

'१ सात व्यसनोके त्यागका नियम कराना।

'२ हरी वनस्पतिका त्याग कराना।

'३ कन्दमूलका त्याग कराना।

'४ अभक्ष्य पदार्थोका त्याग कराना।

'५ रात्रि भोजनका त्याग कराना।

'६ पाच मालाये जप करनेका नियम कराना।

'७ स्मरण बताना।

'८ क्षमापनाका पाठ और वीस दोहोका नित्य पठन-मनन करनेके लिए जताना।

'९ सत्समागम और सत्‌शास्त्रके सेवन करनेको कहना।'

वसोमे भाई मोतीलाल नामके नडियादके भावसार श्रीमद्‌की सेवामे रहते थे। उनके द्वारा श्रीमद्‌ने नडियादके आसपास रहने योग्य किसी एकान्त स्थलकी खोज कराई थी। नडियाद और उत्तरसडाके बीचमे एक बगला मिल सकनेकी व्यवस्था हुई। इससे श्रीमद् अवालालभाई, लहराभाई और मोतीलालभाईके साथ उत्तरसडाके बगलेमे पधारे। वहाँ पर दूसरोके आनेकी मनाई थी।

पन्द्रह दिन तक अम्बालाल सेवामे रहे और सभी व्यवस्था स्वय कर लेते थे।

परन्तु श्रीमद्‌की बिलकुल एकान्त निवृत्तिकी वृत्ति होनेसे अम्बालालभाई जो रसोईका सामान, गद्दे, बरतन आदि लाये थे उन सबको ले जानेकी आज्ञा की, एक मात्र मोतीलालभाईको सेवामे रखा।

अम्बालालभाई बगला खाली करके सब सामान बैल-गाडीमे भरकर नडियाद ले गये। मोतीलालभाईने अपने

लिए एक गद्दा रखाया था। उस गद्दे और पानीके लोटेके सिवाय वहाँ दूसरा कुछ भी नही रखा था।

श्री अम्वालालभाई मोतीलालभाईको सूचना दे गये कि, 'रातको दो-तीन वार श्रीमद्‌जीकी देखभाल करते रहना।'

श्रीमद् वनमे अकेले दूर तक घूमने चले गये और रातके साढे-दस वजे वापस आये। मोतीलालभाईने वरामदेमे जो झूला था उस पर अपने लिए रखा हुआ गद्दा विछा दिया था। उसे देखकर श्रीमद्‌ने पूछा · 'यह गद्दा कहाँसे लाये?'

मोतीलालभाईने कहा 'मैने अपने लिए रखाया था, उसे विछाया है।'

श्रीमद्‌ने कहा 'तुम इस गद्देको ले लो।'

मोतीलालभाईने अतिशय आग्रह किया इससे श्रीमद्‌ने उस गद्देको रहने दिया।

थोडी देर वाद मोतीलालभाई देखने आये तो गद्दा नीचे पडा था, और मच्छर विशेष मालूम पडे, इससे वे श्रीमद्‌जीको एक धोतीसे ढाँककर वादमे अन्दर जाकर सो गये।

मोतीलालभाई रातमे उन्हे दूसरी वार देखने आये, उस समय धोती नीचे पडी हुई थी और श्रीमद् गाथाये वोला करते थे। इससे पुन ओढाकर वे अन्दर जाकर सो गये।

इस प्रकार शरीरकी सभाल किये विना श्रीमद् रातको भी धर्मध्यानमे लीन रहते थे।

दूसरे दिन श्रीमद् जगलमे गये थे और वहाँसे दो घण्टे वाद वापस हुए थे।

थोडी देरके बाद मोतीलालभाईने श्रीमद्से पूछा, 'खाने-पीनेके लिए क्या करे?'

श्रीमद्ने कहा 'तुम नडियाद जाओ। तुम्हारी स्त्रीको स्नान कराकर उससे रोटी और शाक वनवाना। लोहेका वरतन उपयोगमे न ले तथा शाक आदिमे तेल और पानी न डाले यह जता देना।'

मोतीलालभाई नडियाद गये और की हुई सूचनाके अनुसार रोटी तथा शाक तैयार कराया। अम्वालालभाई नडियादमे ही थे। उन्होने चूरमा आदि रसोई तैयार कराके रखी थी। परन्तु जो आज्ञा दी थी उसके अनुसार दूध और घीमे वनी हुई रसोई लेकर वे वगले पर आये।

मोतीलालभाई इस प्रकार प्रतिदिन नडियाद भोजन करके आते और श्रीमद्जीके लिए शुद्ध आहार साथमे लेते आते थे। मोतीलालभाई भी एक ही वार भोजन करते, जिससे प्रमाद कम हो।

शामके समय श्रीमद् वाहर अकेले दूर तक घूमने जाते रातको लगभग दस वजे वापस आते। किसी समय मोतीलालभाई भी साथ जाते थे। एक दिन चलते-चलते श्रीमद् बोले

'तुम क्यो प्रमादमे पडे हुए हो? वर्तमानमे मार्ग ऐसे काँटोसे भरा हुआ है, कि उन काँटोको दूर करते हुए हमे जो श्रम उठाना पडा है, उसे हमारा आत्मा ही जानता है। यदि वर्तमानमे ज्ञानीपुरुष विद्यमान होता तो हम उसके पीछे-पीछे चले जाते, परन्तु तुमको प्रत्यक्ष ज्ञानीका

योग है। फिर भी ऐसे योगसे जाग्रत नही होते। प्रमादको दूर करो, जाग्रत होओ। हम जिस समय श्री वीर प्रभुके अन्तिम शिष्य थे, उस समयमे लघुशका जितना प्रमाद करनेसे हमे इतने भव करने पडे है। परन्तु जीवोको प्रत्यक्ष ज्ञानीपुरुषका पहचान होना अत्यन्त दुष्कर है।'

एक दिन मोतीलालभाईने अपनी पत्नीको सूचना की कि, 'फास्ट गाडीके जानेके वाद तुम वगलेकी ओर खाना लेकर आना और तीन चार खेत दूर रहना। वहाँ आकर मै ले जाऊँगा।' परन्तु वह वाई तो वगलेके समीप आ पहुँची। इससे मोतीलालभाईने उसे खूव उलाहना दिया। क्योकि श्रीमद्से इस व्यवस्थाके सम्बन्धमे कुछ नही कहा गया था।

यह वात श्रीमद्के जाननेमे आई, इससे उन्होने मोतीलालभाईसे कहा 'तुम क्यो गुस्से हुए? अपना स्वामीपन दिखाते हो? नही, नही, ऐसा कभी न होना चाहिए। उलटा तुम्हे उस वाईका उपकार मानना चाहिए। यह वाई आठ भव करके मोक्ष पानेवाली है। उस वाईको यहाँ आने दो।'

मोतीलालभाईने तुरन्त जाकर अपनी स्त्रीसे कहा यदि तुम्हे दर्शन करनेकी इच्छा हो तो आओ। तुमको आनेकी आज्ञा मिली है।

इससे वह दर्शन करने आई।

श्रीमद्ने प्रमाद छोडनेके लिए उपदेश देते हुए कहा 'प्रमादसे जाग्रत होओ। पुरुषार्थ रहित होकर इस प्रकार

शिथिलतासे क्यो प्रवृत्ति हो रही है? ऐसा योग मिलना महाविकट है। महापुण्यसे ऐसा योग मिला है, उसे व्यर्थ न गुमाना चाहिए। जाग्रत होओ, जाग्रत होओ। किसी भी प्रकारसे हमारा जो कहना है वह केवल यही कि जाग्रत रहो।'

इस निवासके समय श्रीमद् दो रुपयेभर आटेकी रोटी और थोडा शाक तथा थोडा-सा दूध सारे दिनमे लेते थे। इसके सिवाय वे दूसरी वार दूध भी न लेते थे। एक पचा वीचमेसे पहनते और उसके दोनो छोर आमने-सामने कन्धे पर डालते। एक समय श्रीमद्ने कहा था कि,' यह शरीर हमारे साथ लडाई करता है, परन्तु हम उसे सफल नही होने देते।'

श्रीमद् उत्तरसडासे मोतीलालभाईके साथ तागेमे वैठकर खेडा गये। वहाँ गॉवके वाहर वगलेमे रहे थे। श्री अम्वालालभाईने खेडा आकर दो दिन गॉवमे निवास किया था और वे दर्शन करनेकी आज्ञा प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करते थे। श्रीमद्की आज्ञा मिलने पर उन्हे उनके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

श्रीमद् इस एकान्त-चर्याके समयमे ध्यानस्थ अवस्थामे विशेष रहते। घूमने जाते समय भी आत्मचिन्तवन या ध्यानमे इतने एकाग्र रहते कि उनको अपने शरीरका ध्यान भी नही रहता था। एक दिन घूमने जाते समय मोतीलालभाईने अपने नये जूते श्रीमद्के सामने रख दिये। श्रीमद्ने उन्हे पहर लिये। कोस डेढ कोस चलनेके वाद

श्रीमद् एक जगह पर बैठे। वहा मोतीलालभाईकी दृष्टि उनके पाँव पर गई तो देखा कि नये जूतोकी रगडमे उनके पाँवकी चमडी छिल गई थी और उसमेसे रुधिर वह रहा था। श्रीमद्ने उसकी ओर जरा भी ध्यान नही दिया था। मोतीलालभाईने जूतोको निकालकर, चमडीको धीरेसे साफ कर, लगी हुई धूल दूर की। इसके वाद मोतीलालभाईने वे जूते उठा लिए।

श्री देवकरणजी आदि महाराज इस समय खेडामे थे। उन्हे तेईस दिन तक श्रीमद्के समागमका लाभ मिला। श्रीमद्की उस स्थितिका वर्णन श्री देवकरणजीने श्री लल्लुजी महाराज पर लिखे हुए पत्रमे निम्न प्रकारसे किया है

'(श्रीमद्के) सर्वोपरि उपदेशमें यही आता है कि, शरीरको कृश करके, अन्तरग तत्त्वकी खोज करके इस कलेवरको फेंक कर चले जाओ। विषयकषायरूपी चोरोको अन्दरसे वाहर निकालकर, जलाकर, भस्मीभूतकर शान्त हो जाओ, छूट जाओ, समा जाओ, शान्ति, शान्ति शान्ति हो। जल्दीसे जल्दी ऐसा अवश्य करो।

इस समागममे श्री देवकरणको श्रीमद्के प्रति पूर्ण आस्था हुई। उनके अपने आग्रह दूर होकर श्रीमद् पर उनको अच्छी श्रद्धा उत्पन्न हुई। उन्होंने ऊपरके पत्रमे ही उल्लासपूर्ण लिखा है

असद्गुरुकी भ्रान्ति गई, सद्गुरुकी परिपूर्ण प्रतीति हुई, अत्यन्त निश्चय हुआ, उस समय शरीर पुलकित हुआ। सत्पुरुषकी प्रतीतिका दृढ निश्चय रोम-रोममे उतर गया,

आज्ञावश वृत्ति हुई . ।

'आपने जो कहा, वैसा ही हुआ, फल पका, रस चखा और शान्त हुए. ऐसी वृत्ति रहती है कि मानो सत्पुरुषके चरणोमे मोक्ष प्रत्यक्ष नजरमे आता है। परमकृपालुदेवने पूर्ण कृपा की है हमारा एक आहारका समय वेकार जाता है। वाकी तो सद्गुरु-सेवामे काल व्यतीत होता है। यही योग्य है। वही वाक्य जव हम उनके मुखसे श्रवण करते है तव नवीन लगता है।. यही लिखना है कि, हम लोग हर्पसहित श्रवण करते रहते हैं। ज्ञानी सद्गुरुके उपदिष्ट वचनोको सुनकर यदि एक वचन भी पूर्ण प्रेमसे करे, तो वह आराधना ही मोक्ष है, मोक्ष वताती है।'

चौमासा पूर्ण होते ही सभी मुनि वसो और खेडासे नडियाद आये, और थोडे समय तक श्रीमद्के समागममे प्राप्त हुए अनुभवका आदान-प्रदान कर आत्मानन्दमे मग्न रहने लगे।

खेडासे श्रीमद् महेमदावाद स्टेशनसे वम्वई चले गये। वहाँ एक मास रहकर वे निवृत्तिके लिए ईडर जानेके लिए निकले। नडियाद स्टेशन पर मोतीलालभाई मिले। मुनियोके सम्वन्धमे पूछनेपर मोतीलालभाईने कहा कि सभी मुनि यही है। मै निवृत्तिके लिए ईडर जा रहा हूँ, यह समाचार श्रीमद्ने मुनियोको भिजवाया।

ईडरमे श्रीमद्का ककियासमुर डॉ प्राणजीवनदास जगजीवनदास महेता ईडर स्टेटके चीफ मेडिकल ओफिसर थे। सवत् १९५५मे श्रीमद् उनके यहाँ रहे थे। उन

समय गाँवमे प्राय भोजन करने जितना काल व्यतीत करते और अधिक समय ईडरके पहाड और जगलोमे बिताते थे।

श्रीमद्ने डॉ प्राणजीवनदाससे खास मनाई की थी, इस लिए जन-समाजमे उनके आने सम्बन्धी कोई समाचार प्रगट न हुए थे। ईडरके उस समयके महाराजा साहिबने श्रीमद्से दो बार मुलाकात ली थी तब ज्ञानवार्ता हुई थी। उसका सार 'देशी राज्य' नामकी मासिक पत्रिकामे ई सन् १९२८मे प्रगट हुआ था।

इस वार्तालापमे महाराजा साहिबने जो एक प्रश्न पूछा था उसका उत्तर यहाँ लिखने लायक है। क्योकि इसमे श्रीमद्ने अपने पूर्वभवका उल्लेख किया है।

श्रीमद् बोले 'इस प्रदेशमे ऐतिहासिक प्राचीन स्थानोके देखनेसे, वे मुझे मूलकी — उसमे रहनेवालोकी पूर्ण विजयी स्थिति और उनकी आर्थिक, नैतिक और आध्यात्मिक उन्नतिका प्रमाण देते है। देखिये आपका ईडरका गढ, उसके उपरके जैन मन्दिर, रूखी रानीकी मजिल, रणमलकी चौकी, महात्माओकी गुफाये, औषधि–वनस्पति, ये सब अलौकिक विचार कराते है।

'श्री जिन तीर्थकरोकी अन्तिम चौबीसीके पहले आदिनाथ – ऋषभदेव और अन्तिम महावीर स्वामीका नाम आपने सुना होगा। जैन शासनका पूर्णरूपसे प्रकाश करनेवाले इन अन्तिम तीर्थकर और उनके शिष्य गौतमादि गणधरोके विचरनेका भास होता है। उनके शिष्य निर्वाणको प्राप्त

हुए। उनमेंसे बाकी रहे हुए एक शिष्यका इस कालमें जन्म हुआ है। उससे अनेक जीवोंका कल्याण होना संभवित है।'

नडियाद स्टेशन पर श्रीमद्के साथ मोतीलालभाईकी जो बात हुई थी वह उन्होने मुनियोंसे कही। इससे कुछ मुनि खंभातकी ओर और कुछ अहमदाबादकी ओर विहार करनेका विचार करते थे उसे बन्द रख कर, सभीको श्रीमद्के समागमकी भावना होनेसे सबने ईडरकी ओर विहार करनेका विचार किया।

मुनि श्री लल्लुजी, श्री मोहनलालजी और श्री नरसिंहरख ये तीन मुनि शीघ्रतासे विहार कर जल्दी ईडर पहुँच गये। मुनिश्री देवकरणजी, श्री वेलशीरख, श्री लक्ष्मीचन्दजी और श्री चतुरलालजी ये चार मुनि पीछेसे धीरे धीरे आने लगे।

यहाँ ईडरके पहाडके ऊपर श्रीमद्ने इन सात मुनियोंको चार दिन तक ज्ञानवार्ता और सद्बोध आदिका लाभ दिया।

यों तो ईडर निवासके समय श्रीमद्को बिलकुल एकान्तकी आवश्यकता थी, इस कारण उन्हें ऐसे प्रसंगकी इच्छा नहीं थी। फिर भी जब स्वयं पहाड पर एकान्तमें घूमने जायें उस समय एक आम्र वृक्षके नीचे मुनियोंको मिलनेकी उन्होंने व्यवस्था की थी।

इसके अनुसार दूसरे दिन मुनि आम्र वृक्षके नीचे जाकर श्रीमद्के आनेकी प्रतीक्षा करने लगे। इतनेमें दूर दूरसे मागधीकी गाथाओंके उच्चारणकी आवाज सुनाई पडने लगी।

श्रीमद् गाथाओंकी धून लगाते हुए वहाँ आ रहे थे। वे निम्न लिखित गाथाओंका रटन कर रहे थे। यह रटन एकाद घण्टे चलती रही।

'मा मुज्जह, मा रज्जह, मा दुस्सह इट्ठणिट्ठ अत्थेसु ।
थिरमिच्छह जइ चित्त विचित्त झाणप्पसिद्धीए ॥ ४८ ॥

ज किंचिवि चिंततो णिरीहवित्ती हवे जदा साहू ।
लद्धूणय एयत्त तदाहु त तस्स णिच्चय झाण ॥ ५५ ॥

मा चिट्ठह, मा जपह, मा चिंतह किंवि जेण होई थिरो ।
अप्पा अप्पमि रओ, इणमेव पर हवे ज्झाण ॥ ५६ ॥

—द्रव्यसग्रह

भावार्थ

हे भव्य जनो! यदि तुम अनेक प्रकारके ध्यानकी सिद्धिके लिए चित्तको स्थिर करना चाहते हो तो इष्ट और अनिष्ट विषयोमे मोह न करो, राग न करो और द्वेष न करो। (४८)

किसी भी पदार्थका ध्येय रूपसे चिन्तवन करता हुआ साधु जव स्वरुपस्थितिरूप एकाग्रता प्राप्त करके नि स्पृह वृत्तिको धारण करनेवाला होता है, उस समय उसको भगवानने निश्चय ध्यान कहा है। (५५)

हे जीवो! तुम कायसे कुछ भी चेष्टा न करो, वचनसे किसी भी प्रकारका उच्चार न करो, और मनसे भी किसी भी प्रकारका विचार न करो। जिससे तुम्हारा आत्मा आत्मामे तल्लीन हो, क्योकि जो आत्मामे लीन होना है वही परम ध्यान है। (५६)

इन गाथाओकी धुन पूरी होने पर लगभग उतने ही समय श्रीमद् शान्त स्थिरतासे मन, वचन और काय तीनो योगोको स्थिर कर ध्यानमे लीन हो गये, समाधिस्थ हो गये।

उस समयकी वीतरागता, आत्मस्थिरता और दिव्य दर्शनीय स्वरूपस्थ अवस्था देखकर मुनियोने अपूर्व शान्तिका अनुभव किया।

ध्यान पूर्ण होने पर 'विचार करना', मुनियोसे इतना ही कहकर श्रीमद् वहाँसे उठकर चले गये।

तीसरे दिन मुनि नियत समय पर उसी आम्र वृक्षके नीचे आ पहुँचे। मुनि श्री देवकरणका शरीर कृश होनेसे कप रहा था। शीतकाल होनेसे अत्यन्त ठड थी। इससे श्री लक्ष्मीचन्दजी मुनिने उन्हे वस्त्र ओढाया।

यह देखकर श्रीमद्ने कहा 'ठड लगती है?' और वादमे बोले 'ठडको उडाना है?'

यो कहकर श्रीमद् खडे होकर चलने लगे। सभी मुनि पीछे-पीछे चलने लगे।

श्रीमद्जी अत्यन्त वेगसे काटे, ककर, झाडी और नुकीले पत्थरोमे होकर शरीरकी परवाह किये विना आत्मवेगमे चलते थे। मुनि उनके चरणोका अवलम्वन ग्रहण कर चलते जाते थे।

इतनेमे एक विशाल शिला मिली। उसके ऊपर श्रीमद् पूर्वाभिमुख होकर विराजमान हुए। मुनि लोग इनके सन्मुख वैठे। वादमे श्रीमद्ने 'वृहद् द्रव्यसग्रह'

पढना शुरू किया। इस शिलाको उन्होने 'पुढवी' शिला कहा था।

पॉचवे दिन श्रीमद् सभी मुनियोको ऊँचे पहाड पर ले गये और वहाँ एक विशाल शिला पर विराजमान हुए तथा बोले, 'यहॉ समीपमे एक व्याघ्र रहता है, परन्तु तुम लोग निर्भय रहना। देखो, यह सिद्धशिला है।' यो कह कर उपदेश किया।

इस प्रकार प्रतिदिन श्रीमद् आत्मस्थितिके अनुसार चलते थे। वे किसी समय पठन-पाठन करते अथवा धार्मिक विवेचन करते। कोई बार तो हिसक पशुओके निवासस्थानके समीप जाकर बैठते थे।

इस समयमे श्रीमद्ने समस्त 'द्रव्यसग्रह' ग्रन्थ मुनियोको पढकर सुनाया था और इस पर वे मननीय प्रवचन भी करते जाते थे।

इस अपूर्व समागमका लाभ मिलनेसे मुनि श्री देवकरणजी आनन्दित होकर बोल उठे थे—'आजतक परम गुरुका जो जो समागम हुआ, उसमे यह समागम सर्वोपरि हुआ है। जिस प्रकार देवालयके शिखर पर कलश चढाया जाता है, वैसे ही यह सत्सग परम कल्याणकारी है, सर्वोपरि समझा जाता है।'

इस समय श्रीमद् करीब तीन महीने ईडर रहे थे। अनेक बार गुफाओमे रहते, तथा जगलोमे विचरते थे। ईडरनिवासी एक भाईने श्री लल्लुजी महाराजसे कहा था कि, यहॉके पहाडके ऊपरकी एक प्राचीन गुफामे इससे पहले

एकवार श्रीमद् डेढ मास तक एकान्तमे रहे थे।

ईडरसे ववाणियाकी ओर श्रीमद् तीन महीनेके लिए गये थे और वापस थोडे समयके लिए ईडर आकर वम्बई चले गये थे।

धरमपुरके जगलोमे भी श्रीमद् कुछ समय सवत् १९५६मे निवृत्तिके लिए रहे थे। वहाँसे वे ववाणिया गये और मोरवीमे पर्यूषण पर्व तक दो मास रहे थे।

,

१२

श्रीमद्के समागममे

दीपक प्रकाशने लगता है कि उसकी ओर जैसे इधर-उधरसे पतगे आकर्षित होने लगते है, इसी प्रकार श्रीमद् राजचन्द्रमे यथार्थ धर्म स्थितिका उदय होनेसे ही उनकी ओर गृहस्थ, साधु, सभी वर्गके मुमुक्षु, और जिज्ञासु मनुष्य आकर्षित होने लगे। स्वय जव तक सम्पूर्णता प्राप्त न करे वहाँ तक उनकी वाहर (प्रगटमे) न आनेकी तीव्र इच्छा होते हुए भी, उनका प्रवल पुरुषार्थ और उज्ज्वल ज्ञान-प्रकाश छिपानेसे छिपा नही रहा। परिणाममे श्रीमद्का भक्त मडल वढता ही गया।

किसी भी व्यक्तिकी सत्य महत्ताकी कसौटी करनेके अनेक साधनोमेसे एक मुख्य साधन, इस व्यक्तिने आस-पासके मनुष्यो पर कितना व्यापक और चिरस्थायी प्रभाव डाला है, यह कितनोके जीवनमे एकमेक वन गया है, कितना प्रेरणारूप हुआ है, यह माना जाता है। इस कारण श्रीमद् राजचन्द्रका वास्तविक परिचय प्राप्त करनेकी इच्छावाले जिज्ञासुको श्रीमद्के परिचयमे आये हुए मनुष्य उनके प्रति

कैसा भक्तिभाव रखते थे, उनके विषयमे क्या मानते थे, उनको कौनसे भावसे देखते थे तथा उनके जीवन पर श्रीमद् राजचन्द्रका कैसा प्रभाव पडा था ये सव अवश्य जानना चाहिए।

यहाँ हम श्रीमद्के सीधे प्रत्यक्ष समागममे आनेवाले व्यक्तियोमेसे, जिनका विशेष वृत्तान्त आज तक मिल सका है, उनका सक्षिप्त परिचय देते है

१

श्री धारशीभाई कुशलचन्द सघवी

श्री धारशीभाई श्रीमद्के समागममे किस प्रकारसे आये, इस विषयमे हम आगे विचार कर चुके है।* राजकोटमे यह परिचय गाढ वना और फिर धारशीभाई श्रीमद्से मोरवीमे अनेक वार मिलते। उन दोनोके वीचमे पत्रव्यवहार भी होता रहता था। श्रीमद् द्वारा स १९४८मे वम्वईसे लिखा हुआ पत्र 'मनके कारण यह सब है' विचार करने योग्य है। उसमे श्रीमद् लिखते है 'महात्माकी देह दो कारणोसे विद्यमान रहती है। प्रारब्ध कर्म भोगनेके लिए और जीवोके कल्याणके लिए, तथापि इन दोनोमे वह उदास-रूपसे उदयमे आये हुए आचरणमे प्रवृत्ति करता है, ऐसा हम जानते है।'

श्रीमद्ने 'पचास्तिकाय'का गुजरातीमे अनुवाद किया था। उसे धारशीभाईके अवगाहनके लिए भेजते हुए साथके पत्रमे श्रीमद् लिखते है

* देखिये प्रकरण ५

'हे आर्य! द्रव्यानुयोगका फल समस्त भावोसे विराम पाने रूप सयम है। इस पुरुषके उस वचनको तू अपने अन्त करणमे किसी दिन भी शिथिल न करना। अधिक क्या? समाधिका रहस्य यही है। समस्त दु खोसे मुक्त होनेका अनन्य उपाय यही है।'

इस प्रकार कितने ही पत्र श्रीमद्ने धारशीभाईको लिखे थे। वे 'श्रीमद् राजचन्द्र' ग्रन्थमे प्रकाशित हुए है।

स १९५७की चैत्र सुदी तेरससे लेकर चैत्र वदी चौथ तक श्री धारसीभाई श्रीमद्की अन्तिम वीमारीमे राजकोट श्रीमद्के पास उपस्थित थे।

चैत्र वदी ४की शामको उन्हे मोरवी जाना था, इससे उन्होने श्रीमद्मे आज्ञा माँगी। उस समय श्रीमद्ने वारम्वार कहा—'जल्दी है?'

धारसीभाईने कहा—'दो चार दिनमे वापस आ जाऊँगा।'

अन्तमे श्रीमद्ने कहा—'धारशीभाई! वहुत कहना है। अवमर नही है। हमारे समागममे तीन पुरुषोको स्वरूपकी प्राप्ति हुई है। सोभागभाई, अम्वालाल तथा मुनि श्री लल्लुजी।'

दूसरे दिन श्रीमद्के देहावसानके समाचारको तारसे जानकर उन्हे अत्यन्त खेद हुआ। उन्हे श्रीमद्का वियोग विशेप रूपसे वेदनमे आया था।

वादमे धर्मजिज्ञासाकी वृद्धि होनेपर वे सवत् १९६१मे धधुकामे श्री लल्लुजी स्वामीमे मिले। उन्होने श्रीमद् द्वारा कही हुई अनेक वाते मुनिको विदित की और उनसे

विनयभावपूर्वक मन्त्रकी आज्ञा प्राप्त की।

जीवनके अन्तिम वर्षमे श्री धारशीभाई सत्सग करनेके लिए खभात आकर रहे थे। उस समय श्री लल्लुजी स्वामीके सहयोगी श्री मोहनलालजी मुनिका समागम उन्हे दो महीने रहा था। और नार निवासी भाईश्री रणछोडभाई भी अन्तिम आठ दिन पासमे रहे थे। वे दोनो धारशीभाईके समाधि–मरणके पुरुषार्थकी वारम्वार प्रशसा करते थे। करीव पचहत्तर वर्षकी आयुमे सवत् १९७५के मार्गशीर्ष मासमे श्री धारशीभाईने खभातमे समाधिपूर्वक इस क्षणिक शरीरका त्याग किया था।

२

श्री जूठाभाई उजमशीभाई

सवत् १९४४मे श्रीमद् राजचन्द्र 'मोक्षमाला' छपवानेके लिए अहमदावाद आये थे। इस विपयमे सलाह तथा सहायताके लिए वे अपने एक स्नेहीका अनुरोध पत्र सेठ जेशगभाई उजमशीभाईके ऊपर लाये थे। तदनुसार सेठ जेशगभाईने श्रीमद्की सहायता की थी। इस समय श्रीमद्का अहमदावादमे वरावर रुकना हुआ था।

सेठ जेशगभाईका कभी-कभी व्यवसायके कारणसे वाहरगॉव जाना होता था इससे अपनी अनुपस्थितिमे उन्होने अपने छोटेभाई जूठाभाईको श्रीमद्की सेवा-टहलमे रखा था।

इस प्रकारसे श्री जूठाभाई श्रीमद्के परिचयमे आये। श्रीमद् अनेक वार जूठाभाईकी दुकान पर जाते तथा दूसरेके मनकी वाते कहकर वतानेका प्रयोग करते। इससे उन्हे तथा

दूसरे उपस्थित मनुष्योको वहुत आश्चर्य होता। श्रीमद्जी वडे भारी विद्वान् है, ऐसा जूठाभाईको लगता। परन्तु उस समय जूठाभाईको आत्म-कल्याणकी भूख नही लगी थी, इससे उन्हे श्रीमद्की यथार्थ पहचान न हो सकी।

इसी अरसेमे सेठ दलपतभाई भगुभाईके वडेमे श्रीमद्ने अवधानके प्रयोग करके वताये थे। यह देखकर जूठाभाई श्रीमद्की ओर अधिक आकर्षित हुए और श्रीमद्की सेवा-टहलमे वे रहने लगे। इस वीचमे धीरे धीरे जैसे जैसे परिचय वढता गया वैसे वैसे श्रीमद्की सच्ची महत्ता उनकी समझमे आती गई और पूर्वके सस्कारोके वलसे आगे जाने पर वे श्रीमद्के समागमसे सच्ची आध्यात्मिक जागृति प्राप्त कर सके।

एक समय श्रीमद्, जूठाभाईके साथ सेठ दलपतभाईके पुस्तक भडारको देखने गये थे। इस वारेमे जूठाभाईने सेठ जेशगभाईसे वात की थी कि श्रीमद् पुस्तकोके पन्ने पलटते जाते और उन पुस्तकोका रहस्य समझ जाते थे।

ववाणिया जाकर स १९४५मे कार्तिक सुदी पूर्णिमाके आसपास श्रीमद् अहमदावाद फिरसे आये थे। अनेक जिज्ञासु उनके साथ वार्तालाप करने आते। उस समय साध्वी श्री दिवालीवाई भी वहाँ थी, उनके साथ जूठाभाई और उनके काका कर्मचन्द्रके समक्ष ज्ञान सम्वन्धी प्रश्नोत्तर हुआ करते थे।

जूठाभाईके अत्यन्त परिचयमे आनेके वाद श्रीमद् जव अहमदावाद आते तव उनके यहाँ ही उतरते थे।

जूठाभाई मोरवीमे श्रीमद्के साथ डेढ दो मास रहे थे। एक वार श्रीमद्के साथ भरूच भी गये थे। धर्मके कारण परस्पर पत्रव्यवहार भी होता था। जूठाभाईकी शरीर-प्रकृति उस समयमे वीमारीके कारण अत्यन्त शिथिल रहती, और वैराग्यवृत्ति वर्धमान होती जाती थी।

खभातसे एक वार भाई अम्वालाल लालचन्द और एक दो भाई किसी विवाहके अवसर पर अहमदावाद आये थे। वे समवयस्क होनेसे जूठाभाईके यहाँ आते-जाते रहते। वरयात्रा (वरात) निकलनेवाली थी उस समय अम्वालाल आदि जूठाभाईको वरातमे वुलानेके लिए आये। उन्होने कहा 'चलो जूठाभाई, वरातमे चलें।' उसे सुनकर, युवावस्था होने पर भी स्वाभाविक वैराग्यवान् जूठाभाईको विशेष आनन्द न आया। इन लोगोको श्रीमद्के विपयमे कुछ वात करनेकी उनके अन्दरसे एक लहर उठी, परन्तु मनको रोककर जूठाभाई इतना ही वोले 'कहाँ प्रतिवन्ध करूँ?'

यह सुनकर उन भाइयोने कहा 'आप क्या कहते है? हम लोग नही समझे।'

जूठाभाईके वैराग्ययुक्त व्यवहारकी छाप उन भाइयोके ऊपर पडी, इससे वे लोग उनके पास, उनकी वात सुननेके लिए वैठे और वरयात्रामे नही गये।

इससे जूठाभाईने श्रीमद् सम्वन्धी गुणोका वर्णन किया और अपने ऊपर आये हुए श्रीमद्के पत्रोको इन भाइयोको पढाया। उन भाइयोने वहीकी वही उन पत्रोकी प्रतिलिपि कर ली।

विवाहके निमित्तसे आये हुए इन भाइयोको जूठाभाईके सत्समागमसे धर्मकी लगन लगी। इन भाइयोमे भी श्रीमद्के दर्शन तथा समागम करनेकी तीव्र अभिलाषा जागृत हुई और इन लोगोने श्रीमद्को खभात पधारनेके लिए विनती पत्र भी लिख डाला। अम्बालालभाई आदि बादमे श्रीमद्के निकट अनुयायी बने, यह बात आगे आयेगी।

जूठाभाईका शरीर स १९४५-४६ इन अन्तिम दो वर्षोमे रोगग्रस्त रहा था। उस अवसर पर श्रीमद् द्वारा जूठाभाईको लिखे गये धर्मध्यान प्रेरक अनेक पत्र उन्हे बहुत लाभ-दायक और जीवनप्रेरक सिद्ध हुए थे। परिणाममे, 'मोक्ष मार्ग दे ऐसा सम्यक्त्व' उनके अन्तरात्मामे प्रकाशित हुआ था।

जूठाभाईके अवसान सम्बन्धी स १९४६के वैशाख सुदी तीजके रोज श्रीमद्जी लिखते है

'इस उपाधिमे पडनेके बाद यदि मेरा लिगदेहजन्य-ज्ञानदर्शन वैसा ही रहा हो, यथार्थ ही रहा हो तो जूठाभाई आषाढ सुदी ९ गुरुवारकी रात्रिमे समाधिशीत (स्थित) हो इस क्षणिक जीवनका त्याग कर चले जायेगे, ऐसा यह ज्ञान सूचित करता है।'

अवसान सम्बन्धी श्री जूठाभाईसे कहनेके लिए भाई छगनलाल बेचरदासको श्रीमद्ने प्रथमसे लिखा था। श्री जूठाभाईकी वैराग्य दशा और उदासीनता प्रगट होने पर भी उनके कुटुम्बीजन इन्हे सम्यक्ज्ञान हुआ है, यह नही जान सके थे।

स १९४६की आषाढ सुदी ९के दिन केवल तेईस वर्षकी अवस्थामे श्री जूठाभाई कालधर्मको प्राप्त हुए।

श्रीमद्‌ने स १९४६के आषाढ सुदी दसमके पत्रमे लिखा है

'उपाधिके कारण लिगदेहजन्य-ज्ञानमे यत्किचित् फेरफार मालूम हुआ। पवित्रात्मा जूठाभाई उपर्युक्त तिथिमे दिनको स्वर्गवासी होनेका आज समाचार मिला।'

श्रीमद्‌ने आश्वासनके पत्रमे श्री जूठाभाईकी अन्तरग दशाका जो वर्णन किया है, वह सभीके मनन करने योग्य है।

'इस पावन आत्माके गुणोका हम कैसे स्मरण करे? जहाँ विस्मृतिको अवकाश ही नही, वहाँ स्मृति हुई, कैसे माना जाय? इसका लौकिक नाम ही देहधारी रूपमे सत्य था। यह आत्मदशारूपमे सच्चा वैराग्य था।

'जिसकी मिथ्यावासना बहुत क्षीण हो गई थी, जो वीतरागका परमरागी था, ससारसे परम जुगुप्सित था, जिसके हृदयमे सदा भक्तिकी प्रधानता थी, जिसमे सम्यक् भावसे वेदनीय कर्म वेदनेकी अदभुत समता थी, जिसके अन्तरात्मामे मोहनीय कर्मका बल बहुत कम हो गया था और जिसमे उत्तम प्रकारसे मुमुक्षुता सुशोभित हो उठी थी, ऐसे उस जूठाभाईका पवित्रात्मा आज जगतके इस भागका त्याग करके चला गया, इन सहचारियोसे मुक्त हुआ। धर्मके पूर्णाह्लादमें आयु अचानक पूर्ण की।

'अरेरे! ऐसे धर्मात्माका इस कालमे अल्प जीवन

हो, यह कुछ विशेष आश्चर्यकारक नही है। इस कालमे ऐसे पवित्रात्माकी विशेप स्थिति कहाँसे हो? अन्य सह-वासियोका ऐसा भाग्य कहाँसे हो कि ऐसे पवित्रात्माके दर्शनका लाभ उन्हे विशेष मिले? जिसके अन्तरात्मामे मोक्षमार्गको देनेवाला सम्यकत्व प्रकाशित हुआ था ऐसे पवित्रात्मा जूठाभाईको नमस्कार हो! नमस्कार हो!'

'चि *सत्यपरायणके स्वर्गवास–सूचक शब्द भयकर है। परन्तु ऐसे रत्नोका दीर्घ जीवन कालको नही पुसाता। धर्मेच्छुकका ऐसा अनन्य सहायक रहने देना मायादेवीको योग्य न लगा। कालकी प्रवल दृष्टिने इस आत्माके इस जीवनका राहस्यिक विश्राम खीच लिया। यद्यपि ज्ञान-दृष्टिसे शोकका अवकाश नही है, तो भी उसके उत्तम गुण वैसा करनेकी प्रेरणा करते है। वहुत स्मरण होता है, अधिक नही लिख सकता।

'यदि हो सका तो 'सत्यपरायण'के स्मरणार्थ एक शिक्षा ग्रन्थ लिखनेका विचार है। धर्ममे अनुरक्त रहो, यही पुन पुन अनुरोध हे। यदि हम सत्यपरायणके मार्गका सेवन करेगे तो जरूर सुखी होगे, पार पायेगे, ऐसा मै मानता हूँ।'

* श्रीमद्जी जूठाभाईको अनेक वार इस नामसे वुलाया करते थे।

३

सायलावाले श्री सौभागभाई

सौराष्ट्रमे 'भगतका गाँव'के तौर पर प्रसिद्ध सायला गाँवमे श्री लल्लुभाई नामके एक नामांकित सेठ रहते थे। प्रारब्धवशात् उनकी धनसम्पत्ति चली गई इससे उन्होने विचार किया कि, 'मारवाडके साधु मंत्रविद्या आदिमे कुशल कहे जाते है। उनमेंसे किसीकी कृपासे लक्ष्मी पुन प्राप्त हो, वैसा प्रयत्न करना।' यह विचार कर वे मारवाड गये और किसी प्रसिद्ध साधुके परिचयमे रहकर उन्हे प्रसन्न किया। एकान्तमे अपनी स्थिति प्रगट कर, वह किसी प्रकारसे सुधरे वैसा उपाय वतानेकी प्रार्थना की।

परन्तु उस अध्यात्मप्रेमी साधुने सेठ लल्लुभाईको खूब उपालभ दिया और कहा, 'तुम ऐसे विचक्षण होने पर भी त्यागीके पाससे आत्माकी वातकी प्राप्तिको छोडकर मायाकी वात करते हो, यह तुमको उचित नही है।'

उस साधुके अभिप्रायको समझ जानेसे लल्लुभाईने कहा, 'वापजी, मेरी भूल हुई! मेरे आत्माका कल्याण हो वैसा मुझे कुछ वताइये।'

उनके ऊपर कृपा करके उस साधुने 'वीजज्ञान' वताया और साथमें यह भी कहा कि, तुममे योग्यता नही है, परन्तु यदि तुम किसी योग्य पुरुषको दोगे तो उसे ज्ञान-प्राप्ति होगी।'

यह वीजज्ञान सेठने इस तरह अन्य किसी योग्य पुरुषको देनेका कहकर अपने पुत्र सौभागभाईको वताया था।

एक समय किसी काम प्रसगसे सौभागभाईका मोरवी जाना हुआ, उस समय श्रीमद् राजचन्द्र मोरवीमे थे। इससे मोरवी जाते समय सौभागभाईने अपने पिता लल्लु-भाईसे कहा, 'कवि रायचन्दभाई बहुत योग्य आदमी है, ऐसा समस्त काठियावाडमे कहा जाता है। वे इस समय मोरवीमे है और मुझे मोरवी जाना है, यदि आप कहे तो मै उन्हे 'वीजज्ञान' वताऊँ।'

लल्लुभाईने हॉ कहा, इससे वे मोरवी गये तव श्रीमद्जीसे मिलने गये।

उस समय श्रीमद् दुकान पर वैठे हुए थे। सौभागभाईके आनेसे पहले उन्होने अपने निर्मल ज्ञानसे जान लिया कि सौभागभाई नामका कोई मनुष्य 'वीजज्ञान'की वात वतानेके लिए आ रहा है। इससे श्रीमद्ने कागजके एक छोटेसे टुकडे पर, सौभागभाई जो कहनेके लिए आ रहे थे, वह सब लिख डाला और कागजके टुकडेको गद्दी समीपके गल्लेमे रख दिया।

सौभागभाई दुकानके पास आये, इससे श्रीमद्ने इनका आदर करते हुए कहा, 'आइये सौभागभाई।'

सौभागभाईको आश्चर्य लगा कि श्रीमद् मुझे नही पहचानते, फिर मेरा नाम लेकर मुझे कैसे बुलाया? वादमे सौभागभाई कुछ पूछे इससे पहले श्रीमद्ने कहा 'इस गल्लेमे एक कागजका टुकडा है, उसे निकालकर पढिये।'

सौभागभाईने गल्लेमेसे कागजका टुकडा निकालकर पढा तो वे आश्चर्यचकित हो गये। उनको हुआ कि,

'यह कोई अलौकिक ज्ञान पाये हुए महापुरुष है। मुझे इन्हे क्या बताना हो? उल्टा मुझे इनके पाससे विशेष ज्ञान प्राप्त करना रहा।' परन्तु उन्होने श्रीमद्के ज्ञानकी विशेष कसौटी करनेके लिए पूछा, 'सायलामे हमारे घरका द्वार कौन-सी दिशामे है?'

श्रीमद्ने अन्तरग ज्ञानमे जानकर यथार्थ उत्तर दिया, इससे सौभागभाईने सानन्दाश्चर्य होकर कहा 'आपका ज्ञान यथार्थमे सत्य है।' बादमे उन्होने श्रीमद्को भक्तिभावपूर्वक तीन नमस्कार किये।

उस समय श्रीमद् भी कोई अपूर्व समाधिमे लीन हो गये। इस प्रकार प्रथम समागममे उन दोनोके बीचमे अन्त करणकी एकता प्रगटी थी। 'तरणा ओथे डुगर रे, डुगर कोई देखे नही।'—(तृणकी ओटमे पर्वत, पर्वतको कोई नही देखता।) इस पदका भावार्थ समझाकर श्रीमद्ने तृष्णाको रोकनेका उपदेश दिया था।

इस प्रथम मिलाप बाद सौभागभाई सायला आ गये। इसके बाद थोडे समयमे सेठ लल्लुभाईका स्वर्गवास हो गया, इससे कुटुम्बके निर्वाहकी चिन्ता सौभागभाईके सिर आ पडी।

उस समय श्रीमद्ने ववाणियामे 'क्षणमपि सज्जन सगतिरेका, भवति भवार्णवतरणे नौका।' अर्थात् क्षणमात्रकी सज्जनपुरुषोकी सगति भव(ससार)रूपी समुद्रके पार होनेमे नौका समान होती है—यह श्लोकवाला प्रथम पत्र सौभागभाई पर लिखा है। पश्चात् 'परमविवेकसम्पन्न

श्री सौभागभाई' इस प्रकारके सम्बोधनसे अत्यन्त लम्बा वोधपत्र दूसरे अठवाडियेमे लिखा है। इस प्रकार पहलेसे ही सौभागभाई पर पत्रकी परपरा एकसी प्रारभ हुई थी।

सौभागभाई परके श्रीमद्के पत्र नि सकोच, विस्तारसे और विशेष सख्यामे लिखे हुए हैं। इनमे श्रीमद्ने अपनी व्यावहारिक उपाधि जता करके अनुभवमे आनेवाली अन्तरग-दशाका सुन्दर वर्णन किया है। इसके सिवाय सौभागभाईने भी उपाधिसेदूर रहकर शास्त्रोके वाचन–विचार सम्वन्धी तथा आत्मासम्वन्धी अनेक प्रश्न उपस्थित करके उनके समाधान, विचारका भाव दिखाया है।

कच्छके समीप अजारमे सौभागभाईकी दुकान थी। स १९४६मे दूसरे भाद्रपदके कृष्णपक्षमे अजार जाते समय सौभागभाई श्रीमद्के साथ मोरवीमे चार-पॉच दिन रहे थे। अजारसे लौटते हुए ववाणिया भी तीन दिन रहकर आश्विन वदीमे श्रीमद्को अपने साथ सायला ले गये थे। श्रीमद् वहॉ आठ दिन ठहरकर खभात चले गये थे। सायलामे श्री डुगरशी गोसलिया, लहराभाई आदिका श्रीमद्से प्रथम समागम हुआ था।

इस प्रकार श्रीमद् और सौभागभाईमे गाढ सम्वन्ध होता गया। सौभागभाई श्रीमद्से चवालीस वर्ष वडे थे। अर्थात् जव श्रीमद्की वय तेईस वर्षकी थी तव सौभागभाई सडसठ वर्षकी आयुवाले थे। सौभागभाईके परम मित्र डुगरशीभाई गोसलिया थे। वे सौभागभाईसे भी वडे थे। डुगरशीभाई वडे भारी वुद्धिमान और तर्कवादी थे। उन्होने योग साध-

कर चमत्कार सिद्ध किये थे। इस कारण सरल और भोले स्वभाववाले सौभागभाईकी उनके प्रति ज्ञानी जैसी श्रद्धा हो गई थी। परन्तु श्रीमद्के साथ उनका जैसे-जैसे पत्रव्यवहार बढ़ता गया और पूज्य-बुद्धि बढ़ती गई, वैसे-वैसे इनमे यथार्थ ज्ञानका आविर्भाव होता गया, और श्रीमद्के प्रति पतिव्रता जितनी उनकी परम भक्ति होनेपर गोसलियाके प्रति जो मान्यता थी, दूर हो गई। सौभागभाई गोसलियाको भी वारम्वार कृपालुदेव श्रीमद्की शरण स्वीकार करनेके लिए कहते। उस समय डुगरशीभाई अनेक तर्क करते, परन्तु सौभागभाई अपने ध्येयसे चलित न होते। ऐसा होने पर भी वे दोनो साथमे मिलकर ही श्रीमद्के पत्रोके विषयमे विचार करते और तत्त्वचर्चा भी करते थे।

स १९४७के पर्युषण पर श्रीमद् बम्बईसे राळज आये, उस समय सौभागभाई तथा डुगरशीभाई गोसलिया श्रीमद्के साथमे रहे थे। डुगरशीभाई राळज पन्द्रह दिन रहकर वापस चले गये। सौभागभाई, श्रीमद् जिस समय ववाणिया गये उस समय साथमे निकलकर सायला गये।

इसी प्रकार स १९५१मे खभात और स १९५२मे जिस समय श्रीमद् काविठा आये उस समय भी ये दोनो वृद्ध पुरुष साथमे ही थे।

सौभागभाईको सत्सगकी तीव्र अभिलाषा थी, उसमे आर्थिक कठिनाई बाधा डालती, उसे दूर करनेके लिए वे श्रीमद्को वारम्वार लिखा करते थे। स १९४९-५०मे

श्रीमद्ने अनेक पत्रो द्वारा आर्थिक लाचारी नही करनेकी वात समझाकर उनको आत्मार्थ (आत्म-कल्याण) मे दृढ किया था। हमे उपाधिसे छूटनेके लिए क्या करना चाहिए यो श्रीमद्जी पत्रो द्वारा पुछाते है, उसके जवावमे शीघ्रतासे ससारको त्यागकर मार्गप्रभावना करनेके लिए वे श्रीमद्को वारम्वार लिखते। उसके स्पष्टीकरण-रूपमे श्रीमद्ने अपनी प्रारव्धस्थिति, मार्गप्रभावनाकी उत्कठा और त्यागकी तत्परता दिखानेवाले पत्र लिखे है।

स १९५३के कार्तिक मासमे श्रीमद् नडियादसे ववाणिया आये। वहाँ माताजीको वुखार आता था इत्यादि कारणसे गर्मीकी ऋतुतक वहाँ ही रहे। उसी वीच सौभागभाईको भी वुखार लागू हुआ। उस विपयमे कार्तिक शुक्ल दसमके पत्रमे श्रीमद्ने इन्हे लिखा था और 'आत्मसिद्धिशास्त्र'का विशेप विचार करनेके लिए सूचित किया था।

वादमे स १९५३के वैशाख मासमे दस दिन सायला और दस दिन ईडर श्रीमद्ने सौभागभाईको समागमका लाभ देकर उनके आत्माको उत्कृष्ट पुरुपार्थमे प्रेरित किया था।

अन्तिम समय जव श्रीमद् सायला आये थे, उस समय उनको छोडनेके लिए जाते हुए मार्गमे नदी आई। सूर्योदय होनेको आया था। उस समय सौभागभाईने श्रीमद्से कहा 'उगते सूर्यकी साक्षीसे, नदीकी साक्षीसे और सत्पुरुपकी साक्षीसे इस सौभाग्यको आपके सिवाय कोई दूसरी रटन न हो।'

एक पत्रमे श्री सौभागभाई स १९५३ जेष्ठ शुक्ल चौदस रविवारको, श्रीमद्‌को, लिखते हैं

'यह अन्तिम पत्र लिखकर विदित करता हूँ. अब आप इस पामर सेवकके ऊपर सब प्रकारसे कृपादृष्टि रखना.। देह और आत्मा जुदे हैं। देह जड है, आत्मा चैतन्यस्वरूप है। चैतन्यका वह अश प्रत्यक्ष भिन्न समझमे नही आता था। परन्तु आठ दिन हुए, आपकी कृपासे अनुभवगोचर होकर स्पष्ट भिन्न दिखाई देता है। और रात दिन यह चैतन्य और यह देह भिन्न है ऐसा आपकी कृपादृष्टिसे स्वाभाविक हो गया है, यह आपको सहज विदित करनेके लिए लिखा है।

'विना पढे, विना शास्त्र वाँचे अल्प समयमे आपके बोधसे अर्थ आदिका बहुत खुलासा हो गया है, जो खुलासा पच्चीस वर्षमे भी नही हो सकता था वह थोडे समयमे आपकी कृपासे हुआ है।'

श्रीमद्‌ने अन्तमे तीन पत्र जो श्री सौभागभाई पर लिखे है वे पत्र समाधिमरणकी इच्छावाले प्रत्येक मुमुक्षुको विचारने योग्य है। ये पत्र 'श्रीमद् राजचन्द्र'मे प्रकाशित हुए है।

श्री सौभागभाईका स १९५३की जेष्ठ वदी दशमको देहत्याग हुआ था। श्री सौभागभाईके विषयमे श्रीमद्‌जी लिखते है:

जीवको देहका सम्बन्ध इसी प्रकारसे है। फिर भी अनादिकालसे उस देहका त्याग करते हुए जीव दुखी होता

है, और उसमे दृढ मोहसे एकत्वके समान प्रवृत्ति करता है। यही जन्ममरणादिरूप ससारका मुख्य बीज है। श्री सौभागभाईने वैसी देहको छोडते हुए महान् मुनियोको दुर्लभ ऐसी निश्चल असगतासे निज उपयोगमय दशामे रहकर अपूर्व हित किया है, इसमे सशय नही है।

'इस क्षेत्रमे, इस कालमे श्री सौभाग जैसे विरले ही पुरुष मिलते है, ऐसा हमको वारम्वार मालूम होता है। श्री सौभागकी सरलता, परमार्थ सम्वन्धी निश्चय, मुमुक्षुओके प्रति उपकार आदि गुण वारम्वार विचारने योग्य है।'

श्रीमद् उस समय मुनिश्री लल्लुजी महाराजको लिखते है

'हे मुनियो! तुम्हे आर्य सौभागकी अन्तरगदशा और देहमुक्त समयकी दशाका वारम्वार विचार करना योग्य है।'

श्रीमद्को सम्यक्ज्ञानकी प्राप्ति थी, फिर भी मुमुक्षु जीवोके सत्सगकी भावना विशेप रहा करती थी। धार्मिक प्रश्नोकी चर्चामे श्री सौभागभाई यथाशक्ति सहयोग देकर श्रीमद्से वहुत अच्छा सन्तोषकारक स्पष्टीकरण कराते थे। अन्य मुमुक्षुओकी यदि श्रीमद्से कुछ कहनेकी इच्छा हो तो वयोवृद्ध श्री सौभागभाई द्वारा विनती कराते और दयालु हृदय होनेसे वे सरल भावसे प्रत्येककी वातको उनके सामने उपस्थित करते।

श्री 'आत्मसिद्धिशास्त्र'के लिखनेकी प्रेरणा भी

श्री सौभागभाई द्वारा हुई कि, 'छ पदका पत्र' गद्यमे होनेसे कठस्थ नही होता, जो उस भावार्थका पद्य हो तो सर्व मुमुक्षुओ पर महान उपकार हो।

श्रीमद् अपनी नोट बुकमे उनका उपकार प्रगट करते हुए लिखते है

'हे जिन वीतराग! आपको मै अत्यन्त भक्तिसे नमस्कार करता हूँ। आपने इस पामरके ऊपर अनहद उपकार किया।

'हे कुन्दकुन्दादि आचार्यो! आपके वचन भी स्वरूपानुसन्धानमे इस पामरको परम उपकारभूत हुए है। उसके लिए मै आपको अतिशय भक्तिसे नमस्कार करता हूँ।

'हे श्री सौभाग! तुम्हारे सत्समागमके अनुग्रहसे आत्मदशाका स्मरण हुआ, उसके लिए तुम्हे नमस्कार हो।'

४

महात्मा गाधीजी

महात्मा गाधीजीके जीवन पर श्रीमद् राजचन्द्रका प्रबल प्रभाव पडा है। गाधीजी इस सम्बन्धमे लिखते है

'मैने अनेकोके जीवनमेसे बहुत कुछ लिया है। परन्तु सबसे अधिक यदि किसीके जीवनमेसे मैने ग्रहण किया हो तो वह कविश्रीके जीवनमेसे है।'

पुन वे अन्य स्थल पर लिखते है 'मेरे ऊपर तीन पुरुषोकी गहरी छाप पडी है—टॉल्स्टॉय, रस्किन और रायचन्दभाई। टॉल्स्टॉयकी, उनकी पुस्तक द्वारा और उनके साथके थोडेसे पत्रव्यवहारसे, रस्किनकी उनकी

एक ही पुस्तक 'अनटु धिस लास्ट'से, जिसका गुजराती नाम मैंने 'सर्वोदय' रखा है और रायचन्दभाईकी उनके साथके गाढ परिचयसे।'

इतना ही नहीं, परन्तु गाधीजी तो यहाँ तक कहते हैं कि 'मेरे जीवनमे श्रीमद् राजचन्द्रकी छाप मुख्यरूपसे है। महात्मा टॉल्स्यटॉय तथा रस्किनसे भी, श्रीमद्ने मेरे जीवन पर गहरा असर किया है।'

महात्मा गाधीजीके ऐसे उद्गारोको सुनकर श्रीमद् राजचन्द्र जैसी उच्च विभूतिके समागममे गाधीजी कैसे आये और किस प्रकार वह अधिकाधिक गाढा होता गया इस विषयमे जाननेका हमलोगोका मन सहजमे हो आता है।

ई स. १८९१के जुलाई मासमे गाधीजी जिस समय विलायतसे बॅरिस्टर होकर भारतमे वापस आये, उस समय बम्बईमे उनका ठहरना श्रीमद्के ककियासमुर डॉ प्राणजीवन-दास महेताके यहाँ हुआ था। श्रीमद् इन डॉ प्राणजीवनदास-भाईके बडे भाई श्री पोपटलालके जमाई लगते थे। डाक्टरने श्रीमद्के साथ गाधीजीकी जान-पहचान प्रथम वार कराई और कहा ये 'कवि होने पर भी हमारे साथमे ही व्यापार करते है। ये ज्ञानी है, शतावधानी हैं।'

किसीने उस समय गाधीजीसे कहा कि, 'आप रायचन्दभाईको कुछ शब्द सुनाये और वे किसी भी भाषाके होगे तो भी उसी क्रमसे रायचन्दभाई आपको कह जायेगे।'

यह सुनकर गाधीजीको आश्चर्य हुआ। इस प्रसगके समयकी अपनी स्थितिका खयाल देते हुए गाधीजी कहते हैं

'मैं तो जवान, विलायतसे आया हुआ, अपने भाषा-ज्ञानका भी आडंबर और विलायतकी हवा उस समय कुछ कम नहीं थी। विलायतसे आया मानो ऊँचेसे उतरा। मैंने अपना सब ज्ञान खाली किया और भिन्न-भिन्न भाषाओंके शब्दोंको प्रथम लिख डाला। क्योंकि शब्दक्रम मुझे कहाँ याद रहनेवाला था? और फिर उन शब्दोंको बोल गया। रायचन्दभाईने उसी क्रममें धीरेसे एकके बाद एक सभी शब्द कह बताये। मैं प्रसन्न हुआ, चकित हुआ। और कविकी स्मरणशक्तिके विषयमें मेरा ऊँचा अभिप्राय बँधा। विलायतकी हवा शान्त करनेके लिए यह अनुभव उत्तम रहा।'

श्रीमद् राजचन्द्रको अंग्रेजीका ज्ञान बहुत नहीं था। उस समय उनकी उम्र पच्चीस वर्षसे अधिक नहीं होगी। उनकी और गांधीजीकी उम्रमें एक वर्ष और दस महीनेका अन्तर था। गांधीजीका जन्म सं १९२५के भाद्रपद वदी बारसके दिन हुआ था जब कि श्रीमद्का जन्म इनसे पहले सं १९२४की कार्तिकी पूर्णिमाको हुआ था। इस प्रकार अपनेसे कुछ बड़े और गुजराती शालामें सातवीं कक्षा तक अध्ययन करनेवाले श्रीमद्में इतनी विलक्षण स्मरणशक्ति, इतना ज्ञान और आस-पासवालोंकी ओरसे इतना सन्मान ये सब देखकर गांधीजी उन पर मुग्ध हो गये थे।

इस प्रसंगसे गांधीजीको इस बातकी प्रतीति हुई कि स्मरणशक्ति पाठशालाओंमें नहीं बिकती, ज्ञान भी पाठशालासे बाहर यदि इच्छा हो—जिज्ञासा हो तो मिले, और

आदर-सत्कार प्राप्त करनेके लिए विलायत या कही अन्यत्र नही जाना पडता।

परन्तु यहाँ एक बात लक्ष्यमे लेने योग्य है कि, श्रीमद् राजचन्द्रकी केवल तीव्र स्मरणशक्ति देखकर गाधीजीको उनके प्रति आदरभाव उत्पन्न हुआ हो, ऐसा कुछ नही था। आदरभावका कारण तो दूसरा ही था। यो तो वहुतोकी स्मरणशक्ति तीव्र होती है, इस कारण उससे प्रभावित होनेकी कुछ आवश्यकता नही है। शास्त्रज्ञान भी वहुतोको होता है। परन्तु यदि वे लोग सस्कारी न हो तो उनके पाससे फूटी वादाम भी नही मिलती। जहाँ सस्कार अच्छे हो वहाँ ही स्मरणशक्ति और शास्त्रज्ञानका सयोग सुशोभित होता है और जगत्को सुशोभित करता है।

गाधीजीने तो पहली मुलाकातमे ही देख लिया था कि, श्रीमद् निर्मल चरित्रशील और सच्चे ज्ञानी है। उनका शास्त्रज्ञान, उनका विशुद्ध चरित्र और उनकी आत्मदर्शन करनेकी तीव्र अभिलाषा देखकर ही गाधीजी उनकी ओर आकर्षित हुए थे।

गाधीजीकी श्रीमद्के साथ प्रथम पहचान हुई उस समयकी गाधीजीकी स्थितिके विषयमे भी जान लेना आवश्यक है। इस वारेमे गाधीजी स्वय लिखते है

'हम प्रथम मिले उस समय मेरी आध्यात्मिक स्थिति मात्र एक जिज्ञासुकी थी। अनेक प्रश्नोके विषयमे शका रहती। उस समय धर्म, हिन्दु धर्म, गीता इत्यादिके सम्बन्धमे थोडा ज्ञान था। माता-पिताके पाससे सहज

जो प्राप्त हुआ था, उसकी यहाँ बात नही करता। मैंने अपने प्रयत्नसे धर्मके सम्बन्धमे बहुत जाना हो, ऐसा नहीं था, परन्तु मुझे धर्मके विषयमे जाननेकी उत्कठा थी। इससे रायचन्दभाईका समागम मुझे रुचिकर हुआ और उनके वचनोका असर मेरे ऊपर पड़ा।

'उनकी बुद्धिके लिए मुझे आदर था, उनकी प्रमाणिकताके लिए वैसा ही था। और उससे मैं जानता था कि वे मुझे इरादापूर्वक अवमार्गमे नही ले जायेंगे और जो अपने मनमे होगा वही कहेगे। इस कारण मैं अपनी आध्यात्मिक कठिनाईमे उनका आश्रय लेता था।'

ऐसी आध्यात्मिक कठिनाईका एक महत्त्वका प्रसग, जिस समय गाधीजी दक्षिण आफ्रिकामे थे उस समय बना था। गाधीजीके कितने ही ईसाई मित्र उन्हे ईसाई होनेके लिए समझा रहे थे। उस समय गाधीजीके हृदयमे धर्म-मन्थन जागृत हुआ था। ईसाई धर्मका अवलोकन करनेसे गाधीजीको यह धर्म सम्पूर्ण अथवा सर्वोपरी न लगा। इन्होने अपने इस विषयके विचारोको अपने ईसाई मित्रोके समक्ष उपस्थित किया। परन्तु वे गाधीजीके मनका समाधान हो इस प्रकार न समझा सके।

परन्तु उस समय जिस प्रकार गाधीजी ईसाई धर्मको स्वीकार नही कर सकते थे, उसी प्रकार हिन्दु धर्मकी सपूर्णताके विषयमे अथवा सर्वश्रेष्ठताके विषयमे भी निर्णय पर नही आ सकते थे। हिन्दु धर्मकी त्रुटियाँ उनकी दृष्टिके सामने दिखाई दिया करती थीं।

इसके सिवाय, जिस प्रकार ईसाई मित्र उन पर अपना प्रभाव डालनेका प्रयत्न कर रहे थे, उसी प्रकार मुसलमान मित्रोका भी प्रयत्न था कि गाधीजी इस्लामका अभ्यास करे। वे लोग उनको कभी-कभी इस धर्मकी विशेषताये समझानेका अत्यधिक परिश्रम करते थे।

गाधीजी इन सब बातोसे द्विधामे पड गये। अन्तमे उन्होने अपनी यह कठिनाई श्रीमद्के समक्ष उपस्थित की। उन्होने भारतके अन्य धर्मशास्त्रियोके साथ भी पत्र-व्यवहार किया। उन लोगोके उत्तर आये। परन्तु श्रीमद्के पत्रसे उन्हे कुछ शान्ति मिली।

श्रीमद् राजचन्द्रने गाधीजीको धैर्य रखने और हिन्दु धर्मका गहराईसे अभ्यास करनेका अनुरोध किया। फिर श्रीमद्ने कितनी ही पुस्तके, जैसे कि 'पचीकरण,' 'मणि रत्नमाला,' 'योगवासिष्ठ,' ग्रन्थका मुमुक्षु प्रकरण इत्यादि गाधीजीको पढने-विचारनेके लिए भेजी।

गाधीजीने इन सभी पुस्तकोको आदरपूर्वक पढा। तदुपरान्त जो कुछ समय बचता उसका उपयोग वे धार्मिक ग्रन्थोको पढनेमे करने लगे। उन्होने श्रीमद्के साथका पत्रव्यवहार जारी रखा। श्रीमद् भी उन्हे योग्य सलाह देते थे। परिणाममे गाधीजीका हिन्दु धर्मके प्रति आदरभाव बढा और वे इसकी विशेषता समझने लगे।

यहाँ हमे श्रीमद् राजचन्द्रकी उदार दृष्टिका प्रेरक दर्शन होता है। यो तो श्रीमद् जैन-दर्शनके अनुयायी थे परन्तु उन्हे अन्य धर्मोके प्रति अनादर नही था। श्रीमद्का जीवन-

दर्शन विशाल और उदार था। अमुक दर्शन, पन्थ या वाडेमे सत्य समाया है, ऐसा माननेके बदले सत्य आत्मानुभवमे ही है, ऐसा श्रीमद्का अभिप्राय था। साथ-साथ अन्तिम अनुभवसे सम्बन्ध रखनेवाली बातोके विषयमे भिन्न-भिन्न दर्शन या प्रवर्तकोके मतभेदोका निर्णय अन्तिम अनुभव होने पर ही होता है। और वहाँ तक सभी सम्प्रदायोके शास्त्र-ग्रन्थ उपदेश-सद्बोध प्राप्त करनेके लिए बाचने विचारने योग्य है, ऐसा वे मानते थे। इसमे ही श्रीमद् राजचन्द्रने लिखा है

'जिनागम और वेदान्तमे सिद्धान्तज्ञान परस्पर भेदवाला देखनेमे आता है, और उस भेदको देखकर, मुमुक्षु जीव अदेशाशकामे पडता है। और वह शका चित्तमे असमाधि उत्पन्न करती है। ऐसा प्राय होने योग्य ही है। क्योकि सिद्धान्तज्ञान तो जीवको किसी अत्यन्त उज्ज्वल क्षयोपशमसे और सद्गुरुके वचनोकी आराधनासे उत्पन्न होता है। सिद्धान्त ज्ञानका कारण उपदेश बोध है। सद्गुरुसे या सत् शास्त्रसे प्रथम जीवमे इस ज्ञानकी दृढता होना उचित है, कि जिस उपदेश-ज्ञानका फल वैराग्य और उपशम है। वैराग्य और उपशमका बल बढनेसे जीवमे सहजमे क्षयोपशमकी निर्मलता होती है और वह सहज-सहजमे सिद्धान्तज्ञान होनेमे कारण होता है। यदि जीवमे असगदशा आये तो आत्मस्वरूपका समझना अत्यन्त सुलभ होता है।'

ऐसी व्यापक धर्मदृष्टिवाले होनेसे श्रीमद् गाधीजीकी द्विधाको बराबर समझ सके थे, और इनके धर्म सस्कारोंका

लक्ष्यकर ही श्रीमद् इन्हे योग्य मार्ग दिखाते थे। इस कारण ही गाधीजीके साथमे धर्म सम्बन्धी चर्चा करते हुए कभी भी उन्होने ऐसा नही कहा कि, गाधीजीको मोक्ष प्राप्त करनेके लिए अमुक धर्मका अवलम्बन लेना चाहिए। उन्होने गाधीजीको अपने आचारको समझनेका, अपना अन्तरात्मा जिस प्रकार प्रेरणा करे उस प्रकारसे जीवनके विषयमे विचारनेको ही कहा था। श्रीमद् द्वारा सूचित पुस्तके भी मुख्य रूपसे हिन्दु धर्मकी ही थी। क्योकि गाधीजी भी हिन्दु धर्मकी विशेपताये समझनेका प्रयत्न करते थे। जिससे उनकी व्याकुलता दूर हो और उन्हे सत्य मार्गके दर्शन हो यह वात लक्ष्यमे रखकर ही श्रीमद्ने उन्हे सलाह देना चालू रखा था।

यदि श्रीमद्की जगह कोई दूसरा होता तो जिज्ञासुके ऐसे धर्मसकटके समयका लाभ उठाकर उनके मन पर अपना मन्तव्य (मत) मान्यता या अपने विचारोको वल-पूर्वक मनानेका प्रयत्न करता। परन्तु श्रीमद् व्यापक धर्म-दृष्टिवाले थे।

इस प्रकार, समय वीतने पर गाधीजीका श्रीमद्के साथका प्रत्यक्ष परिचय गाढ वनता गया था। गाधीजी श्रीमद्को आदर भावसे देखते थे। धीरे-धीरे श्रीमद्के प्रति इन्हे भक्तिभाव भी उत्पन्न हुआ था और इनके आध्यात्मिक तथा चरित्रशील जीवनका प्रभाव गाधीजीके चित्त पर इतना पडा कि, एकवार गाधीजीको भी हुआ था कि, 'मै इनको अपना गुरु वनाऊँ।'

५

श्री अम्बालाल लालचन्द

हम आगे देख चुके हैं कि श्री जूठाभाईने खंभातके श्री अम्बालालभाई आदिको श्रीमद्की बात की थी और उनके पत्र बताये थे। इससे अम्बालालभाई आदिको श्रीमद्के दर्शन करके प्रत्यक्ष समागम करनेकी तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई। श्री जूठाभाईने उन्हें सलाह दी कि प्रथम श्रीमद्की आज्ञा प्राप्तकर बादमें मिलनेके लिए जानेका विचार करना।

खंभात आकर अम्बालालभाई आदिने श्रीमद्को बम्बई पत्र लिखकर मिलनेके लिए आज्ञा माँगी। पाँचछ पत्रोंके बाद श्रीमद्ने आनेकी स्वीकृति दी। तब त्रिभोवन-भाईके साथ अम्बालालभाई बम्बई गये और श्रीमद्से मिले।

इसके बाद अम्बालालभाईकी विनतीसे श्रीमद् सं १९४६के आश्विन मासमें खंभात आये। श्री लालचन्दभाई श्रीमद्को स्थानकवासी उपाश्रयमें ले गये। मुनि श्री लल्लूजी महाराज आदि मुनियोंको भी श्रीमद्का यहाँ प्रथम परिचय हुआ था।

अम्बालालभाई श्रीमद्से दो वर्ष छोटे थे। वे पूर्वके संस्कारी, उत्तम क्षयोपशमवाले, सेवाभावी और गुरुनिष्ठ भक्तिभाववाले थे।

सं १९४६के समागम बाद उनका जीवन श्रीमद्मय बन गया था। श्रीमद्के साथ उनका पत्र-व्यवहार निरन्तर चालू रहा था। श्रीमद्के उपदेश अनुसार उन्होंने अपना समय बिताकर जीवनको श्रेयमार्गमें लगाया था। प्रत्येक

वात वे श्रीमद्से पूछते और जैसी आज्ञा मिलती वैसा करते थे। इस प्रकार थोडे ही समयमे अम्वालालभाई श्रीमद्के एक अन्तेवासी समान वन गये थे।

श्रीमद् जिस समय चरोतरमे आते उस समय वे इनके साथ रहकर सभी व्यवस्था करते थे। श्रीमद्के साथ जो अन्य मुमुक्षु आते उनकी भी अम्वालालभाई तन-मन और धनसे निष्ठापूर्वक सेवा करते थे।

श्रीमद् जो उपदेश करते उसे अम्वालालभाई आठवे दिन भी अक्षरश लिख सकते थे ऐसी उनकी धारणा-शक्तिकी प्रशसा श्रीमद्जी स्वय करते थे। स १९५२मे काविठा, रालज, वडवा, खभात, आणन्द, नडियाद आदि स्थानोमे हुआ श्रीमद्का वोध, जो 'उपदेश छाया'के नामसे 'श्रीमद् राजचन्द्र' ग्रन्थमे प्रकाशित हुआ है, वह अम्वालालभाईका ही लिखा है, और जो श्रीमद्की दृष्टिमे भी आ चुका है।

जिस समय नडियादमे श्रीमद्की स्थिति थी उस समय एक दिन शामको श्रीमद्ने आत्मसिद्धि लिखना प्रारम्भ किया। अविराम रूपसे १४२ दोहे डेढ घण्टेमे लिख डाले। उस समय अम्वालालभाई पासमे लालटेन लेकर खडे रहे थे। श्रीमद्ने इसकी चार प्रतिलिपि करनेको और योग्य जीवोको भेजनेके लिए अम्वालालभाईसे कहा।

तथा श्रीमद्के पत्र जहाँ-जहाँ थे वहाँसे मगाकर उनकी प्रतिलिपि करनेका काम भी श्रीमद्की आज्ञासे अम्वालाल-भाईने शुरू किया था। उनकी प्रतिलिपि तैयार करके रखते और जिस मुमुक्षुको भेजनेके लिए श्रीमद् लिखते उसे वे

भेजते थे।

श्रीमद्के अनेक पत्रोमेंसे अध्यात्म-लेखोंके विषयकी एक पुस्तक अम्बालालभाईने तैयार की थी, जिसमे श्रीमद्ने स्वय देखकर उचित फेरफार कर दिये थे।

इसके सिवाय सस्कृत, मागधी, हिंदी, गुजरातीकी आवश्यक पुस्तकोकी प्रतिलिपि करनेके लिए श्रीमद् अम्बालाल-भाईको भेजते और अम्बालालभाई उन पुस्तकोकी प्रतिलिपि करके योग्य मुमुक्षुओंको आज्ञानुसार पढनेके लिए भेजते।

अम्बालालभाई प्रतिदिन सामायिक लेकर बैठते और लेखन-कार्य एकचित्तसे करते। साथ-साथ सस्कृत तथा कर्मग्रन्थ इत्यादि शास्त्रोका अभ्यास भी वे करते जाते थे। सक्षेपमे कहे तो, अम्बालालभाई खूब ही कार्यदक्ष, आज्ञाकित और आत्मार्थी थे।

स १९५७के माह-फालगुनमे अम्बालालभाई* अपने छोटेभाई नगीनदास मगनलालके साथ वढवाण श्रीमद्की सेवामे एक मास रहे थे। श्रीमद्ने उनको घर जानेकी आज्ञा की उसे मान्यकर वे खभात आये।

श्रीमद्के देहोत्सर्गके बाद अम्बालालभाईने 'वचनामृत' प्रकाशित करनेमे श्रीमद्के छोटे भाई श्री मनसुखभाईको सहायता की थी।

* अम्बालालके पिताका नाम मगनलाल था। परन्तु उनके मातामह लालचन्दके कोई पुत्र नहीं था, इससे लालचन्दने अम्बालाल-भाईको दत्तक लिया था। इस कारण वे अम्बालाल लालचन्दके नामसे पहचाने जाते थे।

श्रीमद्के अवसानके बाद मुनिश्री लल्लुजी तथा अम्बालालभाई अन्योन्य सलाह लेकर चलते थे। सं १९५८मे अम्बालालभाई श्री लल्लुजी मुनिका समागम करनेके लिए दक्षिण हिंदमे करमाला गये थे।

अन्तमे प्लेग लागू पडनेसे अम्बालालभाई समाधि सहित सं १९६३की चैत्र वदी बारसको खंभातमे मात्र सैंतीस वर्षकी आयुमे स्वर्गवासी हुए।

६

मुनिश्री लल्लुजी महाराज—लघुराज स्वामी

श्रीमद्को मन, वचन, काया अर्पणकर उनकी आज्ञामे तन्मयतापूर्वक समस्त जीवन व्यतीत कर मोक्षमार्गका सफलतासे यदि उद्योत किया हो तो वे मुनिश्री लल्लुजी (श्री लघुराज स्वामी) ही थे।

श्री लल्लुजीका जन्म भाल प्रदेशके वटामण गाँवमे सं १९१०के आश्विन वदी एकमके दिन प्रतिष्ठित वेलाणी भावसार कुटुम्बमे हुआ था। पिताका नाम कृष्णदास और माताका नाम कसलाबा था। जन्मसे पहले ही पिताका अवसान हुआ था, तथा चार माताओंके बीचमे एक ही पुत्र होनेसे अत्यन्त लाडमे वे पले थे।

थोडा पढकर उन्होंने स्कूल छोड दिया था। युवावस्थामे उन्होंने दो बार शादी की थी, परन्तु एक भी पुत्र नही हुआ। वहाँ तो अचानक उन्हे पाडु रोग हुआ। अनेक उपचार किये, परन्तु वह नही मिटा, और धर्मके संस्कार जगे, उससे संकल्प किया कि यदि रोग मिट जायगा तो

दीक्षा धारण करूँगा।

रोग दूर हुआ और वे दीक्षा लेनेके लिए तत्पर हुए। परन्तु उनकी माताने पुत्र जन्मके बाद दीक्षा लेनेकी आज्ञा देनेको कहा। इसके बाद पुत्रका जन्म हुआ और वह एक महीनेका हुआ तब देवकरणजी नामके अपने भतीजेके साथ स १९४०मे खभात स्थलमे श्री हरखचन्दजी मुनिके हाथसे दीक्षा ली।

दीक्षा लेनेके पश्चात् वे शास्त्रोका पठन-पाठन करने लगे तथा उन्होने एकान्तर उपवास आदिका उग्र पुरुषार्थ प्रारम्भ किया। श्री लल्लुजी विवेकी और विनयशील होनेसे गुरु तथा अन्य सभी साधुओको मान्य हुए। परन्तु उन्होंने जो आत्माकी शान्तिकी प्राप्तिकी इच्छा की थी, वह उन्हे न मिली तथा शास्त्रोको वाचते हुए कितनी ही शकाये उठती, उनका भी समाधान नही होता था। इस प्रकार पॉच वर्ष व्यतीत हो गये।

हम आगे देख चुके हैं कि श्री जूठाभाईके साथ अम्बालाल आदि भाइयोका परिचय हुआ था और उनके पाससे उन्होने श्रीमद्के पत्रोकी प्रतिलिपि कर ली थी।

ये भाई स्थानकवासी सम्प्रदायके थे, इससे वे प्रतिदिन उपाश्रय जाते और किसी एकान्त जगहमे बैठकर श्रीमद्के पत्रोको वाचते-विचारते थे। परन्तु वे लोग वहाँ होनेवाले व्याख्यानमे नही जाते थे।

एक दिन अम्बालाल आदि भाई श्रीमद्के पत्रोको पढ रहे थे, उस समय खभात सघके मुख्य आचार्य

श्री हरखचन्दजी महाराज उपाश्रयके मेडेपर व्याख्यानमे 'भगवती सूत्र' वॉच रहे थे, और नीचे श्री लल्लुजी महाराज एक शास्त्राभ्यासी पाटीदार भाई दामोदरभाईके साथ ऊपर पढे गये 'भगवती सूत्र'के पृष्ठ वाचते थे। उसमें एक ऐसी बात आई कि 'भवस्थिति पके तब मोक्ष होता है।' इस परसे श्री लल्लुजी महाराजको आशका हुई कि 'यदि ऐसा ही है तो फिर मोक्षके लिए प्रयत्न करनेकी क्या आवश्यकता है?' उन्हे इस आशकाका कुछ सन्तोष-कारक खुलासा न मिला। इस सम्बन्धमे उस भाईके साथ विचार कर रहे थे। इतनेमे उनकी दृष्टि एक ओर बैठकर बाते करनेवाले अम्बालाल आदिकी ओर गई। इससे उन्होंने धर्मस्नेहपूर्वक उपालभ देते हुए कहा—'वहॉं बैठकर क्या करते हो? व्याख्यानमे ऊपर क्यो नही जाते? ऊपर जाओ अथवा यहॉं आकर बैठो।'

यह सुनकर वे सभी श्री लल्लुजी महाराजके समीप जाकर बैठे। और 'भवस्थिति वाला प्रश्न चल रहा था, उसका यथार्थ स्पष्टीकरण न हुआ, इससे अम्बालालभाईने श्री लल्लुजी महाराजसे श्रीमद्की बात की कि 'वे सकल आगमोके ज्ञाता है, उत्तम पुरुष है और यहॉं खभातमे पधारनेवाले है।'

श्री लल्लुजी महाराजने जिज्ञासापूर्वक पूछा—हमारा उस पुरुषसे मिलाप कराओगे? अम्बालालने 'हॉं' कहा।

श्रीमद् राजचन्द्र सं. १९४६मे खभात पधारे। उनका निवास अम्बालालभाईके यहाँ था। वे उन्हे उपाश्रयमे ले

गये। वहाँ श्रीमद्के श्री हरखचन्दजी मुनिके साथ प्रश्नोत्तर हुए और सभीको उनके खुलासेसे शान्ति हुई तथा सभी श्रीमद्की कुशाग्र विशाल प्रज्ञाकी प्रशसा करने लगे।

श्री लल्लुजीने श्री हरखचन्दजी महाराजसे पूछा—'मै इनसे कुछ अवधारूँ?'

श्री हरखचन्दजी महाराजकी आज्ञा मिली, इससे श्री लल्लुजीने श्रीमद्से ऊपर पधारनेकी विनती की। श्री लल्लुजीने ऊपर जाकर श्रीमद्को उत्तम पुरुष जानकर नमस्कार किया। श्री लल्लुजी श्रीमद्से चौदह वर्ष वडे थे और उस समय श्रीमद्की उम्र वाईस वर्षकी ही थी।

इस प्रकार, श्रीमद्से चौदह वर्ष वडे, धनाढ्य कुटुम्वके एकलौते पुत्र होने पर भी सर्वस्वका त्याग कर, अन्य तीन पहचानवाले कुटुम्बियोके साथ दीक्षित, उस समय खभातके सघमे केवल चार ही साधु रहे थे उसकी दुगुनी सख्या करनेवाले और विनयादि गुणोसे आचार्यको प्रसन्न कर सर्व साधुओमे पॉच छ वर्षमे प्रधानपद प्राप्त करनेवाले, तथा उनकी दीक्षा लेनेके वाद उस सघमे चौदह साधु हो जानेसे वे उत्तम चरणवाले माने जानेवाले मगलकारी तथा भद्रिक ये मुख्य साधु श्री लल्लुजी, केवल वाईस वर्षकी अवस्थावाले, युवावस्थामे प्रवेश करनेवाले गृहस्थको नमस्कार करे यह कुछ ऐसा-वैसा सामान्य प्रसग नही ही माना जाता।

श्रीमद्ने श्री लल्लुजीसे पूछा 'तुम्हारी क्या इच्छा है?'

श्री लल्लुजीने विनयपूर्वक हाथ जोडकर कहा 'समकित (आत्माकी पहचान) और ब्रह्मचर्यके दृढत्वकी

मेरी माँग है।'

श्रीमद् थोडी देर मौन रहे और फिर कहा 'ठीक है।' यो कहकर उन्होने श्री लल्लुजीके दाहिने पैरका अगूठा खीचकर परीक्षा की, और उठकर वे नीचे गये।

घर जाते समय श्रीमद्ने अम्बालालसे कहा 'यह पुरुष सस्कारी है। इन रेखाओवाला पुरुष ससारमे उत्तम पदको पाता है, धर्ममे आत्मज्ञानी मुनि होता है।'

दूसरे दिन तो श्री लल्लुजी स्वय ही अम्बालालभाईके घर श्रीमद्के समागमके लिए आये। वहाँ एकान्तमे श्रीमद्ने उनसे पूछा—'तुम हमारा क्यो आदर-सत्कार करते हो?'

श्री लल्लुजीने नम्रतासे कहा—'आपको देखकर मुझे अत्यन्त हर्ष-प्रेम आता है। मानो आप हमारे पूर्वके पिता हो इतना प्रेम-भाव आता है। किसी प्रकारका भय नही रहता। आपको देखकर कोई अलौकिक निर्भयता आत्मामे आती है।'

श्रीमद् खभातमे सात दिन रहे। वहाँ तक रोज श्री लल्लुजी उनके समागमके लिए मुकाम पर जाते थे।

इसके वाद श्री लल्लुजी प्रसगानुसार श्रीमद्का समागम करते रहे। श्री लल्लुजीके शिष्य श्री देवकरणजी भी इनके साथ श्रीमद्का समागम करने लगे। वे भी श्रीमद्के प्रति आर्कर्षित होते रहे।

श्रीमद् अपनी व्यापारिक प्रवृत्तिमेसे वीच-वीचमे निवृत्ति लेकर थोडे समय एकान्तमे रहनेके लिए वम्वई छोडकर

भिन्न-भिन्न स्थलोमे जाते। उस समय श्री लल्लुजी, श्री देवकरणजी आदि साधु उस अरसेमे उन-उन स्थलो पर उपस्थित रहते अथवा आकर उनका समागम करते, इस वातको हम गत प्रकरणमे देख चुके है।

अन्तिम दिनोमे श्रीमद् कुछ समय अहमदावाद रहे थे, उस समय उन्होने श्री लल्लुजीको बुलाकर, अत्यन्त उपदेश देकर कहा कि, 'हममे और वीतरागमे भेद न मानना। तुम किसीके पास मत जाना, अन्य लोग तुम्हारे पास आयेगे। दु षमकाल है, इस लिए जडभरत जैसे होकर विचरना। ऋद्धि-सिद्धि प्रगटेगी उनकी अवहेलना करना। इस कालके जीव पक्व आरियाके समान है, कडाई (सख्ती) नही सहन कर सकेगे, इस कारण लघुता धारणकर यदि कल्याणमूर्ति वनोगे तो तुमसे अनेक जीवोका कल्याण होगा।' श्रीमद्ने दूसरे मुमुक्षुओसे भी मुनिश्री लल्लुजीके दो-दो मास समागम करनेका अनुरोध किया था।

श्रीमद्के देहोत्सर्गका समाचार श्री लल्लुजीको दूसरे दिन सवेरे जव काविठामे मिला उस समय पचमी और छठ्ठका उपवास करके गाँवके वाहर खेतमे कायोत्सर्गमे रहे थे।

इसके वाद दक्षिणमे करमाला, उत्तरमे वडाली और चरोतरमे चातुर्मास रहकर आस-पासके गाँवोमे विहार करके विचरते थे।

अन्तमे जूनागढ और वगसरा रहकर स १९७४मे नार गाँवमे चौमासा किया। स १९७५की कार्तिक पूर्णिमाको

वे सन्देसर पधारे। इन दो वर्षोमे जहाँ-जहाँ श्री लल्लुजी स्थिरता करते वहाँ दूर-दूरसे मुमुक्षु उनका समागम करनेके लिए एकत्रित होते। उनके समागमका निरन्तर लाभ मिला करे इसके लिए अगास स्टेशनके समीप एक आश्रमकी स्थापना की गई।

स १९८०मे श्री लल्लुजी—लघुराज स्वामी श्री सम्मेद शिखरकी यात्रासे आकर पूनामे चातुर्मास करनेके लिए पधारे थे वहाँ वहुतसे मुमुक्षु आये थे। उस समय उन्होने सवको कृपालुदेव श्रीमद् राजचन्द्रकी मान्यता पर लाकर सच्चा मार्ग वताया था। तत्पश्चात् दक्षिणकी तीर्थयात्रा करके दो महीने पेथापुर रहकर चैत्र मासमे अगास आश्रममे पधारे थे। इसके वादके ग्यारह चौमासे अगास आश्रममे ही किये थे।

अन्तमे स १९९२मे वैशाख सुदी अष्टमीकी रातको अगास आश्रममे लघुराज स्वामीने समाधि सहित देह-त्याग किया।

* * *

यहाँ हम श्रीमद्के पुनीत समागममे आनेवाले थोडेसे मनुष्योके विषयमे ही देख चुके है। इसके ऊपरसे, श्रीमद्के प्रेरक समागमसे, सद्गुरुकी प्राप्तिसे मनुष्यके जीवनमे कैसा आमूलाग्र परिवर्तन होता है उसके जीवनको कैसा सत्य मार्ग मिलता है इसका विचार आ सकता है। श्रीमद्के

परिचयमे आनेवाले मनुष्य यथार्थमे भाग्यशाली हैं। कृपालु-देवने इन मनुष्योके जीवनमे कैसा महत्त्वका भाग लिया है, इस सम्बन्धके सस्मरणोको पढनेसे एक ही स्वर मनमे गूज उठता है

'अहो! अहो! श्रीसद्‌गुरु, करुणासिन्धु अपार,
आ पामर पर प्रभु कर्यो, अहो! अहो! उपकार,'

(आत्मसिद्धिशास्त्र, १२४)

१३

श्रीमद्के प्रेरक प्रसग

महापुरुषोका जीवन अमृतके स्रोत समान होता है। ससारके दु खतापसे तप्त हुए जीव इस झरनेमेसे सुधापान कर अपनी तृषा शान्त करते है और शान्तिका अनुभव करते है। अर्थात् आस-पाससे मुमुक्षु, मोक्षार्थी, श्रेयार्थी मनुष्य महापुरुषकी, सन्त महात्माओकी शरण खोजते है, और अपने दुविधावाले प्रश्नोका निराकरण प्राप्त करते है।

महावीर स्वामी, भगवान वुद्ध, ईशु खिस्त, महमद पैगम्वर साहवसे लेकर श्री रामकृष्ण परमहस, महात्मा गाँधीजी तकके एक-एक पैगम्वर, सन्त, औलिया आदि महापुरुषोके जीवनमे ऐसे कितने ही प्रसग देखनेको मिलते है, जिनका वाचन, मनन, चिन्तन और अवगाहन हमलोगोको प्रेरणारूप होता है।

श्रीमद् राजचन्द्रजीके जीवनमेसे भी ऐसे कितने ही प्रसग जीवनके प्रेरक और मार्गदर्शक हो ऐसे है। यहाँ हम ऐसे थोडे प्रेरक प्रसगो पर दृष्टिपात करे। ये प्रेरक प्रसग वोधकथाये Parables जैसे सचोट असरकारक है।

१

एक वार श्रीमद् सुरत पधारे थे। वहाँ श्री देवकरणजी आदि मुनि उनके समागममे आये थे। देवकरणजीने श्रीमद्‌से प्रश्न पूछा—

'श्री लल्लुजी महाराज, मुझसे, जब मै व्याख्यान देकर आता हूँ, तव 'अभिमान किया' कहते है, ध्यान करता हूँ उसे तरगरूप कहते है, तो क्या वीतराग प्रभु श्री लल्लुजी महाराजका किया हुआ स्वीकारेगे और मेरा नही, ऐसे पक्षपाती होगे?'

श्रीमद्‌ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया

'स्वच्छन्दतासे जो-जो किया जाता है वह सव कुछ अभिमान ही है, असत्साधन है, और सद्‌गुरुकी आज्ञासे जो किया जाता है वह कल्याणकारी धर्मरूप सत्साधन है।'

२

श्रीमद् खभातमे प्रथम वार सात दिन रहे थे। उस समय श्री लल्लुजी महाराज प्रतिदिन श्रीमद्‌के समागमके लिए उनके निवासस्थान पर जाते थे।

एक दिन श्री लल्लुजी महाराजने कहा

'मै ब्रह्मचर्य पालनके लिए पॉच वरससे एकान्तर उपवास करता हूँ और ध्यान आदि करता हूँ, फिर भी मानसिक पालन वरावर नही हो पाता!'

श्रीमद् राजचन्द्रने कहा

'लोकदृष्टिसे (ये सव) नही करना। लोकको दिखानेके लिए तपश्चर्या नही करना। स्वादका त्याग हो

तथा पेट कुछ खाली रहे इस प्रकारसे आहार लेना। यदि स्वादिष्ट आहार हो तो वह दूसरेको दे देना।'

३

श्री लल्लुजी महाराजने एक वार श्रीमद्‌से कहा

'मैं जो-जो देखता हूँ, वह भ्रम है, असत्य है—इस प्रकारका अभ्यास करता हूँ।'

श्रीमद् बोले—

'आत्मा है, ऐसा देखा करो।'

४

एक वार श्रीमद् काविठा गाँवमे निवृत्तिके लिए रहे थे, उस समय मुनिश्री मोहनलालजीने श्रीमद्‌से पूछा

'मन स्थिर नही रहता, तो उसका क्या उपाय?'

श्रीमद् बोले

'एक क्षण भी व्यर्थ न जाने देना। कोई अच्छी पुस्तक, जिससे वैराग्यादिकी वृद्धि हो, पढना-विचारना। ये कुछ न हो तो फिर माला जपना। परन्तु यदि मनको बेकाम रखोगे तो वह क्षण भरमे सत्यानाश कर देगा। इसलिए उसे सद्‌विचाररूप खुराक देना।

'जैसे ढोरको कुछ न कुछ खानेको चाहिए ही—खलीकी टोकरी सामने रखी हो तो वह खाता रहे—वैसी ही मनकी स्थिति है। अन्य विकल्पोको रोकना हो तो उसे सद्-विचाररूप खुराक देना।

'मन कहे उससे उलटा चलना, उसके वश होकर खिच नही जाना।'

५

श्रीमद् वसो गाँवमे निवृत्तिके लिए कुछ दिन रहे थे, उन समय वसोसे एक मील दूर गोचर भूमिमे श्री लल्लुजी आदि मुनियोके साथ थोडा समय व्यतीत कर उन्हे सद्-बोध देते थे।

एक दिन गोचरमे श्री लल्लुजीके साथ चलते-चलते श्रीमद् बोले

'धर्म अचिन्त्य चिन्तामणि स्वरूप है।'

श्री लल्लूजीने पूछा

'अचिन्त्य चिन्तामणिका क्या अर्थ?'

श्रीमद्ने कहा

'चिन्तामणि रत्न चिन्तवन करनेसे फल देता है, उसमे चिन्तवन जितना परिश्रम है, परन्तु धर्म 'अचिन्त्य' अर्थात् उसमे चिन्तवन जितना भी श्रम नही है ऐसा अचिन्त्य फल देता है।'

६

एक दिन श्रीमद्ने मुनिश्री चतुरलालसे पूछा

'जबसे तुमने सयम किया तबसे आजतक क्या किया?'

श्री चतुरलालजीने कहा

'सवेरे चायका पात्र भर लाता हूँ, उसे पीता हूँ, इसके बाद नास माँग लाता हूँ और सूँघता हूँ। तत्पश्चात् आहारके समय आहार-पानी माँग लाता हूँ और आहार करके सो जाता हूँ। शामको प्रतिक्रमण करके आरामसे निद्रा लेता हूँ।'

श्रीमद्ने विनोदमे कहा

'चाय और नास मॉग लाना तथा आहार-पानी करके सो जाना क्या इसका नाम दर्शन, ज्ञान और चारित्र?'

पश्चात् योग्य उपदेश देकर श्रीमद्ने श्री लल्लुजी महाराजको अनुरोध करते हुए कहा

'दूसरे साधुओका प्रमाद छुडाकर, पढने तथा बाँचनेमे, स्वाध्याय, ध्यान आदि करनेमे काल व्यतीत कराना और तुम लोगोको दिनमे एक बार आहार करना चाहिए, चाय और नास विना कारणके हमेशा नही लाना। तुम सस्कृतका अभ्यास करना।'

इससे मुनि मोहनलालजीने कहा

'महाराजश्री तथा श्री देवकरणजीकी अवस्था हो गई है और पढनेका योग भी कहाँसे वने?'

श्रीमद् वोले

'योग वन आनेसे अभ्यास करना और वह हो सकता है। क्योकि विक्टोरिया रानीकी वृद्धावस्था है फिर भी वह अन्य देशोकी भाषाका अभ्यास करती है।'

७

एक समय गाँधीजी इग्लैडके मुख्य मत्रीकी पत्नी मिसिस ग्लॅडस्टनकी उसके पतिप्रेमकी स्तुति श्रीमद्के सन्मुख करने लगे। गाँधीजीने कही पढा था, प्रतिनिधियोकी सभामे भी मिसिस ग्लॅडस्टन अपने पतिको चाय वनाकर पिलाती थी। इस वस्तुका पालन यह नियमवद्ध दम्पतीके जीवनका एक नियम बन गया था।

श्रीमद् यह सुनकर बोले

'इसमे तुमको क्या महत्त्व दिखाई देता है? इसमे मिसिस ग्लॅडस्टनका पत्नीभाव या उनका सेवाभाव? यदि वह बाई ग्लॅडस्टनकी बहिन होती तो? अथवा उसकी स्वामीभक्त नौकरानी होती और उतने ही प्रेमसे चाय पिलाती तो? ऐसी बहनो और ऐसी नौकरानियोके दृष्टान्त क्या हमको आज नही मिलेगे? और नारीजातिके बदले ऐसा प्रेम नरजातिमे देखते तो तुमको सानदाश्चर्य न होता? मै जो कहता हूँ उसे सोचना।'

इस प्रसगके विषयमे गाँधीजी लिखते है

'रायचन्दभाई स्वय विवाहित थे। उस समय तो मुझे उनका वचन कठोर लगा ऐसा स्मरण है, परन्तु उस वचनने मुझे लोहचुम्बकके समान पकड लिया। पुरुष-नौकरकी ऐसी स्वामिभक्तिकी कीमत पत्नीकी स्वामिभक्तिसे हजारगुना विशेष है, पति-पत्नीके बीचमे ऐक्य हो — अर्थात् उन दोनोमे प्रेम हो, इसमे आश्चर्य नही है। नौकर और सेठके बीचमे वैसा प्रेम सीखना पडता है। प्रतिदिन कविके वचनका बल मुझमे बढता दिखाई दिया।'

८

बम्बईमे एक बार श्रीमद् राजचन्द्र और गाँधीजी दया-धर्मकी बाते कर रहे थे। चमडेका उपयोग करना चाहिए या नही, इसका विचार चल रहा था। अन्तमे दोनो इस मत पर आये कि चमडे बिना तो नही चल सकता। खेती जैसे उद्योग तो चलने ही चाहिए। परन्तु और नही तो

चमडा सिर पर तो नही पहने।

गॉधीजीने जरा छान-वीन करते हुए श्रीमद्से कहा

'तुम्हारे सिरकी टोपीमे क्या है?'

श्रीमद् स्वय तो आत्मचिन्तनमे लीन रहनेवाले थे। स्वय क्या पहिनते है, क्या ओढते है, इसका विचार करने वे नही बैठते थे। सिरकी टोपीमे चमडा है, यह उन्होने नही जाना था। गाधीजीने कहा और उन्होने तुरन्त टोपीमेसे चमडा निकालकर फेक दिया।

इस प्रसगके विषयमे गाधीजी लिखते है

'मुझे कुछ ऐसा नही लगता कि मेरा तर्क इतना प्रवल था कि उन्हे इतना असर करे। उन्होने तो कोई दलील ही नही की। उन्होने विचारा होगा कि इनका हेतु उत्तम है, मुझ पर पूज्यभाव रखते है, इनके साथ चर्चा क्या करूँ? उन्होने तो शीघ्र ही चमडा निकाल डाला।

'इसमे ही महापुरुषोका महत्त्व है। उनमे मिथ्याभिमान नही होता, यो यह प्रसग सिद्ध करता है। वालकसे भी वे सीख लेनेको तैयार रहते है। वडे मनुष्य छोटी वावतोमे मतभेद नही रखते।'

९

बम्वईमे श्रीमद्के एक व्यापारी पडोसीने श्रीमद्के अतिशय और स्वाध्यायका रग देखकर एक वार पूछा

'तुम सारे दिन धर्मकी धुनमे रहते हो, तो वाजारमे सभी चीजोका क्या भाव होगा यह पहलेसे जान सकते होगे?'

श्रीमद्ने कहा

'क्या हमारे दिन रूठे है जो भाव जाननेके लिए स्वाध्याय करे!'

१०

पदमशीभाई नामके एक कच्छीभाईने बम्बईमे श्रीमद्से पूछा

'साहब, मुझमे भयसज्ञा विशेष रहती है, उसका क्या उपाय?'

श्रीमद्ने सामने प्रश्न पूछा

'मुख्य भय किस बातका रहता है?'

पदमशीभाईने कहा—

'मरणका।'

इससे श्रीमद् राजचन्द्र बोले

'वह तो आयुके बन्ध अनुसार होता है। आयुकी सम्पूर्णता तक तो मरण नही है, तब अनेक प्रकारका भय करनेसे क्या होने वाला है? ऐसा दृढ मन रखना।'

११

एक जिज्ञासुने श्रीमद्से प्रश्न किया

'शास्त्रमे पृथ्वीको सपाट कहा है और आजकल अन्वेषक गोल कहते है, इसमे कौन-सी बात सत्य है?'

श्रीमद्ने उससे प्रश्न किया

'यदि पृथ्वी सपाट हो तो तुमको लाभ या गोल हो तो तुमको लाभ?'

जिज्ञासुने कहा 'मै यही जानना चाहता हूँ।'

श्रीमद्ने फिर पूछा

'तुम भगवान् तीर्थंकरमे अधिक शक्ति मानते हो या आजकलके शोधकोमे?'

जिज्ञासुने प्रगट किया—'श्री तीर्थंकर भगवानमे।'

श्रीमद् बोले

'तो तीर्थंकर भगवानके वचनोमे श्रद्धा रखो और अपनी शका निकाल डालो। यदि आत्माका कल्याण करोगे तो, तुमको पृथ्वी सपाट या गोल जैसी भी होगी, वह कुछ नुकसान नही करेगी।'

१२

प्रो रवजीभाई देवराजजीने श्रीमद्से प्रश्न किया

'स्वर्ग-नरकका प्रमाण क्या?'

श्रीमद् बोले—

'नरक हो और तुम न मानो, तो जिन कामोसे मनुष्य नरकमे जाता है, वैसे काम यदि करो तो यह कितना दु साहस है?'

१३

खभातवाले श्री त्रिभोवनदासभाई वम्वई जाते तव श्रीमद्का समागम करने उनके घर पर जाते थे।

एक समय श्रीमद्ने अपनी पुत्री काशीवहिन, जो तीन वर्षकी थी, उसे खिलाते हुए पूछा 'तू कौन है?'

काशीवहिनने कहा—'मै काशी हूँ।'

श्रीमद्ने कहा—'नही, तू तो आत्मा है।'

काशीवहिन वोल उठी—'नही, मै तो काशी हूँ।'

इतनेमे श्री त्रिभोवनदासभाई वहाँ आ पहुँचे। श्रीमद्‌ने उनसे कहा

'इसे अभी तीन वर्ष भी पूरे नही हुए है। मेरा नाम काशी है, इस समझके सस्कार तो थोडे समयके है, फिर भी इसे हम कहते है कि तू आत्मा है, तो यह कहती है कि नही, मै तो काशी हूँ। ऐसी बाल-दशा है।'

१४

दिगम्बर पण्डित श्री गोपालदासजी बरैयाने एक समय श्रीमद् दिगम्बर मन्दिरमे स्वाध्याय कर रहे थे उस समय कहा

'"गोमट्टसार"के अनुवादमे जो त्रुटियाँ मालूम देती है, उन्हे आप पूर्ण कर देगे?'

श्रीमद् बोले

'हम तो शास्त्र मात्र आत्माके लिए बाचते है।'

१५

एक समय मुनीश्री लल्लुजीने बातचीतमे श्रीमद्‌से कहा

'मैंने साधनसम्पन्न कुटुम्ब, वैभव, वृद्ध माता, दो स्त्रियाँ, एक पुत्र आदिका त्याग कर दीक्षा ली है।'

उनके त्यागके गर्वको दूर करनेके लिए श्रीमद् गरजकर बोल उठे

'क्या छोडा है? एक घर छोडकर कितने घर (श्रावकोके) गले डाले है? इन दो स्त्रियोका त्याग कर कितनी स्त्रियोके प्रति दृष्टि घूमती है? एक पुत्र छोडकर

कितने लडकोके प्रति प्रीति होती है?'

यह सुनकर श्री लल्लुजीको अपने दोप प्रगट दिखाई देनेसे इतनी अधिक शर्म आई कि यदि पृथ्वी अवकाश दे तो उसमे समा जाये। ऐसी नम्रता प्रगट करते हुए मुनिश्रीने श्रीमद्से कहा

'मै त्यागी नही हूँ!'

वहाँ तो श्रीमद् राजचन्द्र बोले

'मुनि, अब तुम त्यागी हो।'

१६

मुनिश्री देवकरणजी श्रीमद्से जब प्रथम वार मिले उस समय उन्होने श्रीमद्को 'सूयडांग सूत्र'के वीर्याध्ययनकी बाईस-तेईसवी गाथा बताकर कहा—'जहाँ गाथामे "सफल" है यदि वहाँ "अफल" हो, और जहाँ "अफल" है वहाँ "सफल" हो तो गाथाका अर्थ बराबर बैठता है। तो क्या इन गाथाओमे लेखदोप है या वे बराबर है?'

जे अबुद्धा महाभागा वीरा असमत्तदसिणो।
असुद्ध तेसि परक्कत सफल होई सव्वसो॥
जे य बुद्धा महाभागा वीरा समत्तदसिणो।
सुद्ध तेसि परक्कत अफल होई सव्वसो॥

इन गाथाओको देखकर श्रीमद् बोले

'लेखदोप नही है, बराबर है। उसका भावार्थ ऐसा है कि, मिथ्यादृष्टिकी क्रिया "सफल" है—फल सहित है, अर्थात् उसमे पुण्य-पाप (रूपी) फल लगता है। सम्यग्-दृष्टिकी क्रिया "अफल" है—फल रहित है, उसमे फल

नही लगता अर्थात् निर्जरा होती है। एक (मिथ्यादृष्टि)की क्रिया ससारहेतुक फलवाली है और दूसरे (सम्यग्दृष्टि)की क्रिया ससारहेतुक फलवाली नही है। इस प्रकार परमार्थ समझना योग्य है।'

सभीको वह अर्थ रुचिकर हुआ। वहुत समयसे सशय रहा करता था, उसका समाधान हुआ। श्री देवकरणजीको लगा कि श्रीमद् महावुद्धिशाली है और जैसा श्री लल्लुजी कहते थे वह सत्य है।

१७

एक समय श्रीमद् ईडर पहाडके ऊपरकी एक विशाल शिला पर वैठकर श्री लल्लुजी आदि सात मुनियोके साथ ज्ञानवार्ता कर रहे थे। उस समय श्रीमद्‌ने उनके सामने एक प्रश्न उपस्थित किया 'हमलोग इतने ऊँचे पर वैठे है, तो क्या नीचेका कोई आदमी हमको देख सकता है?'

श्री लल्लुजी महाराजने कहा 'ना, नही देख सकता।'

इससे श्रीमद्‌ने कहा

'उसी प्रकार नीचेकी दशावाला जीव ऊँची दशावाले ज्ञानीका स्वरूप यथार्थ नही जान सकता। परन्तु यदि योग्यता आये तथा उच्च दशाको प्राप्त हो तो जान सकता है।'

१८

एक वार मुनिश्री मोहनलालजीने श्रीमद्‌से पूछा

'यदि कोई हमसे पूछे कि कौनसी प्रतिक्रमण करते हो, तो उस समय हमे क्या कहना चाहिए?'

श्रीमद्ने कहा

'तुमको कहना चाहिए कि पापसे निवृत्त होना हमारा प्रतिक्रमण है।'

१९

मोरवीका रहनेवाला लल्लु नामका एक नौकर वहुत वर्षोसे श्रीमद्के यहाँ काम करनेके लिए रहा था।

वम्वईमे उसे गाँठ निकली। उस समय श्रीमद् स्वय उसकी सार-सभाल रखते थे। अपनी गोदमे उसका सिर रखकर अन्त समय (मरण) तक उसकी उन्होने सेवा-टहल की थी।

एक समय श्रीमद्ने वार्तालाप करते हुए कहा था

'जव सेठ किसीको वेतन देकर नौकरके रूपमे रखता है, तव उससे वह सेठ नौकरके वेतनसे अधिक काम लेनेकी वुद्धि करता है। नौकरी करनेवाला मनुष्य गरीव स्थितिका होनेसे वह वेचारा व्यापारादि नही कर सकता। यद्यपि वह व्यापारादि कर सकता है, परन्तु धनके अभावमे नौकरी करता है।

'यदि सेठ नौकरके पाससे वेतनकी अपेक्षा विशेष लाभ प्राप्त करनेकी वुद्धि रखता है तो वह सेठ उस नौकरसे भी भीख माँगनेवाले जैसा पामर माना जाता है। सेठ यदि नौकरके प्रति ऐसी भावना रखे कि यह भी मेरे समान हो, सेठ उसे योग्य सहायता देता रहे, यदि उस पर कामका भार विशेप हो तो उस समय काममे सहायक वने इत्यादि दयाके भाव हो तो वह सेठ उत्तम माना जाता है।'

२०

एक दिन शामको भोजन करके श्रीमद् राजचन्द्र सेठ त्रिभुवनदास भाणजीके साथ वम्वईके चर्चगेट विस्तारमे आये हुए वैन्ड-स्टेन्डकी ओर घूमने गये थे।

वहाँ कितनी ही धर्मचर्चा करनेके वाद त्रिभुवनदास-भाईने प्रश्न किया

'एक जैनकी प्रामाणिकता कैसी होनी चाहिए?' उसके उत्तरमे श्रीमद्ने समीप आये हुए वम्वईके हाईकोर्टका वुर्ज वताते हुए कहा

'सामने दूर जो हाईकोर्ट दिखाई दे रहा है, उसमे वैठनेवाले न्यायाधीशकी जैसी प्रामाणिकता होती हे उससे एक जैनकी प्रामाणिकता कम तो नही होनी चाहिए। मतलव कि इसकी प्रामाणिकता इतनी अधिक विशाल होनी चाहिए कि उसके विषयमे किसीको किसी प्रकारकी शका न हो। इतना ही नही, परन्तु यदि उसे कोई अप्रामाणिक कहे तो सुननेवाला भी उस वातको सत्य न माने, ऐसी उसकी प्रामाणिकता सर्वत्र प्रसिद्ध होनी चाहिए।'

२१

एक समय सेठ त्रिभुवनभाई, श्री माणिकलाल आदि भोजन करनेके लिए वैठे थे। श्रीमद् भी उन लोगोके साथ भोजनमे थे।

पहले भिन्न-भिन्न प्रकारके शाक परसनेमे आये। एक गृहस्थने तिथिका कारण वताकर शाक नही लिया। रायता भी द्विदलका कारण वताकर नही लिया। वादमे अन्य

कितने ही खाद्य पदार्थ परसे गये। उनमेसे उन्होने कुछ लिए और कुछ नही लिए।

अन्तमे दूधपाक परसनेमे आया। उस गृहस्थकी थालीमे वह परसा जा रहा था, वहाँ तो उसे रोककर श्रीमद् बोले

'इन्हे दूधपाक मत परसो। इन्हे छोटी-छोटी वस्तुओका त्याग कर अपनी महत्ता बढानी है, परन्तु यथार्थमे रस-पोषक वस्तुका त्याग नही करना है।'

२२

एक दिन कितने ही भाई श्रीमद्के साथ नीचे गद्दी पर बैठकर धर्मचर्चा कर रहे थे। उस समय दामनगरके एक वणिक सेठ आरामकुर्सीमे पडेपडे बीडी पी रहे थे। उन्होने वहाँ बैठेबैठे कुछ चुटकुला सूझनेसे श्रीमद्से पूछा

'रायचन्दभाई—मोक्ष कैसे प्राप्त हो?'

श्रीमद्ने कहा

'तुम इस समय जिस स्थितिमे बैठे हो उसी स्थितिमे हाथ या पैर कुछ भी हिलाये-डुलाये विना स्थिर हो जाओ, तो तुम्हारा यहीसे सीधा मोक्ष हो जायगा।'

यह सुनकर सेठ साहव घवराकर खडे हो गये और बीडी वाहर फेककर, श्रीमद्के पास आकर धर्मवार्ता सुनने वैठ गये।

२३

एक वार काविठावाले शाह झवेरभाई भगवानभाईने श्रीमद्से पूछा

'*समकिती की पहचान कैसे हो?'

श्रीमद्ने कहा

'पहचानके लिए ज्ञानकी बहुत आवश्यकता है और चित्तकी निर्मलता चाहिए।'

२४

एक बार श्री व्रजभाई गगादास पटेल काविठामे उत्तर-सडा श्रीमद्का उपदेश सुनने और उनके दर्शन करने आये थे। उपदेश सुननेके लिए आये हुए गाँवके पाटीदारोने अपनी बराबरमे बैठे हुए व्रजभाईसे पूछा 'ये कौन है?'

व्रजभाईने कहा 'ववाणियाके सेठ है।'

इस बातकी कौन जाने श्रीमद्को कैसे खबर पड गई। श्रीमद्ने व्रजभाईको पास बुलाकर पूछा

'तुमने क्या कहा?'

व्रजभाईको तत्काल अपनी भूलका भान आया। श्रीमद् जैसे आध्यात्मिक पुरुषकी इस प्रकारसे पहचान नही कराई जाती यह बात उनके ध्यानमे आई। क्षमायाचना करते हुए वे बोले, 'मै भूल गया!'

२५

एक बार श्रीमद्ने व्रजभाईसे पूछा

'तुम्हे कौन-सा शाक अधिक अच्छा लगता है?'

व्रजभाईने कहा

'सेमकी फली।'

* जिसे समकित–सम्यग्दर्शन–आत्मज्ञान हुआ है ऐसा व्यक्ति।

श्रीमद् वोले

'सेमकी फली जीवनभर मत खाना।'

२६

श्रीमद् स १९५२मे पेटलादसे काविठा पधारे थे।

एक दिन झवेरभाईके छज्जे पर श्री प्रागजीभाई नामके एक भाईने श्रीमद्का उपदेश सुनकर उनसे कहा

'भक्तिकी तो वहुत इच्छा है, परन्तु भगवानने पेट दिया है, उसे खानेको चाहिए इस लिए क्या करे, लाचार है।'

श्रीमद्ने पूछा

'तुम्हारे पेटको हम उत्तर दे तो?'

यो कहकर श्रीमद्ने झवेरभाई सेठसे अनुरोध करते हुए कहा

'तुम जो भोजन करते हो, वह इन्हे दोनो समय देना और पानीकी मटकी दे देना। और ये इस उपाश्रयके मेडे पर वैठेवैठे भक्ति करते रहे, परन्तु शर्त इतनी कि नीचे किसीकी वरयात्रा निकलती हो अथवा स्त्रियाँ गीत गाती हुई जाती हो तो भी वाहर न देखे। ससार सम्बन्धी वाते न करे। कोई भक्ति करने आये तो भले आये, परन्तु और किसी प्रकारकी वातचीत न करे तथा न सुने।'

यह सुनकर प्रागजीभाई वोल उठे

'इस प्रकार तो हम नही रह सकते।'

इससे श्रीमद् वोले

'इस जीवको भक्ति नही करना है, इससे पेटको सामने धरता है। भक्ति करनेसे कौन भूखो मरा है? जीव

इस प्रकार ठगा जाता है।'

२७

ईडरके पहाड़ पर श्रीमद् सात मुनियोंसे ज्ञानवार्ता करते थे उस समय एक दिन श्रीमद्का अद्भुत वैराग्यप्रेरक उपदेश सुनकर आत्मोल्लासमें आकर श्री देवकरणजी महाराज बोल उठे: 'अब हमें गाँवमें जानेकी क्या आवश्यकता है?'

श्रीमद्ने कहा: 'तुमसे कौन कहता है कि गाँवमें जाओ?'

श्री देवकरणजीने कहा 'क्या करें? पेट लगा है।'

यह सुनकर श्रीमद्ने कहा

'मुनियोंका पेट जगतके कल्याणार्थ है। यदि मुनियोंके पेट न होता तो वे गाँवमें न जाकर पहाड़ोंकी गुफामें रह-कर केवल वीतरागभावपूर्वक जगलमें विचरते। इस प्रकार वे जगतको कल्याणरूप नहीं होते। इस लिए मुनिका पेट जगतके हितके लिए है।'

२८

एक समय कांविठाके विद्यार्थी जंगलमें उपदेश सुननेके लिए आये थे।

श्रीमद्ने उनसे पूछा: 'बालको, मैं एक प्रश्न पूछता हूँ तुम लोग उसका उत्तर दोगे?'

विद्यार्थियोंने कहा. 'हाँ जी।'

श्रीमद्ने कहा: 'तुम्हारे एक हाथमें (छाछ) मट्ठेका भरा हुआ लोटा हो और दूसरे हाथमें घीका भरा लोटा हो और तुम्हें मार्गमें जाते हुए किसीका धक्का लगे तो उस समय तुम किस हाथके लोटेको सम्भालोगे?'

गिरधर नामके लडकेने कहा 'घीका लोटा सभालेगे।'

श्रीमद्ने पूछा 'क्यो, घी और मट्ठा तो एक ही मे से उत्पन्न होते है न?'

विद्यार्थीने कहा 'यदि मट्ठा गिर जाय तो कोई भी अनेक बार भर देगा, परन्तु घीका लोटा कोई नही भरेगा।'

इस परसे श्रीमद् सार समझाते हुए बोले

'मट्ठे जैसा ही यह देह है, इसे यह जीव सभालता है और घीकी तरह यह आत्मा है, उसकी यह चिन्ता नही करता, ऐसी उल्टी बुद्धिवाला यह जीव है। परन्तु यदि आत्माको घीके समान मूल्यवान माने तो आत्माको भी सभाले और आपत्ति आये तब मट्ठेके समान देहकी चिन्ता न करे। कारण, देह तो स्वयमेव मिलेगी। कर्म-उपार्जन किये, इस लिए उन्हे भोगनेके लिए देह तो मुफ्तमे ही मिलनेवाली है।'

२९

एक समय श्रीमद् सायलासे सिकरम (एक प्रकारकी सवारी) मे बैठकर निकले। साथमे श्री सौभागभाईके भानजे ठाकरशीभाई और श्री डुगरशीभाई गोसलिया भी थे।

श्रीमद्ने डुगरशीभाईसे कहा 'क्यो डुगरभाई, तुमने सोभागभाईसे जो कहा था वह वे हमे कहते थे कि "जिसके पास ज्ञान होता है उसके धन नही होता,' इसका क्या अर्थ?'

डुगरशीभाईने उत्तर दिया 'आजकल ऐसा तो कुछ दिखाई नही देता। आपके पास ज्ञान है और धन भी है।'

फिर जवाहरोकी पेटीमेसे श्रीमद्, डुगरशीभाईको जवाहर दिखाने लगे।

मार्गकी ऊँची नीची जमीनमे सिकरम डॉवाडोल होता था, इस लिए श्री डुगरशीभाईने कीमती हीरे, मोती या वारीक नग गिर जायेगे तो हाथ नही आयेगे ऐसा भय प्रदर्शित करके, श्रीमद्से जवाहरोको न निकालनेकी प्रार्थना की।

इससे श्रीमद् वोले 'हमारा कुछ नही जानेवाला है, तुम चिन्ता न करो।' यो कहकर सभी जवाहर दिखाये और वोले

'जिसे आत्मज्ञान है उसे जवाहरकी परीक्षा होना सुगम है।'

३०

श्रीमद् स १९५४मे खेडा पधारे थे। राववहादुर नरसीरामके वगलेमे वे ठहरे थे।

वहाँ एक दिवस पण्डित पूजाभाई सोमेश्वर भट्ट श्रीमद्के पास आये। उस समय श्रीमद् एक पुस्तक पढ रहे थे। उस पुस्तकमेसे एक श्लोक उन्होने वारम्वार पढकर सुनाया। उस श्लोकका भावार्थ ऐसा था

'मेरा चित्त शान्त हो जाय, मेरे चित्तकी वृत्तियॉ यहॉ तक शान्त हो जाये कि कोई मृग भी मुझसे अपने सीग घिसे, मुझे देखकर भाग न जाय।'

इस प्रसगको श्रीमद् आनदपूर्वक समझा रहे थे, इतनेमे राववहादुर नरसीरामभाई वहॉ आ पहुँचे।

नरसीरामभाई वेदान्ती थे। श्रीमद् भी वेदान्तको मानते होगे ऐसा मानकर उन्होने आत्माके अभेदकी चर्चा छेडी, और अभेदता पर विवेचन करने लगे।

श्रीमद्ने न तो राववहादुरके कथनका अनुमोदन किया और न कुछ विरोध ही व्यक्त किया, वे केवल चुपचाप ही रहे।

श्री पूजाभाई श्रीमद्का आशय समझ गये कि, जिस वृद्ध वकीलके बगलेमे स्वय उतरे है, उसे बुरा लगे ऐसा कुछ नही कहना चाहिए यह श्रीमद्का भाव था।

३१*

गुजरातके एक अग्रगण्य समाजसुधारक श्री महीपतराम रूपराम यह मानते थे कि जैन धर्मसे भारतवर्षकी अधोगति हुई है। एक वार श्रीमद्के साथ उनका मिलाप हुआ।

श्रीमद्ने पूछा 'भाई, जैन धर्म अहिसा, सत्य, ऐक्य, दया, सत्त्वानुकम्पा, सर्वप्राणिहित, परमार्थ, परोपकार, न्याय, नीति, आरोग्यप्रद आहार-पान, निर्व्यसन, उद्यम आदिका उपदेश करता है क्या?'

महीपतराम 'हाँ।'

श्रीमद् 'भाई, जैनधर्म हिसा, असत्य, चोरी, वैर, क्रूरता, स्वार्थपरायणता, अनीति, अन्याय, छल-कपट, विरुद्ध आहार-विहार, भोग-विलास, विपयलालसा, आलस और प्रमादादिका निषेध करता है क्या?'

* यह प्रसग श्री मनसुखभाई कीरतचन्दकी डायरीमेसे लिया गया है।

महीपतरामने कहा 'हाँ।'

श्रीमद् बोले 'तब कहिये, देशकी अधोगति किससे होती है? अहिसा, सत्य, ऐक्य, दया, परोपकार, परमार्थ, सत्त्वानुकम्पा, सर्वप्राणिहित, न्याय, नीति, आरोग्यप्रद और रक्षक शुद्ध आहारपान, निर्व्यसन और उद्यम आदिसे या इससे विपरीत हिसा, असत्य, वैर, क्रूरता, स्वार्थपटुता, छल-कपट, अनीति, आरोग्यको बिगाडनेवाला तथा शरीर मनको अशक्त करनेवाला विरुद्ध आहारविहार, व्यसन, भोग-विलास, आलस प्रमाद आदिसे?'

महीपतराम 'दूसरेसे अर्थात् अहिसा, सत्य आदिसे विपरीत हिसा, असत्य आदिसे।'

श्रीमद् 'तब तो देशकी उन्नति दूसरेसे विपरीत अहिसा, सत्य, निर्व्यसन, उद्यम, ऐक्य आदिसे हो न?'

महीपतराम 'हाँ।'

श्रीमद् तब जैनधर्म देशकी अधोगति हो ऐसा उपदेश करता है या उन्नति हो ऐसा?'

महीपतराम 'भाई, मै स्वीकार करता हूँ कि जैनधर्म, जिससे देशकी उन्नति हो ऐसे उपायोका उपदेश करता है। इतनी सूक्ष्मतासे विवेकपूर्वक मैने कभी विचार नही किया था। हमे तो बचपनमे पादरीकी पाठशालामे पढते हुए ये सस्कार पडे, इस लिए बिना विचार किये हमने कह दिया, लिख डाला।'

३२

एक दिन श्री ठाकरशीभाई लहेरचन्द शाहने कही पर श्रीमद्की निदा होती सुनी। इससे शामको घूमने जाते समय मार्गमे उन्होने श्रीमद्से इस विषयमे कहा।

यह सुनकर श्रीमद् बोले

'दुनिया तो सदासे ऐसी ही है। ज्ञानीको उसके जीवनकालमे कोई नही पहचानता, यहाँ तक कि ज्ञानीके सिर पर लाठीमार पडे तो भी थोडी। और ज्ञानीके मरणके बाद उसके नामसे पत्थरको भी पूजते है।'

☙

१४

श्रीमद्की अमृत प्रसादी

श्रीमद् राजचन्द्रका समग्र जीवन हमे प्रेरणादायक ही है। परन्तु उनकी आत्मिक आभ्यन्तर अवस्थाका निचोड तो उनके प्रेरक लेखोमे ही मूर्त स्वरूप पाता है। यही कृपालुदेवकी अमृत प्रसादी समान है। इनका जीवन-सदेश जीवनमे उतारनेके लिए इनके विपुल लेखोका निष्ठापूर्वक नित्य मनन और अनुशीलन करना चाहिए।

श्रीमद्के लेख 'श्रीमद् राजचन्द्र' नामके विशाल ग्रन्थमे एकत्रित किये गये है। उसमे वयके अनुक्रमपूर्वक श्रीमद्का समस्त आभ्यन्तर जीवन हमारे सन्मुख तादृश खडा होता है। अपनी भाषामे, किसी साधकके आभ्यन्तर जीवनकी लेखवाली पुस्तके बहुत कम हैं। इस दृष्टिसे 'श्रीमद् राजचन्द्र' बृहद् ग्रन्थ अपने (गुजराती) साहित्यमे महत्त्वका अनोखा स्थान रखता है।

श्रीमद्की स्वतत्र रचनाये, अनुदित रचनाये, जिज्ञासुओको उनके प्रश्नोके उत्तररूपमे अथवा अन्य किसी प्रसग पर लिखे गये लेख या पत्र तथा स्वयमेव चिन्तवन करते हुए नोध-

रूपसे लिखे गये या उनके उपदेशमेसे उत्पन्न हुए सभी लेखोका इस ग्रन्थमे सग्रह किया है। इन सभी लेखोका सत्य परिचय प्राप्त करनेके लिए इस वृहद् ग्रन्थका अनुशीलन करना आवश्यक है। यहाँ तो हम मात्र इन सब लेखोका सक्षिप्त परिचय ही देनेका प्रयत्न करेगे।

श्रीमद्की सभी लिखाईका नीचे अनुसार विभाग किया जा सकता है

१ मुमुक्षुओ पर लिखे गये पत्र।

२ स्वतत्र काव्य।

३ मोक्षमाला, भावनाबोध, आत्मसिद्धिशास्त्र ये तीन स्वतत्र ग्रन्थ।

४ मुनिसमागम, प्रतिमासिद्धि आदि स्वतत्र लेख।

५ स्त्रीनीतिबोध विभाग–१, पुष्पमाला, बोधवचन, वचनामृत, महानीति आदि स्वतत्र बोधवचनमाला।

६ पचास्तिकाय ग्रन्थका गुजराती भाषान्तर।

७ श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचारमेसे तीन भावनाओका अनुवाद, स्वरोदयज्ञान, द्रव्यसग्रह, दशवैकालिक आदि ग्रन्थोमेसे कुछ गाथाओका भाषान्तर, और आनन्दघन चौबीसीमेसे कुछ स्तवनोका अर्थ।

८ वेदान्त और जैन दर्शन सम्बन्धी नोध।

९ उपदेश नोध, उपदेश छाया, व्याख्यानसार १–२ (मुमुक्षुओ द्वारा ली गई नोध)।

१० तीन हाथ नोध—आभ्यन्तर परिणाम अवलोकन इत्यादि।

इस विविध सामग्रीमेसे प्रारभमे हम श्रीमद्‌की रची हुई स्वतत्र पुस्तकोका परिचय वयके क्रमसे देगे।

'स्त्रीनीतिवोध विभाग-१' श्रीमद् द्वारा सोलह वर्षकी वयसे पहले लिखे गये लेखोकी यह प्रथम पुस्तक है। उसकी प्रस्तावनामे श्रीमद्‌ने, स्त्रीशिक्षा वढती जाय इसके साथ वाचनेकी रुचिकी वृद्धि हो इसके लिए, स्त्रियोके योग्य अच्छी पुस्तके लिखनेकी विद्वानोसे विनती की है। पुराने विचारके लोगोके स्त्रीशिक्षा पर किये आक्षेपोका निराकरण किया है, उस समयमे प्रकाशित हुई स्त्रियोके पढने योग्य पाँचसात पुस्तकोके नाम दिये है तथा स्त्रियोके न सुधरनेका कारण वाल-विवाह, वेमेल विवाह, भ्रम और अज्ञान है ऐसा वताकर वाल-विवाहकी हानि विचारनेकी विनती की है।

स्त्रियोमे गाये जानेवाले रागमे, गीत, धोल और गरवाकी पद्धतिके अनुसार चार विभाग कर उस पुस्तककी योजना की है। श्रीमद्‌ने 'स्त्रीनीतिवोध'के तीन विभाग लिखनेका विचार किया था। परन्तु दूसरे दो विभाग लिखे हुए मालूम नही देते। 'स्त्रीनीतिवोध' विभाग–१के अन्तमे श्रीमद्‌ने जाहिर खवरमे लिखा है कि—'काव्यमाला' नामकी एक सुनीतिवोधक पुस्तक रचकर मैने तैयार की है। वह प्रकाशित हुई या नही, इसकी कोई जानकारी नही मिली। लिखी हुई प्रति भी उपलब्ध नही है।

नीति सम्वन्धी श्रीमद्‌के विचार वहुत ही गहरे थे, और उन्हे श्रीमद् समस्त आध्यात्मिकताका मूल मानते थे। इस

पुस्तकमे अनीति दूर हो और नीति-सदाचारके प्रति प्रेम हो उस प्रकारसे सत्य, शील, उद्यम, शिक्षण आदि विषयोका, दो-तीन दर्जो तक पढकर उठ जानेवाली बडी आयुकी बहिनोका भी पढनेमे मन लगे ऐसी सरल भाषामे निरूपण किया है।

'पुष्पमाला' यह भी श्रीमद्की सोलह वर्षकी आयु पहलेका लेख माना जाता है। उसमे सूत्रात्मक वाक्योकी शैलीसे, तथा मालाके समान नित्य आवर्तन किये जा सके इस हेतुसे १०८ वाक्य लिखे है।

इस युगके नवीन युवकोकी शिक्षामे सत्य शिक्षाकी जो त्रुटि है उसे दूर कर, उन्हे अयोग्य वाचनमेसे बचाकर सन्मार्गमे प्रयाण करानेका इसका प्रयोजन है। यह कृति किसी विशिष्ट सम्प्रदायको अनुलक्ष करके नही, परन्तु सर्व-साधारण नीतिधर्म और कर्तव्यकी दृष्टिसे लिखी गई है। जिस प्रकार मालामे १०८ गुरिया होते है उसी प्रकार यह कृति १०८ नैतिक पुष्पोसे गूथी हुई और किसी भी धर्म, पन्थ या जातिके स्त्री अथवा पुरुषके गलेमे नित्य पहरने योग्य अर्थात् पढने योग्य, चिन्तवन करने योग्य है।

'पुष्पमाला'के प्रारम्भमे, 'रात पूरी हुई, नया दिन आया, गत दिवस पर दृष्टि डाल जाओ, और निष्फल गये समयके लिए विचार करो। करने योग्य कार्योके विषयमे समय, शक्ति और परिणामकी ओर निगरानी रखो। समय अमूल्य है यह याद रखो और अनुचित रीतिसे किसी शक्तिका उपयोग न हो इसका ध्यान रखो'—ऐसा सर्व मान्य उपदेश है।

वादमे राजा, श्रीमन्त, व्यापारी, वालक, युवक, वृद्ध, स्त्री, कृपण, भाग्यशाली, धर्माचार्य, अनुचर, दुराचारी और दु खी आदियोको उनका कर्तव्य और मर्यादा वताकर, अपने-अपने कार्योको करनेकी सूचना दी है।

इसके वाद, खान-पानमे मिताहारी होनेकी तथा काम-भोगोमे सयमी होनेकी सूचना कर, जीवनमे अन्तिम लक्ष्यके प्रति भी दुर्लक्ष न करनेकी ओर ध्यान दिलाया है। धर्मका मूल सत्पुरुषोका व्यवहार है, भिन्न-भिन्न धर्मोमे मात्र दृष्टि-भेद है, तात्त्विक भेद नही है। धार्मिक जीवनके लिए अमुक मत या अमुक सम्प्रदायमे रहना आवश्यक नही है, परन्तु जिसमे ससारमलका नाश हो उस प्रकारकी नीति, भक्ति और सदाचारकी जो क्रियाये है, उनके लिए कममे कम आधा प्रहर भी समय अवश्य निकालना चाहिए ऐसा सूचित किया है। और जो वास्तविक आत्मचिन्तवन हुआ है उतना ही आजका दिन सफल हुआ है ऐसा कहकर, सोनेके समय फिर अपने कार्योके हिसाव करनेकी सूचना करके माला–पुष्पमालाको पूरा किया है।

इस मालाके सूत्रात्मक वाक्य, पढनेवालेकी वाह्य वृत्तिको रोककर अपनेको आज या इसके वाद क्या करना है इस प्रकारके विचारोमे प्रेरित करते है। पढनेवालेकी विचार-शक्तिको विकसितकर, शब्दसमूहके पीछे रहे हुए अर्थ और परमार्थके प्रदेशमे प्रवेश करनेकी प्रेरणा करते है। उनकी पुष्पमालाके वाक्य छोटे परन्तु तीक्ष्ण वाणकी तरह हृदयकी गहराईमे उतर जाये ऐसे हैं।

अन्तके १०८वे गुरियामे श्रीमद्‌जी लिखते है

'लम्बी छोटी या क्रम अनुक्रम किसी भी प्रकारसे, यह मेरी कही हुई, पवित्रताके पुष्पोसे भरी हुई माला प्रभातके समयमे, सायकाल और अन्य अनुकूल निवृत्तिमे विचारनेसे मगलदायक होगी। विशेष क्या कहूँ?'

'मोक्षमाला' श्रीमद्‌ने सोलह वर्ष पाँच मासकी वयमे तीन दिनमे रची थी।

मनुष्य अन्तर्मुख या बहिर्मुख चाहे जैसा हो, उसे व्यक्तिगत जीवन और सामुदायिक जीवनके लिए सामान्य नीतिकी आवश्यकता तो होती ही है। ऐसे व्यावहारिक नीतिके शिक्षणके लिए 'पुष्पमाला' रचनाके बाद श्रीमद्‌को अन्तर्मुख अधिकारियोके लिए कुछ विशिष्ट लिखनेकी प्रेरणा हुई हो ऐसा मालूम देता है। इसमेसे इन्होने आध्यात्मिक जिज्ञासाको सन्तुष्ट करने तथा पुष्ट करनेके लिए इस कृतिको रचा और इसका नाम इसके उद्देश्य तथा विषयके अनुरूप 'मोक्षमाला' रखा। यह 'मोक्षमाला' बालावबोधके नामसे पहचानी जाती है। इसका दूसरा भाग 'प्रज्ञावबोध मोक्षमाला'को लिखनेका विचार श्रीमद्‌ने किया और उसमे लिखनेके लिए निश्चित किये हुए विषयोकी सूची भी इन्होने तैयार की थी।* परन्तु वे इस भागको नही लिख सके थे। 'मोक्षमाला'मे चर्चित धर्मके विषय मुख्यतासे जैनधर्मको ही लक्ष्यमे रखकर लिए गये है। श्रीमद् स्वय ही स १९५५मे लिखते है

* जिसके लिये 'श्रीमद् राजचन्द्र' बृहद् ग्रन्थ पत्राक ९४६ स २००७वाली आवृत्तिमे देखिये।

'इसमे जैनमार्गको यथार्थ समझानेका प्रयास किया है। जिनोक्त मार्गसे इसमे कुछ भी न्यूनाधिक नही कहा है। वीतराग मार्ग पर आवालवृद्धकी रुचि हो, उसका स्वरूप समझमे आये, उसका वीज हृदयमे वोया जाय इस कारणसे उसकी वालाववोध रूपसे योजना की है।'

पुन स १९५६मे 'मोक्षमाला की दूसरी आवृत्तिके समय प्रकाशकको दी हुई सूचनामे श्रीमद् द्वारा वताई गई एक दो वाते ध्यानमे लेने योग्य है।

'हमने "मोक्षमाला"के पाठ सोच-समझकर लिखे हैं। वने वहाँ तक श्रोताओ और पाठकोको हमारे अभिप्रायमे लानेका लक्ष्य न रखना, उनके दिलमे अपना अभिप्राय उत्पन्न होने देना, अच्छे-वुरेकी तुलना श्रोताओ और पाठको पर ही छोड देना। हमे उनको अपने अभिप्रायके अनुसार चलाकर, उनमे जो अभिप्राय स्वय उग सके उसे रोक देना नही।'

ऐसी जीवनप्रेरक पुस्तकका अध्ययन किस प्रकार करना इस विषयमे श्रीमद्ने इस पुस्तकके प्रारभमे जो लिखा है वह यथार्थमे उत्तम शिक्षारूप है।

'इसमे मध्यस्थतासे तत्त्वज्ञान और शीलके वोधका उद्देश है।.. इस पुस्तकको प्रकाशित करनेका मुख्य हेतु आजकलके छोटे छोटे युवक अविवेकी विद्या प्राप्त कर आत्मसिद्धिसे भ्रष्ट होते हैं, उस भ्रष्टताको रोकनेका भी है। वहुत गहराईसे विचारने पर यह 'मोक्षमाला' मोक्षका कारणरूप हो जायगी।

पाठक और वाचक वर्गसे यह मुख्य अनुरोध है कि शिक्षापाठको पढ जानेकी अपेक्षा जैसे बने वैसे मनन करना, उनके तात्पर्यका अनुभव करना, जिसकी समझमे न आते हो, उसे उन पाठोको पाँचसात वार पढ जाना चाहिए। एक पाठको पढनेके वाद आधी घडी उस पर विचार करके अन्त करणसे पूछना कि क्या तात्पर्य हाथ आया? उस तात्पर्यमेसे [1] हेय, ज्ञेय और उपादेय क्या है? ऐसा करनेसे समस्त ग्रन्थ समझमे आ सकेगा, हृदय कोमल होगा, विचारशक्ति विकसित होगी और जैन तत्त्व पर उत्तम श्रद्धा होगी।

'यह ग्रन्थ केवल पठन करने रूप नही, परन्तु मनन करने रूप है। अर्थरूप विद्याकी इसमे योजना की है। वह योजना "वालाववोध" रूप है, "विवेचन" और "प्रज्ञाव-वोध" भाग भिन्न है।'

'मोक्षमाला'का प्रथम पाठ भी 'वाचकसे अनुरोध' है। उसमे श्रीमद् सूचित करते है

'वहुतसे अज्ञानी मनुष्य, नही पढने योग्य पुस्तकोको पढ कर अपने समयको व्यर्थ गुमा देते है, और कुमार्गमे लग जाते है। इस लोकमे वे अपकीर्ति पाते है तथा परलोकमे नीच गतिमे जाते है।

'तुमको एक यह भी सलाह है कि, जिनको पढना नही आता हो, और यदि उसकी इच्छा हो तो उसको यह पुस्तक अनुक्रमसे पढकर सुनाना।

[1] छोडने योग्य, जानने योग्य और ग्रहण करने योग्य।

'इससे तुम्हारे आत्माका कल्याण हो, तुमको ज्ञान, शान्ति और आनन्दकी प्राप्ति हो, तुम परोपकारी, दयालु, क्षमावान, विवेकी और वुद्धिशाली वनो, यह शुभ याचना अरहन्त भगवानसे करके यह पाठ पूर्ण करता हूँ।'

इस प्रकार श्रीमद्‌ने स्वय ही विशदतासे इस पुस्तकका महत्त्व दिखाया है। और श्रीमद्‌ने एक वार वातचीत करते हुए कहा था कि

'"मोक्षमाला" रचते समय हमारा वैराग्य "योग-वासिष्ठ"के वैराग्य प्रकरणमे जैसा श्री रामचन्द्रजीके वैराग्यका वर्णन है, उसी प्रकारका था। और सभी जैनागमोका सवा वर्षके अन्दर अवलोकन कर लिया था। उस समय अद्भुत वैराग्य प्रवर्तमान था, और वह यहाँ तक कि हमने खाया है या नही, उसकी स्मृति भी हमे नही रहती थी।'

इस परसे भी विद्वान् पाठकोको इस पुस्तककी अमूल्यताका विचार आ सकता है। कथा और उदाहरणोसे रुचिकर वनाये गये १०८ शिक्षापाठोका भावपूर्वक मनन-चिन्तवन अपने जीवनको मोक्षाभिलापी वनानेमे सहायरूप हो सकता है।

'भावनावोध' पुस्तक स १९४२मे श्रीमद्‌ने वनाई थी 'मोक्षमाला' स १९४०मे लिखी थी और स १९४४मे छपकर प्रकाशित हुई। चार वर्षके विलम्वको देखकर श्रीमद्‌ने पहलेसे वने ग्राहकोको 'भावनावोध पुस्तक, प्रकाशित करके उस समय भेटमे दी थी।

'भावनावोध' ग्रन्थ छोटा है तो भी वैराग्यसे भरपूर

है। अध्यात्मजीवन व्यतीत करनेकी इच्छावालेको जिन बारह भावनाओको जीवनमे दृढ करनी है, वे भावनाये रोचक दृष्टान्तोसे समझाई हे। कथाओ द्वारा भावनाओका वर्णन किया है इस लिये चित्ताकर्षक और गहरी असर करे ऐसा आन्नददायक यह छोटा ग्रन्थ है। सुपात्रता प्राप्त करनेका और क्रोध, लोभ, मोहादि विकारोको दूर करनेका यह ग्रन्थ अत्युत्तम साधन है।

श्रीमद्ने इस ग्रन्थके सक्षिप्त उपोद्घातमे यथार्थ सुख, महात्माओका ज्ञान और मुख्यतासे भगवान् महावीरका मानने योग्य उपदेश, इन सवका उपदेश एक मोक्षके लिए है ऐसा बताकर मोक्षमालामे 'बारह भावना'वाला लिखा हुआ पाठ रखा है। बादमे दोनो ग्रन्थोका प्रयोजन सक्षेपमे बहुत अच्छी तरहसे प्रदर्शित किया है।

उत्तम तत्त्वज्ञान और परम (सु)शीलका उपदेश करनेवाले पुरुप कुछ कम नही हुए है, तथा यह ग्रन्थ उससे उत्तम या समानरूप भी नही है, परन्तु विनयरूपसे उन उपदेशकोके धुरन्धर प्रवचनोके सामने कनिष्ठ है। यह भी प्रमाणभूत है कि प्रधान पुरुषके समीप अनुचरकी आवश्यकता है उसी प्रकार धुरन्धर ग्रन्थोका उपदेश–बीज रोपनेके लिए, अन्त करणको कोमल करनेके लिए ऐसे ग्रन्थोका प्रयोजन है।

तत्त्वज्ञान तथा सुशीलकी प्राप्तिके लिए और फलमे अनन्त सुखतरग प्राप्त करनेके लिए जो-जो साध्य-साधन श्रमण भगवान् ज्ञातपुत्रने प्रकाशित किये हे, उनका स्वल्पतासे लेशमात्र तत्त्व सचय करके, उसमे महापुरुषोके छोटे-छोटे

चरित्र एकत्रित करके इस ‘भावनावोध’ तथा ‘मोक्षमाला’को विभूषित किया है, वह ‘विदग्ध मुखमडन भवतु।’ अर्थात् विद्वानोके मुखको सुशोभित करे।

ये वारह भावनाये नीचे अनुसार है

१ अनित्यभावना शरीर, वैभव, लक्ष्मी, कुटुम्ब परिवार आदि सभी विनाशी है। जीवका मूल धर्म अविनाशी है, इस प्रकार चिन्तवन करना पहली अनित्य-भावना है।

२ अशरणभावना ससारमे मरणके समय जीवको शरण देनेवाला कोई नही है। मात्र एक शुभ धर्मकी ही शरण सत्य है। इस प्रकारका चिन्तवन दूसरी अशरणभावना है।

३ ससारभावना इस आत्माने ससार-समुद्रमे पर्यटन करते हुए सभी भवोको धारण किया है। इस ससारकी जजीरसे मै कव छूटूंगा? यह ससार मेरा नही है, मै तो मोक्षमय हूँ। ऐसा चिन्तवन करना तीसरी ससारभावना है।

४ एकत्वभावना यह मेरा आत्मा अकेला है, वह अकेला आया है और अकेला जायगा तथा अपने किये हुए कर्मोका फल भी अकेले ही भोगेगा। अन्त करणसे ऐसा चिन्तवन करना चौथी एकत्वभावना है।

५ अन्यत्वभावना इस ससारमे कोई किसीका नही है, ऐसा चिन्तवन करना पाँचवी अन्यत्वभावना है।

६ अशुचिभावना यह शरीर अपवित्र है, मलमूत्रकी

खान है, रोग और जराके रहनेका धाम है। मै इस शरीरसे न्यारा हूँ, ऐसा चिन्तवन करना छठी अशुचिभावना है।

७ आस्रवभावना राग, द्वेष, अज्ञान, मिथ्यात्व इत्यादि सभी आस्रव है, ऐसा चिन्तवन करना सातवी आस्रवभावना है।

८ सवरभावना ज्ञान, ध्यानमे प्रवृत्ति करके जीव नये कर्म न वाधे, यह आठवी सवरभावना है।

९ निर्जराभावना ज्ञान सहित क्रिया करना निर्जराका कारण है। इस प्रकार चिन्तवन करना नववी निर्जराभावना है।

१० लोकस्वरूपभावना चौदहराज लोकके स्वरूपका विचार करना दसवी लोकस्वरूपभावना है।

११ वोधिदुर्लभभावना ससारमे परिभ्रमण करते हुए आत्माको सम्यग्ज्ञानकी प्रसादीकी प्राप्ति होना दुर्लभ है। यदि सम्यग्ज्ञान प्राप्त हुआ तो चारित्र—सर्वविरति परिणामरुप धर्मका पाना कठिन है, ऐसा चिन्तवन करना ग्यारहवी वोधिदुर्लभभावना है।

१२ धर्मदुर्लभभावना धर्मके उपदेशक तथा शुद्धशास्त्रके वोधक गुरु और उनके उपदेशका श्रवण प्राप्त होना दुर्लभ है, ऐसा विचार करना वारहवी धर्मदुर्लभ-भावना है।

श्रीमद् केवल गद्यके ही लेखक नही है, उन्होने कवितायें भी वनाई है। उस समय उन्हे वहुतसे जैन 'कवि'के

नामसे ही पहचानते थे। और कितने ही लोग आज भी उनके अनुगामी वर्गको कविसम्प्रदायवाला कहते हैं।

श्रीमद्की कविताओके देखनेसे ऐसा लगता है कि, कवित्वका बीज—वस्तुस्पर्श, प्रतिभा तथा अभिव्यक्ति सामर्थ्य उनमे था। उनकी कविता उनके अन्य गद्य लेखोके समान आध्यात्मिक विषयको स्पर्श करनेवाली है। उनकी कविताकी भाषा प्रवाहबद्ध है। सहजभावसे सरलतापूर्वक प्रतिपाद्य विषयको अपनाकर, यह प्रवाह कही जोशबन्द तो कही चिन्तन-सुलभ गभीर गतिसे बहता जाता है। इनकी प्राय सभी कवितायें जैन सम्प्रदायकी भावनाओके तात्त्विक मूलको स्पर्श करके रची गई है। जिस प्रकार आनन्दघन, देवचन्द्र और यशोविजयके कुछ पद्य भावकी सूक्ष्मता और कल्पनाकी उच्चगामिताके कारण तत्कालीन गुजराती साहित्यमे सुशोभित है फिर भी वे सभी पद्य जैन सम्प्रदायकी ही वस्तुका स्पर्श करते है वैसा ही श्रीमद्के पद्योके सम्बन्धमे कहा जा सकता है।

जिस समय श्रीमद्ने 'मोक्षमाला' 'पुष्पमाला' आदि ग्रन्थ बनाये उसी मौके पर उन्होने सस्कृत महाकाव्योके नियमानुसार 'नमिराज' नामका एक काव्यग्रन्थ लिखा है। उसमे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुपार्थोका उपदेश कर अन्तमे मोक्षमार्गका वर्णन किया है। यह पॉच हजार श्लोकवाला ग्रन्थ उन्होने छ दिनमे तैयार किया था। परन्तु इस समय यह ग्रन्थ उपलब्ध नही है। और वह छपा

था या नही, यह भी नही कहा जा सकता।*

सत्रह या अठारह वर्षकी वयमे श्रीमद् द्वारा लिखे गये दृष्टान्तिक दोहे लगभग अस्सी जितनी सख्यामे प्राप्त हुए है जो 'श्रीमद् राजचन्द्र' बृहद् ग्रन्थकी पाँचवी आवृत्तिमे प्रकाशित है। इन दोहोमे नीतिव्यवहारकी शिक्षा मुख्य है। प्राय प्रत्येक दोहेमे प्रथम सिद्धान्त बताकर बादमे उसे पुष्ट करनेवाला दृष्टान्त दिया है। जैसे कि

'फरी फरी मळवो नथी, आ उत्तम अवतार,
काळी चौदश ने रवि, आवे कोईक वार।'
'वचने वल्लभता वधे, वचने वाधे वेर,
जळथी जीवे जगत आ, कदी करे पण केर।'
'होय सरस पण चीज ते, योग्य स्थळे वपराय,
केम कटारी कनकनी, पेट विषे घोचाय?'

अर्थात् यह उत्तम (मनुष्य) अवतार बारम्बार नही मिलता। जैसे कि काली (कृष्ण) चौदस और रविवार कभी कभार ही आते है।

वचनसे प्रियता बढती है, वचनसे वैर बढता है। जैसे कि जलसे समस्त जगत जीवित है और कभी वही जल हाहाकार करा देता है।

उत्तम वस्तु भी योग्य स्थानमे ही काममे लानी चाहिए। जैसे कि सोनेकी कटारी पेटमे नही भोकी जाती।

* इस ग्रथका मात्र उल्लेख स १९४३मे प्रकाशित पुस्तिका 'साक्षात् सरस्वती'मे मिलता है।

'बुद्धिप्रकाश' नामकी पत्रिकामे ई स १८८५मे 'शूरवीर-स्मरण' नामके श्रीमद् द्वारा लिखे गये चौवीस सवैये प्रकाशित हुए हे। उस परसे उनकी छटादार भाषा, जोशीली शैली और कवित्वका स्याल आता है। उदाहरणके तौर पर

'ढाल ढलकती, झवक झवकती, लई चलकती कर करवाल,
खरेखरा खूदे रणमा त्या, मूछ मलकती झगतु भाल,
वेरीने घेरी लेता झट, भरतभूमिना जय भडवीर,
अरे, अरेरे, आज गया क्या, रढियाला एवा रणधीर?'

भावार्थ जिनकी पीठ पर ढाल लटकती थी, जो हाथमे एकदम झिलमिलाती चमकती तलवार धारण करते थे, जो रणमे शत्रुओको वरावर रौद डालते थे, जिनकी मूछे मुसकराती थी, मस्तक देदीप्यमान था, जो वैरियोको शीघ्र ही घेर लेते थे, भारतभूमिके वे योद्धा जय प्राप्त करते थे। परन्तु अरेरे! आज ऐसे रणधीर कहाँ चले गये!

तीस वर्षकी आयुमे लिखा गया 'अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे?' इस ध्रुवपदवाले श्रीमद्‌के प्रसिद्ध काव्यका हम यहाँ उल्लेख करते हैं। यह काव्य 'आश्रम भजनावली'मे स्थान-प्राप्त होनेसे, केवल जैन या गुजराती जनतामे ही नही, परन्तु गुजरातीको थोडे या अधिक अशमे समझनेवाले वर्गमे भी प्रसिद्ध हुआ है और होता जा रहा है। यह काव्य ऐसे आत्मिक उल्लासमे लिखा गया है कि वह पढने-वालेको भी शान्ति प्रदान करता है।

'श्री आत्मसिद्धिशास्त्र' यह अध्यात्म विषयक पद्यग्रन्थ

श्रीमद्ने उन्तीस वर्षकी वयमे एक ही आसनसे १४२ दोहोमे रचा था।

'श्री आत्मसिद्धिशास्त्र'की जिस समय श्रीमद्ने रचना की उस समय उन्होने सिर्फ चार जीवोको अधिकारी जानकर उसकी हस्तलिखित नकले उनके ही उपयोगके लिए भेजी थी क्योकि उपशम और वैराग्यके द्वारा उनकी बुद्धिकी विपर्यासता दूर हो चुकी थी। आत्माकी पहचानके लिए सत्यासत्यका मात्र शास्त्र-ज्ञान काममे नही आता। 'समाधि-शतक'मे कहा है कि

'शृण्वन्नप्यन्यत काम वदन्नपि कलेवरात्।
नात्मान भावयेद् भिन्न यावत् तावन्न मोक्षभाक्।'

आत्मा देहसे भिन्न है, इस विषयमे सद्गुरुसे अच्छी तरहसे सुना हो, दूसरोको सुनाता भी हो फिर भी जहाँ तक देहसे आत्मा भिन्न है ऐसी भावना नही करता वहाँ तक शुद्ध आत्माका अनुभव (मोक्ष) नही होता तथा मोक्षके योग्य भी नही होता।

जीव ऐसे सद्-असद्का विवेक कर सके तथा आत्माकी पहचान करनेके लिए उस ओर झुक सके और उसकी अनुभूति साक्षात् कर सके इस बातको लक्ष्यमे रखकर श्रीमद्ने अति सरलतासे सूत्रात्मक शैलीमे १४२ दोहोमे जो सद्बोध दिया है, वह यथार्थमे चिरकाल मनन करने योग्य है।

मुक्तिमार्गके प्रवासी श्रीमद्को जिस आत्मस्वरूपका निरन्तर प्रगटरूपमे, वेदन था, उसे आबालवृद्ध सभी

और मतार्थीपन दूर करना चाहिए, मोक्षमार्गमे स्वच्छन्द महान विघ्नरूप है तथा मतार्थीपन उसका ही एक रूप है यो प्रगट कर, सच्चे आत्मार्थीके लक्षणोका वर्णन किया है।

तत्पश्चात् एक दोहेमे छ पदोका नामनिर्देश आता है। और प्रत्येक पदमे शिष्यकी शकाओका सद्गुरु समाधान करते है। जैसे कि—'आत्मा है' इस पदके विषयमे शिष्य शका करते हुए कहता है कि, 'जीव दिखाई नही देता, इस लिए वह नही है। अथवा देह ही आत्मा है।' इसके बाद सद्गुरु अनेक सरल युक्तियोसे उस नास्तिकवादका खडन करते है। उसी प्रकार आत्माके नित्यत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, मोक्ष है और मोक्षका उपाय है इन पदो पर भी शिष्य शकाये करता है और गुरु उनका समाधान करते है।

उपसहारमे, इन छ पदोका विचार करनेसे तथा उनमे नि शक होनेसे समकित प्राप्त होगा, ऐसा कहकर, मिथ्यात्व-रूपी महान रोगको दूर करनेके लिए सद्गुरुरूपी महावैद्यको खोजकर, उसकी आज्ञारूपी पथ्यका पालन कर, उनके बोधका विचार और ध्यानरूप औषधकी सलाह दी है। तथा 'यह काल विषम होनेसे मोक्ष प्राप्त न होगा' इत्यादि विचारोका त्याग कर, सत्पुरुषार्थ करके परमार्थ साधनेकी प्रेरणा की है। अन्तमे, आत्माका पारमार्थिक स्वरूप विचारते हुए भी सद्-व्यवहाररूपी मोक्षके साधनोके प्रति उपेक्षित न होनेकी चेतावनी दी है और विदित किया है कि जबतक वह ज्ञान प्राप्त नही हुआ है, तब तक पारमार्थिक स्थितिकी बाते

करनेमे तथ्य नही है। इस लिए दया, शान्ति, समता, क्षमा, सत्य, त्याग, वैराग्यादि गुणोका सेवन करते-करते जागृत रहना ही योग्य है।

ऐसे गम्भीर विपयको श्रीमद्‌ने बहुत ही सरलतासे निरूपण किया है। परन्तु यह विषय दार्शनिक, तर्कप्रधान और जैन सम्प्रदायसिद्ध होनेसे, उसका रसास्वाद करनेके लिए जैन परिभाषा और जैन तत्त्वज्ञानके स्पष्ट सस्कार प्राप्त करना आवश्यक है। तो भी 'आत्मसिद्धिशास्त्र के अनुशीलनके लिए सुगमता यह है कि श्री अम्बालालभाईने प्रत्येक पद्यका अर्थ गद्यमे दिया है, जो श्रीमद्‌की दृष्टि नीचे आ चुका है। तथा श्रीमद्‌ने स्वय इस ग्रन्थके कुछ दोहोके ऊपर विवेचन भिन्न-भिन्न समयमे मुमुक्षुओ पर लिखे गये पत्रोमे भेजा था। इस सभी अमूल्य सामग्रीके कारण 'आत्मसिद्धिशास्त्र'के अध्ययन करनेमे सरलता हो जाती है।

प्रज्ञाचक्षु विद्वत्वर्य पडित सुखलालजीने यथार्थ ही कहा है

'जिस आयुमे और जितने अल्प समयमे श्रीमद्‌ने 'आत्म-सिद्धि'मे स्वय पचाये हुए ज्ञानको गूथा है, जब मै उसका विचार करता हूँ उस समय मेरा मस्तक भक्तिभावसे नम जाता है। इतना ही नही, परन्तु मुझे लगता है कि उनकी मुमुक्षुओको दी हुई यह आध्यात्मिक भेट तो सैकडो विद्वानो द्वारा दी गई साहित्यिक ग्रन्थराशिकी भेटकी अपेक्षा विशेष कीमती है।'

इसी प्रकार श्रीमद्‌ द्वारा लिखे गये अनेक पत्र, उनकी

लिखी हुई हाथ-नोंध आदिका अभ्यास करे तो श्रीमद्की विपुल अमृत प्रसादीका सहजमे ख्याल आ सकता है।

श्रीमद्के लेखोकी एक असाधारणता यह है कि जिसका उन्होने स्वय अनुभव किया, वही लिखा है। इनके लेख अर्थात् बाह्य और अभ्यन्तर जीवनकी उत्कट अनुभूतियोका निचोड। उसमे कही भी कृत्रिमता देखनेको नही मिलती। दूसरो पर प्रभाव डालनेके लिए इन्होने एक लकीर भी लिखी हो ऐसा जरा भी सभव कही नही दिखाई देता। आत्मनिमज्जन कर हृदयके गहरे सागरमेसे वे सत्‌रूपी रत्नोको बीनकर लानेवाले मरजीवाके समान थे। इससे ही उनके लेखोमे सत्-अमृतत्व टपक रहा है, ऐसी प्रतीति पाठकको होती है। उनके लिखनेका कारण पाठकोको अपने आत्मानन्दमे हिस्सेदार बनानेका था।

जिसे आत्मक्लेश दूर करना है, जो अपने कर्तव्यको जाननेके लिए उत्सुक है, जो श्रेयार्थी — मोक्षार्थी है, उसको श्रीमद् राजचन्द्रके अमृत प्रसादीरूप लेख अत्यन्त उपयोगी हो सके, ऐसा अवश्य है।

अन्तमे, श्रीमद्के लेखोकी महत्ता प्रदर्शित करनेवाला पडितवर्य सुखलालजीका अभिप्राय* देना योग्य होगा।

'बगाली, मराठी, हिन्दी और गुजराती आदि प्रान्तीय भाषामे, जिसमे गृहस्थ या त्यागी जैन विद्वान और विचारक वर्गकी लेखनप्रवृत्ति होती है और विशेष सभव है, उसमेसे

* स १९९२मे श्रीमद् राजचन्द्र जयन्तीके समय अहमदाबादमे पढनेके लिये तैयार किये गये पण्डितजीके निबन्धमेसे।

प्रसिद्ध जैनाचार्य आत्मारामजीकी हिन्दी कृतियोको कम करनेसे किसी भी भाषामे वीसवी शताव्दीमे लिखी गई एक भी पुस्तक मैने ऐसी नही देखी है कि जिसकी 'श्रीमद् राजचन्द्र'के लेखोके साथ गम्भीरता, मध्यस्थता और मौलिकताकी दृष्टिसे अश मात्र भी समानता की जा सके।

'इससे आधुनिक समस्त जैन साहित्यकी दृष्टिसे, अधिकतर जैन तत्त्वज्ञान और चारित्रविपयक गुजराती साहित्यकी दृष्टिसे श्रीमद्के लेखोका अत्यन्त मूल्य है।

'अन्तिम तीन चार दशकोसे जैन समाजमे नवीन प्रजाको नवीन शिक्षाके साथ धार्मिक और तत्त्वज्ञान सम्वन्धी जैन-शिक्षण दे सके ऐसी पुस्तकोकी चारो ओरसे निरन्तर माँग देखनेमे आई है। अनेक सस्थाओने अपनी-अपनी शक्यता अनुसार ऐसी माँगकी पूर्तिके लिए कुछ न कुछ प्रयत्न किये है, तथा छोटी-वडी पुस्तके प्रकाशित की है, परन्तु जिस समय निष्पक्षभावसे इन सवके विषयमे विचार करता हूँ, उस समय मुझे स्पष्ट लगता है कि ये सव प्रयत्न और लगभग यह सव साहित्य श्रीमद्के लेखोके सामने नादान और कृत्रिम जैसे है।

'इनके लेखोमेसे ही अक्षर-अक्षर अमुक भाग चुनकर अधिकारीकी योग्यता और वयके अनुसार पाठ्यक्रम वना लिया जाये, कि जिसमे किसी भी प्रकारका खर्च, परिश्रम आदिका भार नही है, तो धार्मिक साहित्य विपयकी जैन समाजकी माँगको आज भी इनके लेखोसे, अन्य पुस्तकोकी अपेक्षा अच्छी तरह सन्तुष्ट कर सकते हैं। इसमे कुमारसे

लेकर प्रौढ उम्र तकके और प्राथमिक अभ्यासीसे लेकर महान चिन्तक तकके जिज्ञासुओके लिए सामग्री विद्यमान है। अलवत्ता इस सामग्रीका सदुपयोग करनेके लिए असकुचित और गुणग्राहक हृदय चाहिए।'

और साथ ही साथ गुजराती साहित्यके एक अग्रगण्य विचारक आचार्य श्री आनन्दशकरभाई ध्रुव 'श्रीमद् राजचन्द्र'के सम्बन्धमे क्या कह गये है,[1] यह भी ध्यानमे लेने योग्य है

'आजकल पढे-लिखोमे ऐसी सनक सवार हुई है कि प्रत्येक महान लेखकके ग्रन्थोको हमे वाच लेना चाहिए। खूब वाचना, खूब लिखना और खूब छपाना ऐसा रोग आजकल फट निकला है। परन्तु मै उमे योग्य नही मानता।

'प्राचीन कालमे मात्र एक-दो ग्रन्थोके वाचन और मननसे जो फल मिलता था वह आज सैकडो और हजारो ग्रन्थोके वाचनसे नही मिलता। विविध महात्माओके ग्रन्थोमे विविध आदर्शोको हम प्रत्यक्ष करते है और इन आदर्शोका प्रभाव हमारे अन्त करणके ऊपर स्थायीरूपसे नही रह सकता। प्रत्येक ग्रन्थकी अमुक एक दिशा होती है। ऐसी अनेक दिशाओका प्रतिविम्व हम अपने जीवनमे प्रतिविम्वित कर सके, यह असभवित है।

[1] स १९७३की कार्तिकी पूर्णिमाके दिन वढवाण (सुरेन्द्रनगर) केम्पमे आचार्यश्री आनन्दशकर ध्रुव द्वारा सभापतिके पदसे दिये हुओ व्याख्यानमेसे।

'अग्रेज विद्वानोमे अनेकोका एक निश्चित ग्रन्थकार या महात्माके प्रति असाधारण हृदयभाव होता है। वे अपने समस्त जीवनमे इस एक ही आदर्शको व्यवस्थितरूपसे विकसित करनेका प्रयत्न करते है। इससे उनको वहुत लाभ होता है। हम लोगोको इस विषयका अनुकरण करना चाहिए, और हो सके तो एक ही महापुरुषके ग्रन्थको दृष्टिके सन्मुख रखकर उसका मनन और निदिध्यासन करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

'यद्यपि मै किसी खास प्रकारका मताग्रहवाला नही हूँ, तो भी मधुकरभावसे जो कुछ ग्रहण करनेमे आये उसे मै योग्य नही मानता।

'गुजरातके सार्वजनिक जीवनमे मेरा जो अल्पस्थान है उसे लक्ष्यमे लेकर और मेरे सिर जो जवाबदारी रही हुई है उसका विचार कर मुझे कहना चाहिए कि "श्रीमद् राजचन्द्र" ग्रन्थको आदर्शरूपमे रखनेमे आये तो उससे उनके उपासकोको अत्यन्त लाभ हुए विना नही रहेगा अर्थात् अवश्य लाभ होगा। इस ग्रन्थमे तत्त्वज्ञानके झरने वहते रहते है। यह ग्रन्थ किसी धर्मका विरोधी नही है, क्योकि उसकी शैली वहुत ही गम्भीर प्रकारकी है। मै इस ग्रन्थके वाचने और विचारनेकी सवसे विनती कर अपना वोलना—व्याख्यान समाप्त करता हूँ।'

9

१५

श्रीमद्‌की अन्तिम चर्या

'पच विषयमा रागद्वेषविरहितता,
पच प्रमादे न मळे मननो क्षोभ जो,
द्रव्य क्षेत्र ने काळ भाव प्रतिवन्ध वण,
विचरवु उदयाधीन पण वीतलोभ जो'*

अर्थ पच विषयोमे राग-द्वेपका अभाव हो, और पच प्रमाद और उनके कारण मनक्षोभ न हो। तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके प्रतिबन्ध विना ही लोभ रहित होकर उदयके आधीन विहार करूँ।

भगवानने 'उत्तराध्ययन सूत्र'मे गौतमसे कहा है कि, 'हे गौतम! मनुष्यकी आयु दर्भकी नोक पर पडे हुए

* पच विपय=पाँच इन्द्रियोके विषय
पच प्रमाद=धर्मकी अनादरता, उन्माद, आलस, कपाय ये सभी प्रमादके लक्षण है (देखिये, मोक्षमाला पाठ-५०)
उदयाधीन=प्रारब्धकर्मके आधीन

जलके बिन्दुके समान है। जैसे उस बिन्दुको गिरते देर नही लगती, वैसे ही इस मनुष्यायुको जाते देर नही लगती।' इस लिए हे गौतम, 'समय गोयम मा पमाए'—समय–अवसर पाकर प्रमाद न कर, मेषानुमेषमे जानेवाले कालके असख्यातवे भागके समयके लिए भी प्रमाद न कर।

इस वोधको केन्द्रमे स्थापित कर श्रीमद् 'मोक्षमाला'मे कहते है

'अत्यन्त विचक्षण पुरुष ससारकी सर्व उपाधिका त्याग करके दिन-रात धर्ममे सावधान रहते है। एक पलका भी प्रमाद नही करते। विचक्षण पुरुष दिन-रातके थोडे भागको भी निरन्तर धर्मकर्तव्यमे व्यतीत करते है, और अवसर-अवसर पर धर्मकर्तव्य करते रहते हे। परन्तु मूढ मनुष्य निद्रा, आहार, भोग-विलास और विकथा तथा रग-रागमे आयु व्यतीत कर डालते है। इसके परिणाममे वे अधोगति प्राप्त करते है।

'जैसे बने वैसे यत्ना और उपयोगसे धर्मको सिद्ध करना चाहिए। साठ घडीके अहोरात्रमे वीस घडी तो हम निद्रामे बिताते है। वाकीकी चालीस घडी उपाधि, गप-शप और इधर-उधर घूमनेमे बिताते है। इसकी अपेक्षा इस साठ घडीके समयमेसे दो-चार घडी विशुद्ध धर्मकर्तव्य करनेके लिए यदि उपयोगमे ले, तो वन सके वैसा है। इसका परिणाम भी कितना सुन्दर आये?

'पल अमूल्य वस्तु है। चक्रवर्ती भी एक पल–प्राप्तिके लिए अपनी सम्पूर्ण ऋद्धि यदि प्रदान करे तो भी वह

उसे नही प्राप्त कर सकता। एक पल व्यर्थ गुमानेसे एक भव खोने जैसा है। ऐसा तत्त्वदृष्टिसे सिद्ध है।'

मानो इस बोधको ही आत्मसात् करके श्रीमद् 'परम-पदप्राप्ति'के लिए प्रमादरहित होकर अहोरात्र जूझे थे। और अपने प्रसिद्ध पद्यमे इन्होने जो गाया है, वही इनके जीवनमे मूर्तिमान देखनेको मिलता है

'एकाकी विचरतो वळी स्मशानमा,
वळी पर्वतमा वाघ सिंह सयोग जो,
अडोल आसन ने मनमा नही क्षोभता,
परम मित्रनो जाणे पाम्या योग जो
घोर तपश्चर्यामा पण मनने ताप नहि,
सरस अन्ने नहि मनने प्रसन्नभाव जो,
रजकण के ऋद्धि वैमानिक देवनी,
सर्वे मान्या पुद्गल एक स्वभाव जो'

अर्थात् मै स्मशानमे अकेला विचरता होउँ, उस समय पर्वतादिकोमे वाघ सिंहादि भयकर पशु मिले, उनके मिलने पर भी आसन भयसे कम्पित न हो, परन्तु अडोल रहे और मनमे भी किसी प्रकारका क्षोभ न हो अर्थात् भाग जानेकी वृत्ति न हो, तथा ऐसा मानूँ कि मुझे किसी परम इष्ट मित्रका सयोग हुआ है।

घोर तपश्चर्या करनेमे मनमे किसी प्रकारका उत्ताप न हो, स्वादिष्ट भोजनके मिलनेसे मनको प्रसन्नता न हो, तथा रज-कणसे लेकर वैमानिक देवोकी ऋद्धि पर्यन्त सभीको एक पुद्गलरूप मानूँ।

इस प्रकार चारित्रमोहको जीतकर श्रीमद् सुदृढ निश्चय करते है

'अन्त समय त्या पूर्णस्वरूप वीतराग थई,
प्रगटावु निज केवलज्ञाननिधान जो'

अन्तमुहूर्तमे पूर्णरूपसे वीतराग स्वरूप होकर अपने केवल ज्ञानरूपी भडारको प्रगट करूँ।

इसके लिए श्रीमद् सर्वसगपरित्याग कर अप्रतिबद्ध-रूपसे विचरनेकी इच्छा करते है। परन्तु अभी व्यावहारिक उपाधि कम नही हुई है, इससे जैसी चाहिए वैसी सुलभता नही दिखाई देती। इस विषयमे स १९४७के माह सुदीके पत्रमे श्रीमद् लिखते है

'किसी भी विकट मार्गसे यदि परमात्मामे परम स्नेह होता हो तो भी उसे करना ही योग्य है। सरल मार्ग मिलने पर भी उपाधिके कारणसे तन्मय भक्ति नही रहती, और एक सरीखा स्नेह नही उभरता। इस कारण खेद रहता है। और वारम्वार वनवासकी इच्छा हुआ करती है। यद्यपि वैराग्य तो ऐसा रहा करता है कि घर और वनमे प्राय करके आत्माको कोई भेद नही रहता, परन्तु उपाधिके प्रसगके कारण उसमे उपयोग रखनेकी वारम्वार आवश्यकता रहा करती है, जिससे कि उस समय परम स्नेह पर आवरण लाना पडता है, और ऐसे परम स्नेह और अनन्य प्रेमभक्तिके आये विना देहत्याग करनेकी इच्छा नही होती।

'श्रीमद् भागवत्मे गोपांगनाकी जैसी प्रेमभक्तिका वर्णन किया है, ऐसी प्रेमभक्ति इस कलिकालमे प्राप्त होना कठिन

है। यद्यपि यह सामान्य लक्ष्य है, फिर भी कलिकालमे निश्चय मतिसे यही लगन लगे तो परमात्मा अनुग्रह करके शीघ्र यह भक्ति प्रदान करता है।

'श्रीमद् भागवत्मे जडभरतजीकी सुन्दर आख्यायिका दी है। यह दशा वारम्वार याद आती है और ऐसा उन्मत्तपना परमात्माको पानेका परम द्वार है। यह दशा विदेही थी। भरतजीको हरिणके सगसे जन्मकी वृद्धि हुई थी और उससे जडभरतके भवमे वे असग रहे थे। ऐसे ही कारणोसे मुझे भी असगताका वहुत ही स्मरण होता है और किसी समय तो ऐसा हो जाता है कि असगताके विना परम दु ख होता है।· अन्त कालमे प्राणीको यम जितना दु खदायक नही लगता हो, परन्तु हमे सग दु ख-दायक लगता है.

'"सत्-सत्" इसकी रटन है अधिक क्या कहे? ईश्वरकी इच्छा ऐसी है और उसे प्रसन्न रखे विना छुटकारा नही, नही तो ऐसी उपाधियुक्त दशामे न रहे और मनमाना करे, परम पीयूष और प्रेमभक्तिमय ही रहे। परन्तु प्रारब्धकर्म वलवान है।'

इस तरह श्रीमद्का चित्त असगताकी ओर झुकता जाता है। फिर भी सप्राप्त व्यवहारोको वे निष्कामभावसे अदा करनेकी शुभ निष्ठाको भी सभालते जाते है। स्वय किस लक्ष्य पर पहुँचना है इसकी जागृति भी उनमे उतनी ही दृढतापूर्वक देखनेको मिलती है। उनका निश्चयबल भी इतना ही दृढ रहता है। फाल्गुन सुदी दसमको स १९४८के

पत्रमे श्रीमद् लिखते है

'अनेकानेक ज्ञानीपुरुष हो गये है, उनमे हमारे जैसे उपाधिप्रसग और उदासीन, अति उदासीन* चित्त–स्थितिवाले प्राय प्रमाणमे बहुत कम हुए ह। उपाधिप्रसगके कारणसे आत्मा सम्बन्धी विचार अखडरूपसे नही रह सकता, अथवा गौण रूपसे रहा करता है। वैसा होनेसे बहुत समय तक प्रपचमे रहना पडता है। और उसमे तो अत्यन्त उदास–परिणाम हो जानेके कारण क्षणभर भी चित्त नही टिक सकता, इस कारण ज्ञानी सर्वसगका परित्याग करके अप्रति-बद्धरूपसे विचरते हैं। 'सर्वसग' शब्दका लक्ष्यार्थ यह है कि अखडरूपसे आत्मध्यान या बोधको मुख्यतासे न रखने दे ऐसा सग। यह हमने सक्षेपमे लिखा है, और उस सर्वसगपरित्यागको बाह्य–अभ्यन्तररूपसे भजा करते हैं।

'देह होते हुए भी मनुष्य पूर्ण वीतराग हो सकता है ऐसा हमारा निश्चल अनुभव है। क्यो कि हम भी निश्चयसे उसी स्थितिको पानेवाले है, ऐसा हमारा आत्मा अखडरूपसे कहता है, और ऐसा ही है, जरूर ऐसा ही है। सम्पूर्ण वीतरागकी चरण-रज मस्तक पर हो, ऐसा रहा करता है। अत्यन्त कठिन ऐसी वीतरागता अत्यन्त आश्चर्यकारक है, फिर

* उदासीनताका अर्थ समझने योग्य है। उदासीनता अर्थात् समभाव वैराग्य, शान्तता तथा मध्यस्थता।

श्रीमद्ने स १९४५मे लिखा है

"मुझकी सहेली है अकेली उदासीनता,"

अध्यात्मनी जननी ते उदासीनता

भी वह स्थिति प्राप्त होती है, सदेह प्राप्त होती है यह निश्चय है, प्राप्त करनेके लिए वही पूर्ण योग्य है, ऐसा निश्चय है। इस देहमे ऐसा हुए विना हमारी उदासीनता मिटे ऐसा नही मालूम देता और वैसा होना सभवित है, अवश्य ऐसा ही है।'

इस स्थितिमे भी उपाधिका योग विशेष था। श्रीमद् चैत्र सुदी ६को स १९४९के पत्रमे विदित करते है

'उपाधिका योग विशेप रहता है। जैसे-जैसे निवृत्तिके योगकी विशेष इच्छा हो आती है, वैसे-वैसे उपाधिकी प्राप्तिका योग विशेप दिखाई देता है। चारो ओरसे उपाधिका सकट है। कोई ऐसी वाजू इस समय मालूम नही पडती कि इसी समय ही इसमेसे छूट कर चले जाना हो तो किसीके अपराधी न माने जाये। छूटनेका प्रयत्न करते हुए किसीके मुख्य अपराधमे आ जानेका स्पष्ट सभव दिखाई देता है। और यह वर्तमान अवस्था उपाधि रहित भावके लिए अत्यन्त योग्य है। प्रारब्धने इस व्यवस्थाका प्रवन्ध किया होगा।'

इस प्रकारसे चारो तरफ उपाधिकी ज्वाला जलती हो उस प्रसगमे समाधि—आत्मस्थितिको सुरक्षित रखना अत्यन्त कठिन है, परन्तु इसका उपाय भी श्रीमद्को ज्ञात था। 'जैसे वने वैसे प्रभुभक्तिमे तत्पर रहना, मुझे मोक्षका यह धुरन्धर मार्ग लगा है। चाहे तो मनमे भी स्थिर होकर वैठ कर प्रभुभक्ति अवश्य करना योग्य है। इस समय तो मनकी स्थिरताका मुख्य उपाय प्रभुभक्तिको समझो।'

'जिसके द्वारा वैराग्यकी वृद्धि हो वह वाचन विशेषतासे रखना, मतमतान्तरका त्याग करना, असत्संगादिमे उत्पन्न होती हुई रुचिको दूर करनेका वारम्वार विचार करना योग्य है।' (ज्येष्ठ, स १९४८) और

कि वहुणा इह जह जह, रागदोषा लहु विलिज्जति।
तह तह पयट्टिअव्व, एसा आणा जिणिदाणम्॥
(उपदेश रहस्य-यशोविजयजी)

'हम कितना कहे? जैसे-जैसे इन राग-द्वेपका विशेषताने नाश हो उस-उस प्रकारसे आचरण करना चाहिए। भगवान् जिनेश्वर देवकी यही आज्ञा है।' (१९४८)

इस प्रकार धीरे-धीरे श्रीमद् सर्वसगपरित्यागकी ओर प्रयाण करने लगे और वे आत्मविश्वासपूर्वक कहते हे

'दृढ विश्वाससे मानना कि यदि इसको व्यवहारका वन्धन उदयकालमे न होता तो अन्य कितने ही मनुष्योको अपूर्व हितका देनेवाला होता। प्रवृत्ति हे तो उसके लिए कुछ असमता नही है, परन्तु निवृत्ति होती तो अन्य जीवोको मार्ग मिलनेका कारण होता। (१९४७)'

पुन श्रीमद्‌की एकान्तचर्याके* समयमे तथा श्रीमद्‌के समागममे आनेके लिए तत्पर होते हुए भक्तजन और मुमुक्षु-जनोका प्रवाह देखकर श्रीमद्‌को लगता हे कि लोग श्रेयार्थी मार्गमे गमन करनेके लिए उत्सुक है। श्रीमद् इस विषयमे

* देखिये प्रकरण-१२ १३

लिखते है

'छोटी उम्रमे मार्गका उद्धार करनेके सम्बन्धमे अभिलापा रहती थी। उसके वाद ज्ञानदशा आने पर क्रमसे वह उपशम जैसी हो गई। परन्तु कोई कोई लोग परिचयमे आये उन्हे कुछ कुछ विशेपता भासनेसे कुछ मूल मार्ग पर लक्ष्य आया, और इस तरफ तो सैकडो और हजारो मनुष्य समागममे आये। जिनमेसे कुछ समझदार तथा उपदेशकके प्रति आस्थावाले ऐसे सौ-एक मनुष्य निकलेगे। इस परसे ऐसा देखनेमे आया कि लोग पार होनेकी इच्छा-वाले अधिक है, परन्तु उन्हे वैसा सयोग नही मिलता।

'यदि सच्चे उपदेशक पुरुषका योग मिले तो वहुतसे जीव मूल—मार्ग प्राप्त कर सकते है, और दया आदिका विशेप प्रकाश हो सकता है। ऐसा मालूम होनेसे कुछ चित्तमे आता है कि यह कार्य कोई करे तो अच्छा। परन्तु दृष्टि फेरनेसे वैसा पुरुप ध्यानमे नही आता, इससे कुछ लिखनेवालेके प्रति ही दृष्टि आती हे। परन्तु लिखनेवालेका जन्मसे ऐसा लक्ष्य है कि इस पदके समान एक भी जोखम-भरा पद नही है, और जहाँ तक उस कार्यकी अपनी यथायोग्यता न हो वहाँ तक उसकी इच्छा मात्र भी न करना और प्राय अभी तक वैसा ही आचरण करनेमे आया है। मार्गका यत्किंचित् स्वरूप कइयोको समझाया है, तो भी किसीको एक भी व्रत पच्चखाण तक नही दिया है। अथवा तुम मेरे शिष्य हो और हम तुम्हारे गुरु है, ऐसा भी क्रम प्राय करके प्रदर्शित नही हुआ है।

श्रीमद् राजचन्द्र

वर्ष ३३ वाँ
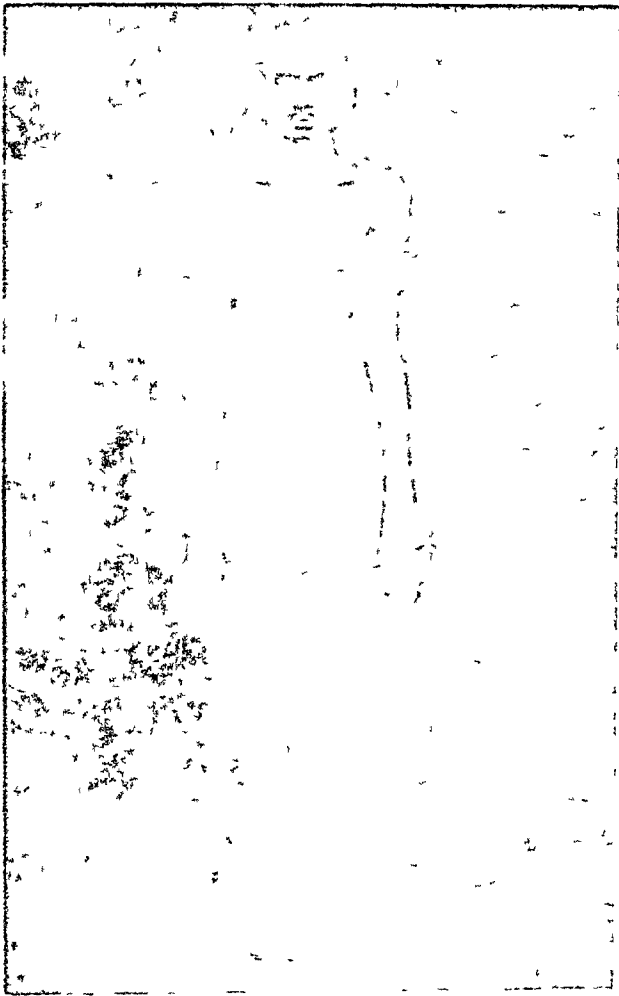
वि स १९५६

कहनेका हेतु यह है कि सर्वसगपरित्याग होने पर उस कार्यकी प्रवृत्ति सहज स्वभावसे उदयमे आये तो करना योग्य है, ऐसी मात्र कल्पना है।

'इसे वास्तवमे उसका आग्रह नही है। मात्र अनुकम्पादि तथा ज्ञानप्रभाव रहता है, उससे कभी-कभी वह वृत्ति (भाव) उठती है, अथवा अल्पाशसे अगमे वह वृत्ति है, फिर भी वह स्वाधीन है। हम विचारते है, यदि वैसा सर्वसगपरित्यागादि हो तो हजारो मनुष्य मूल मार्गको प्राप्त करे और हजारो मनुष्य उस सन्मार्गकी आराधना करके सद्गतिको प्राप्त हो, ऐसा हमसे होना सभव है। हमारे सगमे त्याग करनेकी अनेक जीवोकी वृत्ति हो ऐसा अगमे त्याग है।

'धर्म स्थापित करनेका मान बडा है। उसकी स्पृहासे भी कभी ऐसी वृत्ति रहती होगी। परन्तु आत्माको अनेक बार कसकर देखने पर उसका होना आगेकी दशामे कम ही दिखाई देता है और यदि कुछ सत्तागत रहा होगा तो वह क्षीण होगा ऐसा अवश्य लगता है।

'तो भी मार्गका उपदेश न करना ऐसा आत्मनिश्चय रहता है। एक इसी बलवान कारणसे परिग्रहादिके त्याग करनेका विचार रहा करता है। मेरे मनमे यह रहता है कि यदि वेदोक्त धर्मका प्रकाश करना हो अथवा स्थापन करना हो तो मेरी दशा यथायोग्य है। परन्तु जिनोक्त धर्मका स्थापन करना हो तो अभी मेरी उतनी योग्यता नही है, तो भी विशेष योग्यता है, ऐसा लगता है।'

उस कारणसे जहाँ तक लोगोमे बुद्धिभेद उत्पन्न हो, ऐसी बाह्य उपाधि स्वयको है, वहाँ तक लोगोमे धर्मोपदेशकके रूपमे बाहर न आना ऐसे निर्णय पर श्रीमद् आते है, क्योकि उन्हे ऐसी प्रतीति हुई है कि, 'लोगोको शका पडे इस प्रकारके बाह्य-व्यवहारका उदय है। उस व्यवहारके साथ बलवान निर्ग्रन्थ पुरुष जैसा उपदेश करना वह मार्गका विरोध करने समान है।'

परन्तु भीतर भीतरमे श्रीमद्मे निश्चल श्रद्धा तो स्थापित ही है कि

'यथा हेतु जे चित्तनो, सत्य धर्मनो उद्धार रे,
थशे अवश्य आ देहथी, एम थयो निर्धार रे
धन्य रे दिवस आ अहो!'

भावार्थ कारणपूर्वक मनमे सत्य धर्मके उद्धार करनेका जो भाव है, वह इस देहसे अवश्य होगा—ऐसा निश्चय हो गया है। अहा! उस दिनको धन्य है।

परन्तु यह कार्य कितना कठिन है, इसका भी विचार श्रीमद्को सम्पूर्णत है। इससे वे प्रार्थना भावसे लिखते है

'हे नाथ! या तो धर्मोन्नति करने रूप इच्छाका सहज भावसे समाधान हो, ऐसा हो, अथवा तो वह इच्छा अवश्य कार्यरूप परिणत हो जाय।

'अवश्य कार्यरूप होना अत्यन्त कठिन दिखाई देता है। क्योकि छोटी-छोटी बातोमे बहुतसे मतभेद है और उनकी जडे बहुत गहरी गई हुई है। लोग मूलमार्गसे लाखो योजन दूर है, इतना ही नही परन्तु मूलमार्गकी उन्हे जिज्ञासा

उत्पन्न करानी हो तो भी बहुत कालका परिचय होने पर भी उनका होना कठिन है, ऐसी उनकी दुराग्रह आदिसे जड़प्रधान दशा हो रही है।

अन्तमे धीरे-धीरे बाह्य व्यवहार और उपाधियोकी पकड सहजरूपमे कम होने लगी। व्यापार करनेके दस वर्ष पूरे हुए थे। उनको लगा कि अब व्यापारका हेतु पूर्ण हुआ है। इस लिए अब ससारका त्याग कर समस्त समय आत्मोन्नति करनेवाले साधनोमे व्यतीत करना। इसके लिए श्रीमद् तैयारी भी करने लगे।

उस समय उनके आसपास विशाल कुटुम्ब-परिवार फैला हुआ था। उनके माता-पिता विद्यमान थे, एक भाई और चार बहने थी, धर्मपत्नी थी, दो पुत्र और दो कन्याये थी। कुटुम्ब धन-वैभवसे सुखी था। सर्वत्र श्रीमद्की कीर्ति भी खूब फैल गई थी। ऐसी सुखमय स्थिति थी, फिर भी श्रीमद् विरक्त अवस्थाकी ओर ही प्रयाण कर रहे थे।

स १९५६मे श्रीमद् स्त्री-पुत्रादि और लक्ष्मीका त्याग कर वानप्रस्थ आश्रममे प्रवेश करते है। इस वर्ष वे दरमियान सम्पूर्ण सन्यास लेनेके लिए सर्व प्रकारकी बाह्य तथा अन्तरग तैयारी भी करने लगे थे। परन्तु अचानक उनका शरीर इस अर्सेमे ही बिगडने लगा है। फिर भी श्रीमद् सर्वसगपरित्याग करनेके अपने निर्णयमे उतने ही निश्चल रहते है।

इसी वर्षमे अहमदाबाद समीपके नरोडा गाँवमे, जहाँ मुनि थे वहाँ श्रीमद् पधारे थे। उस समय श्रीमद्ने श्री देवकरणजीसे कहा 'अब हम बिलकुल असग होना

चाहते हैं। किसीके परिचयमे आना अच्छा नही लगता। ऐसी सयम श्रेणीमे रहनेकी आत्माकी इच्छा है।'

श्री देवकरणजीने पूछा 'ज्ञानी पुरुपकी (मे) अनन्त दया है वह कहाँ जायगी?'

श्रीमद्ने कहा 'अन्तमे यह भी छूट जाती है।'

उसके बाद श्रीमद् स १९५७मे पुन अहमदावाद पधारे थे। वे आगाखानके वगलेमे अपनी माता तथा धर्मपत्नी सहित रहे थे। उस समय मुनिजन भी चोमासा पूर्णकर अहमदावाद आये थे।

श्रीमद्के पास हस्त-लिखित 'ज्ञानार्णव' और 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा' नामके दिगम्बर जैन सम्प्रदायके दो विशाल ग्रन्थ थे। ये ग्रन्थ श्री लल्लुजी महाराज और श्री देवकरणजीको माता देवमाता और श्री झवकबाईके हाथसे दिलवाये थे।

उस समय साथके अन्य मुनियोने विहारमे ग्रन्थोके उठानेमे प्रमादवृत्ति ग्रहण की और वृत्ति सकुचित की, इन सब दोपोको वे स्वय जानकर, उनको दूर करे इस उद्देशसे श्रीमद्ने कहा

'हे मुनियो, इस जीवने स्त्रीपुत्रादिका भार उठाया है। परन्तु सत्पुरुपकी या धर्मात्माओकी प्रमाद छोडकर सेवा-भक्ति नही की है।'

तत्पश्चात् श्रीमद्ने मुनिश्री लक्ष्मीचदजीसे कहा 'श्री देवकरणजीके पासका 'ज्ञानार्णव' ग्रन्थ वे जहाँ तक पढे वहाँ तक विहारमे तुम वहन करना और 'श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा'

श्री लल्लुजी पढे वहाँ तक विहारमे श्रीमोहनलालजी उठाये।'

बातचीत करते हुए बीचमे श्री देवकरणजीने पूछा 'यह शरीर एकदम इतना कृश कैसे हो गया है?'

श्रीमद्‌ने कहा 'हम शरीरके विरुद्धमे है। धरमपुरमे रहकर अपथ्याहार करनेसे ऐसा दिखाई देता है।'

श्रीमद्‌ने माता देवमाताको बारह व्रत सक्षेपमे लिख दिये और व्रत लेनेके लिए मुनियोके पास अम्बालालभाईके साथ भेजा था। साथमे श्री झबकबाई भी थी।

'श्री ज्ञानार्णव'मेसे ब्रह्मचर्यका अधिकार सुनानेकी भी श्रीमद्‌ने सूचना की थी तदनुसार श्री देवकरणजीने माता तथा झबकबाईको वह अधिकार बाचकर सुनाया। इसके बाद श्री देवकरणजीने माता देवमातासे कहा

'माताजी, अब आप आज्ञा दे, जिससे कृपालुदेव (श्रीमद्) सर्व विरति—महाव्रत धारण करे और अनेक जीवोका उद्धार करे।'

माता श्री देवमाता बोली

'मुझे बहुत मोह है, मेरा उनके ऊपरका मोह नही छूटता। उनका शरीर अच्छा होने पर मै सर्व विरति ग्रहण करनेकी उन्हे आज्ञा दूँगी।'

उसी दिन श्रीमद् मुनियोके समीप भावसारकी वाडीमे गये थे। वहाँ श्री मोहनलालजीने प्रश्न किया

'मरणके समय आत्मप्रदेश किस अगमेसे निकलते होगे?'

श्रीमद्‌ने दृष्टान्त देते हुए उत्तर दिया

'नालीमे पानी बहता हो और नाली जहाँसे टूट जाती

है वहीसे पानी चला जाता है। हमने मरणके स्वरूपको बराबर समझ लिया है कि, इस प्रकारकी स्थितिको जगतके जीव मरण कहते है।'

मुनि भावसारकी वाडीसे विहार कर सरसपुरके उपाश्रयमे गये थे। रातमे बारह बजनेके बाद अम्बालालभाईको मुनियोके पास जानेकी आज्ञा होनेसे वहाँ वे अकेले गये और मुनियोसे बोले 'आज मुझ पर परम गुरुने अपूर्व कृपा की है। मेरा जो प्रमाद था उसे आज नष्ट कर दिया है, जागृत किया है। मूलमार्ग कैसा होना चाहिए उस सम्बन्धमे व्यवहार और परमार्थका पोषण हो उस प्रकारके सद्व्यवहारका स्वरूप भी समझाया है।' इस तरह प्रभात तक बाते करके अम्बालालभाई वापिस श्रीमदके पास गये थे।

यहाँ पर एक प्रसगका स्मरण करना आवश्यक है। ईडरके समागममे एक समय आम्रवृक्षके नीचे श्रीमद्ने मुनियोसे कहा था

'हे मुनियो, जीवकी वृत्ति तीव्रतामेसे भी शिथिल हो जाती है। अम्बालालकी वृत्ति और दशा, प्रथम भक्ति और वैराग्यादिके कारणसे लब्धि प्रगट हो, वैसी थी, वह ऐसी कि तीन-चार घण्टे उपदेश किया हो, उस उपदेशको दूसरे या तीसरे दिन उसे यदि हम कहे तो वह सब हमारे शब्दोमे ही लिख लाता। हालमे प्रमाद और लोभादि कारणसे वृत्ति शिथिल हो गई है, और वह दोष उसमे प्रगट होगा ऐसा हम बारह मास पहलेसे जानते थे।'

यह सुनकर श्री लल्लुजीके मनमे खेद उत्पन्न हुआ। उन्होने श्रीमद्‌से पूछा 'क्या यह दोष ज्योका त्यो ही रहेगा?'

तव श्रीमद्‌ने कहा

'मुनि, खेद मत करो। जिस प्रकार नदीके प्रवाहमे वहता हुआ पत्ता किसी जालेमे जाकर रुक जाता है, परन्तु पुन तीव्र प्रवाहके वेगसे जालेसे अलग होकर महासमुद्रमे जा मिलता है उसी प्रकार उसका प्रमाद हमारे उपदेशसे दूर होगा और परमपदको पायेगा।'

अहमदावादमे एक दिन श्रीमद्‌ने श्री देवकरणजीसे कहा

'हमने स्त्री और लक्ष्मी दोनोका त्याग किया है और सर्वसगपरित्याग करनेकी माता आज्ञा देगी, ऐसा लगता है।'

यह सुनकर श्री देवकरणजी आनन्दमे आकर वोल उठे 'हमारे पूर्व पुण्यका उदय हुआ कि हमको निरन्तर आपकी सेवा, समागमका योग रहेगा।'

दूसरे दिन वढवाण जानेसे पहले आगाखानके वगले पर श्री लल्लुजी और श्री देवकरणजीको वुलवाकर श्रीमद्‌ने अन्तिन सूचना देते हुए कहा

'हममे और वीतरागमे भेद न मानना।'

अहमदावादसे श्रीमद्‌ वढवाण गये। वहाँ खभातके भाई लल्लुभाई और नगीनभाई श्रीमद्‌के दर्शन करने आये। वहाँसे वापिस खभात जाते समय श्रीमद्‌ने उनसे कहा था

'फिर मिले या न मिले, समागम हो या न हो, परन्तु हमारे प्रति अखड विश्वास रखना। हममे और श्री महावीर देवमे कुछ भी अन्तर नही है, केवल इस

कुर्तेका फेर है।'

वढवाण श्रीमद् रहे उस समय 'परमश्रुत प्रभावक मडल'की योजना श्रीमद्ने प्रारम्भ की थी। स १९५६के भाद्रपद मासके एक पत्रमे इसका उल्लेख करते हुए श्रीमद् विदित करते है

'परम सत् श्रुतके प्रचाररूप एक योजनाका विचार किया है। उसका प्रचार होकर परमार्थ मार्ग प्रकाशित होगा। "प्रज्ञाववोध" भाग "मोक्षमाला"के १०८ गुरिया यहाँ लिखाऊँगा।'

एक अच्छी रकमका चन्दा करके उसमेसे महान आचार्योके अप्रसिद्ध ग्रन्थोको प्रकाशित कराकर तत्त्वविचारणाके लिए जनसमूहको अनुकूलता मिले, उस प्रकारके हेतुसे उस सस्थाकी स्थापना हुई थी।

लक्ष्मीका त्याग किये वाद श्रीमद् अत्यन्त सूक्ष्मतासे व्रत पालते थे। रेलगाडीका टिकट भी वे अपने पास नही रखते थे। 'परमश्रुत प्रभावक मडल'के कारणसे धनादिकी वातमे कुछ करना पडे तो उसे वे अतिचार मानते थे।

परन्तु इसी अरसामे श्रीमद्की तवियत धीरे धीरे अधिकाधिक विगडती ही गई। वायु परिवर्तनके लिए उन्हे समुद्र किनारे वम्वई, माटुगा, शिव और वलसाड समीपके तीथल इत्यादि स्थानोमे ले जाया गया था। वहाँसे वादमे वढवाण केपमे लीमडीके निवासमे थोडे समय रहे थे।

यहाँ वढवाणमे श्रीमद्‌ने पद्मासन और कायोत्सर्ग मुद्राकी दो तसवीरे भाई सुखलालके कहनेसे खिचवायी थी।

इसके वाद उन्हे राजकोट ले गये। यहाँ वहुतसे मुमुक्षु आते, परन्तु शरीर अत्यन्त अशक्त हो जानेके कारण डाक्टरोने, श्रीमद्‌से कोई विशेष वात-चीत न करे इसकी खास निगरानी रखी थी।

यदि पत्र लिखाने पडते तो वे एक-दो लाइनका ही लिखाते थे। राजकोटमे लिखे गये आखिरी पत्र यहाँ दिये है

१

स १९५७, फाल्गुन वदी १३, सोमवार

ॐ शरीरके सम्वन्धमे दूसरी वार आज अप्राकृत क्रम शुरू हुआ।

ज्ञानियोका सनातन सन्मार्ग जयवन्त रहे।

२

स १९५७, चैत्र सुदी २, शुक्रवार

ॐ अनन्त शान्तमूर्ति चन्द्रप्रभ स्वामीको नमो नम।

उदयमे आई हुई तथारूप वेदनीयका वेदन करनेमे हर्ष-शोक क्या? ॐ शान्ति।

श्रीमद्‌के छोटे भाई श्री मनसुखभाई, श्री रेवाशकरभाई, डॉ प्राणजीवनदास, लीमडीवाले भाई मनसुखभाई आदि श्रीमद्‌की सेवामे उपस्थित थे। परन्तु इन सवकी प्रेम और हृदयपूर्ण सेवा और शुश्रूषा भी गमनोन्मुख आत्माको नही रोक सकी।

श्री मनसुखभाई रवजीभाईने श्रीमद्‌की अन्तिम अवस्थाका वर्णन एक पत्रमे निम्न प्रकारसे दिया है

'मनदुःख—मैं अन्तकी पल पर्यन्त असावधान रहा। उस पवित्रात्माने टेढी-मेढी रीतिसे चेताया तो भी रागके कारण न समझ सका। अब स्मरण होता है कि उन्होने मुझे एकबार चेतावनी दी थी।

'मैं अज्ञानी, अन्ध और मूर्ख उनकी वाणी समझ सकनेको असमर्थ था।

'देहत्यागके पहले दिन सायकालको मुझे रेवाशकरभाई, नरभेराम, इत्यादि भाइयोसे उन्होने कहा—'तुम लोग निश्चिन्त रहना, यह आत्मा शाश्वत है, तुम शान्ति और समाधिरूपसे चलना। जो रत्नमय ज्ञानवाणी इस देह द्वारा कही जानेवाली थी, अब उसको कहनेका समय नही है। तुम सब पुरुपार्थ करते रहना।

'ऐसी स्पष्ट चेतावनी होने पर भी हम लोग रागके कारणसे नही चेत सके। हम तो इस प्रकारके भ्रममे रहे कि अशक्ति दिखाई देती है।

'रातके अढाई बजे सर्दी हुई, उस समय उन्होने कहा कि, "निश्चिन्त रहना, भाईका समाधि मरण है।"

'उपचारोके करनेसे सर्दी कुछ कम हुई।

'पौनेआठ बजे सबेरे दूध दिया, वह उन्होने पिया। बिलकुल सम्पूर्ण सुधमे मन, वचन और कायाके योग थे।

'पौनेनौ बजे कहा "मनसुख, दुःखी न होना, माँको अच्छी तरह रखना, मैं अपने आत्मस्वरूपमे लीन होता हूँ।"

'साढेसात वजे जिस विछौने पर लेटे हुए थे उस परसे एक कोच पर ले जानेकी मुझे आज्ञा दी।

'मुझे लगा कि अशक्ति विशेष मालूम देती है, इस लिए फेरफार नही करना चाहिए। तव उन्होने पुन आज्ञा की कि त्वरासे फेरफार कर।

'इससे मैंने समाधिस्थ भावसे सो सके ऐसे कोच पर व्यवस्था की, जिसके ऊपर वह पवित्र देह और आत्मा समाधिस्थ भावसे अलग हुए। लेश मात्र भी आत्माके निकलनेके चिन्ह् न दिखाई दिये। ज्यो-ज्यो प्राण कम होने लगे वैसे-वैसे मुख-मुद्राकी कान्ति विशेषरूपसे प्रकाशित होने लगी।

'वढवाण केम्पमे जिस स्थितिमे खडे-खडे चित्र खिचवाया था उसी स्थितिमे कोच पर पॉच घण्टो तक समाधि रही, लघुशका, दीर्घशका, मुख या ऑखसे पानीका निकलना या प्रस्वेद आदि कुछ भी पौनेआठ वजेसे दो वजे तक, प्राण निकल गये तो भी कुछ न मालूम दिया। दूध पीनेके एक घण्टे वाद हमेशा शौच करने जाना पडता था, उसके वदले आज कुछ भी नही था। जिस प्रकार यत्रमे चावी देकर उमे वश किया जाता है इस प्रकारसे किया था।

'ऐसे समाधिस्थ भावसे उस पवित्र आत्मा और देहका सम्वन्ध छूटा .. ।'

इस प्रकार स. १९५७के चैत्र वदी पचमी और मगल-वारके दोपहरके दो वजने पर श्रीमद् राजचन्द्रजी इस क्षेत्र और नाशवान शरीरका त्याग करके उत्तम गतिको प्राप्त

हुए, परमपद पाया। ॐ शान्ति शान्ति शान्ति।

'एह परमपद प्राप्तिनु कर्यु ध्यान मे,
गजा वगर ने हाल मनोरथरूप जो,
तोपण निश्चय राजचन्द्र मनने रह्यो,
प्रभु-आज्ञाए थाशु ते ज स्वरूप जो।'

अर्थ मैने इस परमपद प्राप्तिका ध्यान किया है। इस समय वह मेरी शक्तिमे बाहर है, मात्र मनोरथरूप है। तो भी राजचन्द्रके मनमे इस बातका निश्चय है कि प्रभुकी आज्ञासे अवश्य उस स्वरूपको पाऊँगा।

श्रीमद्के अन्तिम समयमे नवलचन्दभाई भी उपस्थित थे। उन्होने अम्बालालको पत्र द्वारा लिखा था

'निर्वाण समयकी मूर्ति अनुपम, चैतन्यव्यापी, शान्त, मनोहर और देखते हुए तृप्ति न हो ऐसी सुशोभित होती थी, ऐसा हम गुणानुरागियोको तो लगे, परन्तु जो लोग दूसरे सम्बन्धसे उपस्थित थे उनको भी आश्चर्य और पूज्य-भाव उत्पन्न करती हुई मालूम देती थी। उस समयका अद्भुत स्वरूप वर्णन करनेका आत्मामे जो भाव आता है, वह लिखा नही जा सकता।'

जैसा आगे हम देख चुके है, उसी पत्रमे श्री मनसुख-भाई लिखते है

'उन्होने स्वय बिलकुल वीतराग भावसे प्रवृत्ति की थी, अर्थात् किसी भी प्रकारसे उन्होने अपनी मानकर प्रवृत्ति नही की थी। उदासीनताको ही योग्य माना था। अब हमलोगोको किसका अवलम्बन रहा—मात्र उनके वचना-

मृतोका। और उनके सद्वर्तनका अनुकरण करना, इसे ही मैं महान् अवलम्बन मानता हूँ।'

श्री अम्बालालभाई अपने हृदयको नीचेके पत्र द्वारा खाली करते हैं

'विशाल अरण्यमे अति सुन्दर और शान्ति देनेवाला एक ही वृक्ष हो, उस वृक्षमे नि शकासे, शान्ततासे और कोमलतासे सुखके आनन्दमे पक्षी मुसकराते हो, वह वृक्ष यदि अग्निसे प्रज्वलित हुआ हो तो उस समय उस वृक्षसे आनन्द पानेवाले पक्षियोको कितना दु ख प्राप्त हो, कि जिसको एक क्षण भी शान्ति न हो। अहाहा! उस समयके दु खका वर्णन करनेमे बडे-बडे कवीश्वर भी असमर्थ है, वैसा ही अपार दु ख भयकर अटवी (वन) मे इन पामर जीवोको देकर हे प्रभु! तुम कहाँ चले गये?

'हे भारत-भूमि! क्या ऐसे, देह होने पर भी विदेह-रूपसे विचरते हुए प्रभुका भार तेरेसे सहन न हुआ? यदि वैसा ही था तो इस पामरका ही भार तुझे हल्का करना था, व्यर्थमे तूने अपनी पृथ्वी पर बोझारूप कर रखा है।

'हे महाविकराल काल, तुझे जरा भी दया न आई! छप्पनियाके महादुष्कालके समयमे तूने लाखो मनुष्योका बलिदान लिया, तो भी तू तृप्त न हुआ, और उससे भी तेरी तृप्ति नही हुई तो इस देहका ही प्रथम तुझे भक्षण करना था, ऐसे परम शान्त प्रभुके जन्मान्तरका तूने क्यो वियोग कराया? तेरी निर्दयता और कठोरताका मेरे प्रति उपयोग करना था! तू क्या हँसमुख होकर मेरे सामने देखता है?

'हे शासनदेवी! तुम्हारा बल इस समय कालके सन्मुख कहाँ चला गया? तुम्हारे शासनकी उन्नतिकी सेवा करनेमे अग्रसरकी तरह साधनभूत ऐसे प्रभु थे, तुम त्रिकरणयोगसे जिन्हे नमस्कार कर सेवामे उपस्थित रहती थी ऐसी तुम इस समय कौनसे सुखमे निमग्न हो गई कि यह महाकाल क्या करने लगा है, उसका विचार ही न किया?

'हे प्रभु! तुम्हारे विना हम लोग किसके पास शिकायत करेगे? जब तुमने ही निर्दयता दिखाई तब तो दयालु होगा ही कौन? हे प्रभु! तुम्हारी परम कृपा, अनन्त दया, करुणामय हृदय, कोमल वाणी, चित्तहारक शक्ति, वैराग्यकी तीव्रता, बोधबीजकी अपूर्वता, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्-दर्शन और सम्यग्चारित्रकी सम्पूर्ण उज्ज्वलता, परमार्थलीला, अपार शान्ति, निष्कारण करुणा, निःस्वार्थ बोध, सत्सगकी अपूर्वता इत्यादि गुणोका मै क्या स्मरण करूँ? विद्वान कवि और राजेन्द्रदेव भी आपके गुणोका स्तवन करनेमे असमर्थ है, तो इस लेखनीमे अल्प भी सामर्थ्य कहाँसे आये? आपके परमोत्कृष्ट गुणोका स्मरण होनेसे मै अपने शुद्ध अन्तःकरणसे त्रिकरणयोगसे आपके पवित्र चरणारविन्दोमे अभिवन्दन करता हूँ। आपका योगबल, आपसे प्रकाशित हुए वचन और दिया बोधबीज हमारी रक्षा करे, यही सदा चाहता हूँ। आपने सदाके लिए यह स्मरणमाला दी, अब उसको विस्मृत नही करूँ।

'खेद, खेद और खेद, इसके सिवाय दूसरा कुछ नही

सूझता। रो-रोकर रातदिन बिताता हूँ। कुछ समझमे नही आता।'

यही स्थिति श्रीमद्के सभी भक्तजनोकी तथा मुमुक्षु जनोकी हुई थी। धर्मका महान अवलम्बन और पोषण देनेवाले कल्पवृक्षके समान श्रीमद् सद्गुरुका वियोग प्रत्येक मुमुक्षुके लिए असह्य ही था।

श्रीमद्की धर्मपत्नी झबकबाई अपना समय एकान्तमे, श्रीमद् द्वारा दी गई स्मरणकी मालामे व्यतीत करती थी। बहुत ही थोडे समयमे उनका नश्वर शरीरसे सम्बन्ध छूट गया था।

श्रीमद्की माता देवमाताका हृदय अत्यन्त कोमल था। यदि कोई श्रीमद्की बात निकालता तो उनकी आखे आसुओसे भर जाती थी।

इस प्रकार परमकृपालु श्रीमद् राजचन्द्रजी सभीके अन्तःकरणमे व्याप गये थे। ऐसे महान् सद्गुरुका देह-विलय होनेसे सभीका हृदय आकुल-व्याकुल हुए बिना रहे ही क्यो?

परन्तु यहाँ तो श्रीमद्ने बीस वर्षकी उम्रमे एक पत्रमे जो लिखा था, वह हम लोगोके हृदयका आश्वासनरूप हो जाता है और श्रीमद्का प्रेरक सन्देश दे जाता है

'आत्मभावमे सब कुछ रखना।

'धर्मध्यानमे उपयोग रखना।

'जगतके किसी भी पदार्थ, सगे, कुटुम्बी, मित्रका कुछ भी हर्ष–शोक करना योग्य नही है।

'परम शान्ति पदकी इच्छा करे यही हमारा सर्व सम्मत ध ं है, और य ी इच्छा करते करते मिल जायगा। इस लिए निश्चिन्त रहो।

'मै किसी गच्छमे नही, परन्तु आत्मामे हूँ, यह मत भूलना।'

और हमारा आत्मा परमकृपालुदेव श्रीमद् राजचन्द्रजीके पवित्र चरणकमलोमे भक्तिभावपूर्वक प्रणाम करते हुए प्रार्थना करता है

'परम पुरुष प्रभु सद्‌गुरु, परम ज्ञान सुखधाम,
जेणे आप्यु भान निज, तेने सदा प्रणाम

अर्थ परम पुरुष, सद्‌गुरु, परम ज्ञान और सुखके धाम-रूप जिस प्रभुने आत्मका ज्ञान कराया, उसे सदा प्रणाम है।

ॐ

१६

श्रीमद्के स्मारक

'श्री परमश्रुत प्रभावक मडल'· स १९५६के पर्यूषण पर्वमे श्रीमद्की वढवाण केम्पमे स्थिति थी। उस समय उनकी शरीर-प्रकृति अस्वस्थ होनेसे अनेक गुणानुरागियोका समूह वहाँ एकत्र हुआ था। इस अवसर पर श्रीमद्की ऐसी इच्छा हुई कि चिरकाल तक रह सके ऐसा कुछ ज्ञानप्रचारका कार्य हो तो अच्छा। इस इच्छाको एकत्रित हुए गुणानुरागी भाइयोने स्वीकार किया और उस ही समय एक फड कायम किया। थोडे ही समयमे उस फडमे ९,००० रुपये आ गये। इस फडकी योग्य व्यवस्था करनेके लिए वह रकम सबने मिलकर श्रीमद्को अर्पण की। श्रीमद्ने उसकी एक फेहरिस्त कराई और उसे वम्बई शा रेवाशकर जगजीवनके नामसे चलनेवाली पेढी पर भिजवा दिया।

इस प्रकारसे इस मडलकी स्थापना हुई। श्रीमद्की इच्छानुसार इसका नाम 'परमश्रुत प्रभावक मडल' रखनेमे आया। परमश्रुत प्रभावक मडल अर्थात् उत्कृष्ट ज्ञानका उत्कर्ष करनेवाला मडल—लोकसमूहमे उत्कृष्ट ज्ञानका

प्रचार करनेवाला मडल।

'परमश्रुत प्रभावक मडल'की योजना निश्चितरूप ले इससे पहले ही श्रीमद्का देहत्याग हो गया। उसके बाद जैन भडारोमेसे मूल ग्रन्थोको प्राप्त करके भाषान्तरका काम न हो सकनेके कारण, श्री वीतरागश्रुतके सिद्धान्तमेके न्याय और तत्त्व विषयक ग्रन्थोका प्रकाशन हिन्दीभाषाके अनुवाद-रूपमे द्विमासिक द्वारा प्रारम्भ हुआ। बादमे द्विमासिकके बदलेमे अमुक समयके बाद समस्त ग्रन्थको प्रगट करना शुरू हुआ। इस प्रकार श्रीमद्के स्मारकरूप प्रकाशित ग्रन्थोका 'श्री राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला' नाम रखनेमे आया। स्व रेवाशकरभाई जगजीवनदासके मत्रित्वमे इस सस्थाने अनेक उत्तम ग्रन्थो द्वारा जन-समाजमे अलभ्य ग्रन्थोके अभ्यासकी वृद्धि की है।

श्रीमद्की विद्यमानतामे उन्हे अलग-अलग प्रसगमे मुमुक्षु-भाई तथा मुनि आदिकी ओरसे भिन्न-भिन्न विषय सम्बन्धी पूछे गये प्रश्नोके जवाबके पत्रोका सग्रह, खभात और अहमदावादके मुमुक्षु भाईयो द्वारा किया हुआ तथा श्रीमद्की बनाई हुई भावनाबोध, मोक्षमाला, आत्मसिद्धि इत्यादि कृतियाँ आदि सामग्री एकत्रित करके तथा उसका सशोधन कराके 'श्रीमद् राजचन्द्र' नामका एक विशाल ग्रन्थ इस मडलने छपाकर प्रसिद्ध किया है यह भी श्रीमद्का एक अद्भुत स्मारक ही है।

श्री सुबोध पाठशाला श्री अम्बालालभाई मुमुक्षु उपयोगी पुस्तके श्रीमद्की सूचना अनुसार मगाकर रखते और श्रीमद्जी

सूचना करते तदनुसार जिसे जो योग्य हो उसे वे भेजते। जिसे खरीदनेकी इच्छा होती वह मूल्य देकर पुस्तकको रख लेता, नही तो अभ्यास कर वापिस भेज देता। इस प्रकार ज्ञानकी प्याऊरूप 'श्री सुबोध पाठशाला'की स्थापना हुई। वहाँ खभात तथा आस-पासके मुमुक्षु आकर सद्ग्रन्थोका अभ्यास करते, भक्ति करते, तथा सत्सगका लाभ प्राप्त करते। इस समय भी यह सस्था पुस्तकालय और भक्तिस्थानके तौर पर सत्सगका धामरूप बन गई है।

श्री निजाभ्यास मडप श्रीमद् खभातके पास वडवामे निवृत्तिके लिए अनेक बार आकर रहे थे, उस तीर्थस्थलके स्मरणार्थ तथा सत्सगके लिए यह एकान्त उत्तम स्थल होनेसे एक सुन्दर मकान और मन्दिरकी अनुकूलतासहित 'श्री निजाभ्यास मडप' नामक श्री पोपटलाल महोकमचन्द तथा उनके परिचित श्रीमद्के प्रशसकोने एक सस्था स्थापित की है, वह भी सत्सगका रमणीय स्थान है।

श्रीमद्जीने अपने मुखसे ऐसा कहा था कि सामनेके टीले पर श्री चन्द्रप्रभ प्रभुकी स्थापना होगी।

खभातके स्टेशनसे एक मील दूर यह आश्रम सुशोभित हो रहा है। वडके पास वावडी होनेके कारण इसे वडवा कहते है।

'श्री सनातन जैन धर्म—श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम' श्री लघुराज स्वामी मुनिचर्याके अनुसार अनेक स्थलोमे कही भी स्थिर स्थिति किये बिना विहार किया करते थे। धीरे-धीरे वृद्धावस्था और व्याधिके कारण चलनेकी शक्ति

घट जानेसे, अगासके पास सन्देसर गाँवमे अनेक भक्तोका समूह भक्तिके लिए एकत्रित हुआ था। उनके आग्रहसे श्री लघुराज स्वामीने, कोई स्थल यदि श्रीमद्के स्मारकके रूपमे और भक्तिधामके तौर पर पसन्द पडे ऐसा मकान वने तो वहुत समय तक रहनेका स्वीकार किया। इस प्रकार स १९७६की कार्तिक सुदी पूर्णिमाके दिन सन्देसरमे इस आश्रमका सकल्प हुआ। सन्देसरके न्व जीजीभाई नामके उदार सद्गृहस्थने आश्रमके लिए जमीन दी और अन्य गृहस्थोने दानमे अच्छी रकम प्रदान की। इस तरह अगास स्टेशनके पासमे श्रीमद् राजचन्द्र आश्रमकी स्थापना हुई।

इस आश्रममे मनोहर मन्दिर है, जिसमे नीचे श्वेताम्वर और ऊपर दिगम्वर जिन प्रतिमाये तथा भौयरामे श्रीमद् राजचन्द्रकी सगमरमरकी ध्यानस्थ भव्य प्रतिमा विराजमान है। इस प्रतिमाकी एक ओर प्रणव ॐ कारकी स्थापना है तथा दूसरी ओर श्रीमद्जीके चरणोकी स्थापना है।

आश्रमके विशाल मुख्य द्वारके ऊपर 'क्षमा ही मोक्षका भव्य दरवाजा है' यह वाक्य वडे अक्षरोसे अकित किया हुआ है।

'श्रीमद् राजचन्द्र जन्म-भवन' श्रीमद् राजचन्द्रका जन्म ववाणियामे हुआ था। यह स्थान भी पवित्र माना जाता है। इससे श्री रवजीभाई पचाणभाईकी मूल जगह तथा उसके आस-पासकी जगह पर 'श्रीमद् राजचन्द्र भवन' नामका भव्य भवन वनाया गया है।

इस जन्म-भवनमे जिनालय, गुरु मन्दिर, व्याख्यानगृह

तथा धर्मशालाका समावेश होता है।

'श्रीमद् राजचन्द्र ज्ञान-प्रकाश मन्दिर' श्रीमद् राजचन्द्रके ववाणियामे सात वर्षकी आयुमे जिस ववूलके वृक्षके ऊपर जातिस्मरण ज्ञान हुआ था उस स्थान पर श्रीमद् राजचन्द्र ज्ञानप्रकाश मन्दिरकी स्थापना की है। उसमे स २००८की कार्तिक सुदी पूर्णिमाके दिन श्रीमद्के चरणोकी स्थापना की है।

'श्रीमद् राजचन्द्र विहार भवन' श्रीमद् राजचन्द्र एकान्तमे साधनाके लिए वारम्वार ईडरके पहाडोमे विचरे थे वहाँ घटिया पहाड पर एक वडी शिलाको श्रीमद्ने 'सिद्धशिला' कहा था। इस स्थान पर आज सुन्दर मन्दिर, अभ्यास-मडप और धर्मशाला वनी हुई है। यह आत्मसाधनाके लिए एकान्त और शान्त स्थान है।

'श्री उत्तरसडा-वनक्षेत्र' स १९५४मे निरावरण खेतोके एक मकानमे श्रीमद् एकान्त चर्याके लिए रहे थे। उस मकानको पुन मन्दिर रूपमे निर्माण करके धर्मशालासहित एक सुन्दर स्थान वनाया गया है।

'श्रीमद् राजचन्द्र समाधि मन्दिर'· श्रीमद् राजचन्द्रका अन्तिम अग्निसस्कार राजकोटमे नदीके किनारे हुआ था। उस स्थान पर एक समाधि-मन्दिर वनाया गया है।

'श्रीमद् राजचन्द्र ज्ञानभडार' श्रीमद् राजचन्द्र ज्ञानभडार नामकी साहित्य प्रकाशनकी सस्थाका समावेश, अहमदावादमे गूजरात विद्यापीठ द्वारा सचालित पुरातत्त्व मन्दिरमे किया है। परन्तु पुरातत्त्व मन्दिरके वन्द हो जानेसे इस समय

'श्रीमद् राजचन्द्र ज्ञानभडार' गूजरात विद्यापीठ द्वारा उसका सचालन हो रहा है।

गूजरात विद्यापीठकी ओरसे 'श्री राजचन्द्र जयन्ती माला' प्रकाशित होती है। इसमे आज तक तत्त्वज्ञान सम्बन्धी छ पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है। इसमे श्रीमद् राजचन्द्र कृत 'आत्मसिद्धिशास्त्र' और 'श्रीमद् राजचन्द्रकी दृष्टान्त कथा' आदिका समावेश होता है।

श्रीमद्के भक्तिवान भाइयोने अपने अपने गाँवोमे सत्सग और भक्तिके लिए श्रीमद् राजचन्द्र मन्दिर वनाये हैं। इस प्रकार काविठा, नार, भादरण, सुणाव, सीमरडा, धामण, सडोदरा, आहोर, इन्दौर, अहमदावाद, वढवाण, वोरसद, कलोल, वसो, नरोडा, ववाणिया, वेग्लोर, वडाली, हम्पी और देवलाली आदि स्थानोमे 'श्रीमद् राजचन्द्र मन्दिर'की स्थापना की गयी है।

श्रीमद् राजचन्द्रके आत्मानुभवी साहित्य और साधनासे आकर्पित भक्तोका समुदाय वढता जाता है वैसेवैसे उपासना--साधनाके स्थान, मन्दिर स्मारकके रूपमे वढते जाते है।

इन सभी स्मारकोकी अपेक्षा श्रीमद् राजचन्द्रजीका सवमे श्रेष्ठ स्मारक तो श्रीमद्के जीवन-सन्देशको ग्रहण कर यथाशक्ति प्रयत्न कर आत्म-साधनाका पुरुषार्थ करनेवाले सभी श्रीमद्के भक्त मुमुक्षु ही है। वे मुमुक्षु श्रीमद्की शिक्षाको आत्मसात् करके पवित्र तीर्थधामके समान वन सकते हे, और उनके अन्त करणरूपी मन्दिरमे कृपालुदेवका सदा निवास है।

अन्तमे कृपालुदेवके पवित्र चरणकमलोमे मस्तक नमाकर प्रार्थना करता हूँ।

शु प्रभुचरण कने धरूँ, आत्माथी सौ हीन,
ते तो प्रभुए आपियो, वर्तु चरणाधीन'

मैं प्रभुके चरणकमलोमे क्या रखूँ? सभी पदार्थ आत्मासे तुच्छ है, प्रभुने ही उस आत्माको प्रदान किया है, इससे प्रभुके चरणोके आधीन होकर प्रवृत्ति करूँ यही प्रार्थना है।

आत्मसिद्धिशास्त्र दो. १२५

परिशिष्ट–१

पत्र–सदर्भ

जीवन-साधनामे 'श्रीमद् राजचन्द्र' (गूजराती) वृहद ग्रन्थमेसे लिए हुए लेखके पत्राक

जीवन-साधना		श्रीमद् राजचन्द्र वृहद ग्रन्थ
पृष्ठ	पक्ति	स २००७की आवृत्तिके पत्राक
५	१० से १७	८९
६	पूरा पृष्ठ	८९
७	१ से १४	८९
७	१९ से २४	१७-मोक्षमाला पृ ५७
८	१ से ५	"
९	५ से १५	८९
१२	१८ से २५	९६० हाथ नोध-१ (३२)
१३	१ से ५	"
१३	१३ से १४	७७
१४	१३ से १७	४२४
१५	८ से १९	८९
१५	२५ से	१२८
१६	पूरा पृष्ठ	१२८

पृष्ठ	पंक्ति	पत्रांक
१७	१ से २१	१२८
१८	७ से १०	८९
१९	७ से ८	८९
१९	१५ से २०	८९
२०	१ से २	८९
२०	४ से ७	८९
२१	२२ से २४	१२६
२२	१ से ३	१२६
२३	१५ से २०	८९
३४	१६ से २८	१८
३५	१ से ७	१८
४३	२ से ५	७१८-आत्मसिद्धि गा ११७
४५	८ से १५	२१(७६), २१(८०), २१ (१२)६०(११), ६०(१२)
४७	४ से ९	१७ मो मा पाठ ८४
४७	१३ से २०	४०
४८	६ से १८	१७ मो मा. पाठ ९९
४९	५ से १४	४९६
४९	२० से २१	६
४९	२२ से २४	८
५०	१ से ३	८
५०	४ से ५	२१ (१२)
५०	६ से १२	८४
५०	१३ से १५	१०८
५०	१६ से १७	११२
५०	१८ से १९	१०८

पृष्ठ	पक्ति	पत्राक
५०	२० से २३	२१ (२६), २१(३४)
५०	२४	७
५१	१ से ४	७
५१	१५ से २४	१९(१० -८३ -८४ -२०१ -३१५ -६७८ -९० -२४५ -४०१ -४०९ -५४४ -५४३ -५४५ -५५९ -५६०)
५२	१ से १३	१९(७५ -१९० -३९५ -४२३ -४२४ -४३६ -४५८ -४५९ -५०५ -५०६ -६३८ -२८७ -३१८ -२९७ -२९८ -७० -७२ -७३ -६४ -१३९ -२३५)
५२	२१ से २२	१०१
५२	२३ से २४	१९(५४९ -४६)
५३	१ से २	१९(१३७ -१७३)
५३	१५ से २४	१७ मो मा पाठ ६४
५४	१ से २३	,,
५४	२४	१७ मो मा पाठ ६५
५५	१ से २०	१७ मो मा पाठ ६५
५६	१५ मे १७	१०३
५७	१ से ३	१०३
५७	८ मे २१	३०
५९	११ से २४	७८

पृष्ठ	पंक्ति	पत्रांक
६०	१ से १३	७८
६०	१५ से २१	८२
६०	२४	११३
६१	पूरा पृष्ठ	११३
६२	१ से १०	११३
६२	१६ से २४	८२
६३	पूरा पृष्ठ	८२
६४	१ से ७	८२
६४	२१ से २४	९६० हाथ नोंध- १(३२)
६६	७ से १७	१३३
६७	१ से २०	१३३
६८	३ से ४	१५२
६९	१ से २	१५२
६९	५ से १८	३२
६९	२० से २४	९१
७०	१ से ७	९१
७०	१३ से १८	१५७ (११)
७०	२२ से २४	१८७
७१	पूरा पृष्ठ	१८७
७२	१ से ७	१८७
७२	९ से १३	१८९
७२	२० से २२	२०१
७३	४ से २४	२५५
७४	पूरा पृष्ठ	२५५
७५	१ से २१	२५५
७६	१ से १२	२५८

पृष्ठ	पंक्ति	पत्रांक
७७	३ से १०	९६० हाथ नोंध- १ (३२)
७७	२२ से २३	७३८
७८	१ से २	७३८
७९	११ से १५	३१३
७९	१७	३२४
८०	१ से ८	३२४
८१	२३ से २४	३२९
८२	१ से २१	३२९
८२	२४	३९८
८३	१ से १२	३९८
८३	१५ से २४	४१५
८४	१ से २	४१५
८४	१३ से १४	८९
८४	२४	१५७ (१३)
८५	पूरा पृष्ठ	,,
८६	१ से १६	,,
९१	१७ से २४	७३८
९८	१ से ७	४००
९९	१५ से १७	४६५
१००	१	४६५
११९	१५ से १९	३७३
१२०	१ मे ५	८६६
१२४	१५ से १९	११६
१२५	५ से ७	११७
१२५	११ से २४	११७
१२६	१ से ६	११७

पृष्ठ	पक्ति	पत्राक
१२६	७ से १९	११८
१२९	२० से २१	१३२
१२९	२४	१३३
१३०	१	१३३
१३३	२३ से २४	७८२
१३४	१ से १०	७८२
१३४	१३ से १५	७८६
१३५	६ से १३	९६० हाथ नोंध- २ (२०)
१४१	१० से २२	५००
१६४	१६ से २४	९५६ (३२)
१६५	१ से ४	९५६ (३२)
१७४	१४ से २२	९५६ (१०)
१७५	पूरा पृष्ठ	९५६ (१०)
१८३	१ से ५	९५६ (७)
१८३	९ से १५	९५६ (२४)
१८३	१९ से २४	१७ शि प और मु मुद्रा
१८४	१ से १०	,
१८४	१७ से २०	१७ मो मा पृ- १
१८६	१४ से २४	१७ अुपोद्घात
१८७	१ से ३	१७ अुपोद्घात
१८७	५ से २४	१७ पाठ २१
१८८	१ से २२	१७ पाठ २१
२००	२ से ५	७३८
२००	१० से ११	१७ पाठ ५०
२०१	१ से २	,, ,,
२०१	८ से २४	,, ,,

पृष्ठ	पंक्ति	पत्रांक
२०२	१ से २	१७ पाठ ५०
२०२	७ से १४	७३८
२०३	३ से ४	७३८
२०३	१२ से २४	२१७
२०४	१ से १८	२१७
२०५	२ से १९	३३४
२०५	२३ से २४	७७
२०६	१ से ५	३३४
२०६	८ से १७	४३९
२०६	१८ से २४	३८०
२०७	१ से ४	३८२
२०७	५ से १०	४२०
२०७	१३ से १७	१७३
२०८	२ से २४	७०८
२०९	पूरा पृष्ठ	७०८
२१०	४ से ७	५८२
२१०	१० से १२	९६० हाथ नोंध– १(३२)
२१०	१८ से २४	७०९
२११	१ से ३	७०९
२१६	६ से ९	९५६ (२४)
२१७	११ से १९	९५२-९५३
२२०	२ से ५	७३८
२२३	२१ से २४	३७
२२४	१ से ५	३७
२२४	९ से १०	२६६
२३१	३ से ४	७१८–गाथा १२५

कुछ ग्रन्थादिके पत्रांक

श्री राजचन्द्र वृहद ग्रन्थ स २००७की (गूजराती) आवृत्तिके—

परिशिष्ट–२

सूचि

शब्दार्थ

अतरग—भीतरी, अतरका, अदरका
अतिचार—जैन दर्शनके अनुसार दोष, जिसका प्रायश्चित्तमे निवारण किया जा सके
अनुप्रेक्षण—सूक्ष्म विचार
अनुसार—परिणाम
अन्यथा—दूसरा, अन्य, विपरीत
अपरिच्छेद रूपसे—समग्रतया
अभिष्ट—इच्छित, इष्ट
अवगाहन—गहरा अध्ययन
अवधान—अेक साथ अनेक कार्योंमे लक्ष्य रखकर स्मृति-शक्ति तथा अद्भुत अेकाग्रता बताना
अवधारना—अतरमे अुतारना, धारण करना
अव्यावाध—अक्षय, जिसमे बाधाकी प्राप्ति न हो वैसा
असाता—असुख, दुख
असाता वेदनीय—कर्मके फलरूप दुखका भोगना
आगति—आना, आगमन
आगम—जैन दर्शनके ४५ मूल सूत्र-ग्रथ
आत्मपरिणाम—जैन दर्शनमे हरअेक पदार्थ द्रव्य, गुण और पर्यायसे युक्त माना गया है। पर्याय यानी परिणति अर्थात् पदार्थमे होनेवाला और उसीमे समानेवाला परिवर्तन। पदार्थकी हर क्षण जो स्थिति होती है अुसे पर्याय, परिणति, परिणाम, भाव आदि कहते हैं। विशिष्ट-विशुद्ध अैसे आत्माके भाव-परिणामसे ध्यावन
आस्रव—आना, कर्म आएँ अैसा आत्माका भाव
अुदय कर्म—पूर्वजन्मोमे किये-अुपार्जित हुअे कर्मोकी

फल-प्राप्ति
अुद्योत—प्रकाश
अुपसर्ग—देव, मनुष्यादि अन्यकृत दुःखदायी प्रसंग
अुपालंभ—अुलहना, ताना
अुपाश्रय—साधु-साध्वियोंके लिअे ठहरनेका स्थान
अेकान्तिक—अेकपक्षीय मान्यता
कदाग्रह—दुराग्रह
कषाय—आत्माको दुःख दे अैसे राग, द्वेष, मोह और मायारूप मनके भाव
कायोत्सर्ग—शरीरकी ममता छोड आत्माके सम्मुख होना, आत्म-ध्यान धरना
क्रम—अनुक्रम
क्षयोपशम—शास्त्रादि समझ सकने योग्य बुद्धि या शक्ति
गच्छ—समुदाय
चुटकुला—तुक्का
जातिस्मरण—पूर्वभवोंका स्मरण
जुगुप्सा—घृणा, घिन
तथारूप वेदनीय—असाताका अनुभव, जैसी है वैसी वेदना
त्रिकरण योग—मन, वचन, काया इन तीनोंका योग
दुर्निमित्त—खराब निमित्त
दुषमकाल—कलियुग, कष्टसे धर्म-प्राप्ति हो अैसा काल, धर्मके निमित्तोंकी न्यूनताका काल
दूधपाक—खीर, दूध और चावलसे बना खाद्य
नय—अेक अपेक्षित दृष्टि, point of view
निराबाध—बाधा - विघ्न - पीडा रहित
निरुपाधिक—कर्मकी अुपाधिसे रहित
निर्ग्रंथ—रागद्वेषादि आंतरग्रंथियोंसे और परिग्रहादि बाहरी ग्रंथियोंसे मुक्त, सच्चे अर्थमें साधु
निर्जरा भाव—जिस भावनासे पूर्वके अुपार्जित कर्म निवृत्त हों
निहार—शौचादि क्रिया, मल-त्याग
परिसह—जैनोंमें बाईस परिसह—क्षुधा, तृषा आदि माने गये हैं। आत्माको अुलझनमें डालनेवाले कर्मके प्रसंग।
पुद्‌गल—अचेतन पदार्थ
पुनर्जन्मादि—पुनर्जन्म आदि परिणाम

प्रतिक्रमण—जैन क्रिया—किये गये दोषोकी निवृत्ति हो इनके लिये पश्चात्तापकी क्रिया

प्रतिबंध—अैसे संयोग जिनमे बंधन हो

प्रतिबद्धता—किसी भी निमित्तसे बंधन हो अैसी ममताकी वृत्ति-प्रवृत्ति

प्रमाण—सर्व अपेक्षायुक्त दृष्टि—समग्र दृष्टि

बाह्याभ्यंतर रहित—बाहर-भीतर दोनो रूपमे कर्म रहित

बीजज्ञान—अैसा वचन जो सम्यग् दर्शनका हेतुरूप-बीजरूप हो

बोधग्रंथ—अुपदेश ग्रंथ

बोधबीज—सम्यग् ज्ञान

भद्रिकता—सरलता

भव—जन्म, पुनर्जन्म

भव-स्थिति—देवादि योनिमे अुत्पत्तिके कालकी मर्यादा

भव-स्थिति पके तब—योनिमे भटकनेकी अवधि पूरी होनेका समय

भाव—परिणाम, गुण पदार्थ

मतार्थी—मतका दुराग्रही

मार्ग—जैन धर्मानुसार मोक्ष-प्राप्तिका मार्ग

मार्ग प्रभावना—विश्वमे धर्म-मार्गका विस्तार हो अैसी प्रवृत्ति

मुहूर्त—दो घडीका समय (४८ मिनट)

यत्ना—आत्मलक्ष्यपूर्वक

राहस्यिक विश्राम—जीवनका मर्म—अंतर्भेद कहने योग्य व्यक्ति

लब्धि प्रगट—इच्छित-प्राप्ति हो अैसी शक्तियोका प्राकट्य

लिंग देह—दस इंद्रिय, पाँच विषय *और मन—इस रूपमे जीवनका* सूक्ष्म शरीर

लोकसंज्ञा—लौकिक दृष्टिसे लोक-प्रवृत्तिमे आदर और श्रद्धा रखकर प्रवृत्ति करना

लोकालोकज्ञान—लोक और अलोकका ज्ञान। जैन दर्शनमे जड, चेतन आदि छ द्रव्य माने गये हैं। जहाँ ये छ द्रव्य विद्यमान हैं वह लोक और जहाँ केवल अेक आकाश द्रव्य हि विद्यमान है वह अलोक। इन दोनोका ज्ञान यानी संपूर्ण जगतका ज्ञान।

वास्तविक—यथार्थ

विकल्प—तर्क-वितर्क
वितिगिच्छा—घृणा, घिन
विदेही दशा—देह होते हुअे भी शुद्ध आत्मस्वरूपमय स्थितिमे रहनेकी दशा—जैसे श्रीमद् राजचद्रजीकी दशा थी।
विपर्यासिता—विपरीतता
विषमात्मा—रागद्वेषयुक्त आत्मा
विहार—गमन, प्रवास
वीतराग—रागद्वेषरहित
वेदनीय कर्मका वेदन—साता-असाता रूप वेदनीय कर्मका वेदन यानी अनुभव
शासन—धर्मराज्य
श्रीमद्के अतिशय—श्रीमद्का प्रभाव, प्रभावक शक्ति
श्रुत—शास्त्र, भगवानके अुपदेशोका—आगमका प्रकाशन
सत्वानुकपा—प्राणीमात्र पर दया
समकित—आत्मज्ञान
समकिती—आत्मज्ञान जिसे हुआ है वह व्यक्ति
समाधि—आत्म-स्वभावकी स्थिति
समाहित—स्थितप्रज्ञ
सम्यक्त्व—यथार्थ आत्मदर्शन
सर्वविरति—पापकर्मोंमे सब तरहसे निवृत्ति
साता वेदनीय—कर्मके फलरूप सुखका भोगना
सामायिक—अेक जैन क्रिया—दो घटिकाओ तक समता भावमे रहना और वाचन मनन आदि करना
स्थिति—मुकाम
स्याद्वाद मत—सापेक्षवाद, अनेक गुणोसे युक्त पदार्थको यथार्थ-रूपसे कहनेवाला, जैनमत

शुद्धिपत्रक

प्रस्तावना

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	१६	नके	अुनके
१५	४	ये	यह
१५	१५	अहापोहमे	अुहापोहमे

पुस्तक पृष्ठ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	६	आत्म साधना	आत्म-साधना
२	११	शराकी	सराकी
३	७	आडतिया	आढतिया
४	३	पूर्णिमाकी	पूर्णिमाका
६	१९	आतो थी	आती थी
७	२४	मरा	भरा
१०	२२	काट खाया	काटा
१८	७	निरपराधी	निरपराध
२०	१०	विद्यार्थीयोका	विद्यार्थियोका
२०	१२	,,	,,
२३	१४	वाचन	वाॅचन
३२	१५	उस समयके जानकारी, अनुसार	उस समय, जानकारीके अनुसार
३७	५	गे।	गये।
४०	१४	काट खाया	काटा
४६	१५	ढाकनेकी	ढाँकनेकी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५५	५	जव तक	जहाँ तक
६०	९	मेरी	मुझे
६१	१७	इसे	उसे
६३	२२	ओर	और
७४	१	शकता	सकता
७४	५	हमारे जैसे	हममे सन्मुख ऐसे सत्सगी
७४	२१	जिसमे	जिसे
७८	४	सम्वन्धसे	सबधके
७९	५	आन्तर	अतर
८०	३	हौता	होता
८४	२४	तेरा जो होना	तेरा जो कुछ भी होता
९०	२	'मुक्तानद'का	'मुक्तानद'के
९४	४	स्वाभाविक	स्वाभाविक
१०१	१९	परमवोधका	परमवोधको
१०२	९	कुछ दिखाई	कुछ न दिखाई दे
१०९	९	पचा	छोटी धोती
१११	१०	प्रेमसे करे	प्रेमसे आराधन करे
१११	२२	ककियाससुर	चचियाससुर
११४	१	धून	धुन
१२९	१६	इस	यह
१२९	२३	यह	इस
१३०	७	सौभाग्यभाईने	सौभाग्यभाईको
१३०	८	उपाधिमेदूर	उपाधिसे दूर
१३०	१०	विचारका भाव	विचारनेके भाव
१४१	१६	उपदेश वोध है	उपदेश-वोध है

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४२	१०	हो	हो
१४५	५	श्रीमद् अबालाल	श्रीमद्, अबालाल
१४७	२३	आदि भाई	और दूसरे
१५६	२३	खिच	खिंच
१६५	२१	कौनसी	कौनसा
१९०	१५	काली (कृष्ण) चौदस	(आश्विन) काली (कृष्ण) चौदस
१९३	३	पद्योमे	पद्यमे
१९५	१३	इस	यह
२०३	११	दिखते हैं	लिखते हैं
२०४	२१	स्वय	अपनेको
२११	१७	वे दरमियान	दरमियान वे
२१६	१९	अरसामे	अरसेमे
२१७	२	खिचवायी	खिंचवायी
२१८	९	देहत्यागके पहले दिन	देहत्यागके अगले दिन
२१८	९	मुझे	मुझसे
२१९	९	चिन्ह	चिह्न
२२०	१३	सुशोभित होती थी	सुशोभित थी
२२१	६	नि शकामे	नि शकतासे
२२१	९	प्राप्त हो,	प्राप्त हो ?
२२१	,,	कि जिसको एक क्षण	अरेरे! उनको एक क्षण
२२२	८	है प्रभु!	हे प्रभु!